डायमंड पुस्तक समाचार

मासिक

साहित्य विमर्श

साहित्य, कला और संस्कृति का संवाहक

आओ मनाएं विकास उत्सव
17 सितम्बर-7 अक्टूबर, 2021

राष्ट्र सेवा के 20 वर्ष

आज़ादी का अमृत महोत्सव

सत्यमेव जयते

नये भारत का नया उत्तर प्रदेश

बदलता नगरीय परिवेश

उत्तर प्रदेश देश में अग्रणी

- स्मार्ट सिटी मिशन के क्रियान्वयन में देश में नं. **1**
- प्रधानमंत्री आवास योजना (शहरी) में देश में नं. **1**
- प्रधानमंत्री स्वनिधि योजना में कुल ऋण वितरण में देश में नं. **1**
- मेट्रो और इलेक्ट्रिक बस संचालन में देश के अग्रणी राज्यों में शामिल
- स्वच्छ भारत मिशन (नगरीय) में देश के टॉप **5** राज्यों में शामिल
- लाइट हाउस परियोजना के बेहतर क्रियान्वयन करने वाले देश के छह राज्यों में शामिल
- रेरा के अंतर्गत सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाले प्रदेशों में शामिल

सोच ईमानदार, काम दमदार | प्रधानमंत्री जी का विज़न हो रहा साकार

नगर विकास विभाग, उत्तर प्रदेश

नगरीय रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन विभाग, उत्तर प्रदेश

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

कहानी

ऋषि संतानें / कालीचरण 'स्नेही'	05
निर्णय / पूरन सिंह	09
अम्बर / शैली किरण	13
किराए का मकान / नीलम	16
गटर के अंदर काले नाग और काले आदमी की जंग / रूपनारायण सोनकर	20
पहचान / अंजली काजल	21
नहले पर दहला / विजय कुमार 'संदेश'	24
दरोगवा / मुसाफिर बैठा	26
एक गंगा है मां के अंदर / प्रभा कुमारी	34
हिंदी पुस्तकालय / जयप्रकाश कर्दम	36
नियति का अभिशाप / यशोदा कुमारी	40
मुक्ति जंग/ अजमेर सिंह काजल	43
सरनेम का चक्कर / मनोरमा गौतम	48
नानी का खूंटा / निर्देश सिंह	50
लड़की तो अच्छी है/ ज्योति पासवान	52

अतिथि सम्पादक
डॉ.नामदेव

साहित्य विमर्श में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य विमर्श

– सम्पादकीय

किसी पत्रिका के लिए इससे बड़ी खुशी की बात नहीं हो सकती कि 'साहित्य विमर्श' के पाठक वर्ग का विस्तार हो रहा है. हर अंक नये पाठकों और लेखकों को अपने साथ जोड़ने में सफल रहा है। पिछला अंक 'लघुकथा विशेषांक' एक महा विशेषांक साबित हुआ जिसमें 150 लेखकों की रचनाएँ शामिल हुई।

'गाँधी विशेषांक' से शुरू हुआ विशेषांकों का सिलसिला अभी भी जारी है, इस वर्ष 'साहित्य विमर्श' के सभी अंक विशेषांक के रूप में आयेंगे। इसी कड़ी में यह अंक आपके हाथों में है।

हर अंक की तरह हमें आपकी प्रतिक्रियाओं का इन्तजार रहेगा. आपको यह अंक कैसा लगा, हमें लिखना न भूलें. आपकी प्रतिक्रिया ही 'साहित्य विमर्श' की ऊर्जा है।

Email- editordpb17@gmail.com

अतिथि संपादकीय...

बीसवीं सदी से विकसित हुआ दलित साहित्य निरंतर गतिशील रहते हुए आज इक्कीसवीं सदी के इन दो दसकों में और आधुनिक तथा परिपक्व हुआ है। अब उसकी रचनात्मक क्षमता और प्रहारक हुई है। ऐसी साहित्यिक परिवेश में अपनी अभिव्यक्ति की चेतना से संपृक्त दलित कहानियां रचनाशीलता की नई ऊंचाई छू रही हैं।

हमेशा की तरह मौजूदा दौर में भी कहानियां अपनी लोकप्रियता का परचम लहरा रही हैं। ऐसे साहित्यिक माहौल में अस्मिता बोध से लबरेज दलित कहानियों का महत्व और भी बढ़ जाता है। हिंदी की दलित कहानियां कई सोपानों को पार करते हुए कुंठा बोध का अतिक्रमण करते हुए आज ज्यादा मुखरित हुई हैं। अब इन कहानियों का खलनायक सिर्फ ब्राह्मणवाद या ठाकुरवाद ही नहीं है बल्कि वह सभी मानवीय बर्ताव और व्यवस्था हैं जो दलित व्यक्ति को दैहिक और मानसिक स्तर से चोटिल करती हैं। इन सब परिस्थितियों के विरूद्ध लामबंद होकर दलित व्यक्ति को समस्त मानवीय और प्राकृतिक हकों को हासिल करने की अदम्य जिजीविषा के साथ दलित व्यक्ति को प्रतिस्थापित करने के संघर्ष और द्वंद्वों के मध्य विकसित होती दलित कहानियां कहानीपन और किस्सागोई की स्वतंत्र और देशज रूप धारण करने लगती हैं। इसी स्थिति में पहुंचकर दलित कहानियां अपने युगबोध की प्रामाणिक अभिव्यक्ति बन जाती हैं , और उदघोष करती हैं कि अभिव्यक्ति मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है।

वास्तव में, अभिव्यक्ति और अधिकारों के दमन के दौर में दलित रचनाशीलता और मुखर हुई है जो कि एक लोकतांत्रिक समाज के लिए सकारात्मक संकेत है और सम्पूर्ण कहानी साहित्य में ऐतिहासिक परिघटना भी है। यह सर्वविदित है कि साहित्यिक रचनाशीलता पर लंबे समय से अभिजात्य और सवर्ण तबके का वर्चस्व कायम रहा है जिसने अपने साहित्य में दलित जीवन को नकारा है। यदि कहीं स्वीकारा भी है तो वो मात्र सहानुभूति है और जिसकी सीमा रेखा है जिसमें दलित पात्र मात्र शोषित हैं, कामचोर हैं,कायर हैं,दब्बू हैं और जिनकी न कोई संस्कृति है न चेतना है। दलित जीवन की इस तरह के चरित्र हरण से गैर दलित साहित्य भरा पड़ा है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक तरफ सामाजिक-सांस्कृतिक उपेक्षा और तिरस्कार भाव मौजूद रहा है तो दूसरी तरफ अभिव्यक्ति की आज़ादी पर रोक की बर्बरतापूर्ण बर्ताव रहा है। इन स्थितियों से दलित जीवन का अस्तित्व बेहद द्वंद्वात्मक स्थिति में बना रहा। लेकिन लंबे संघर्ष के बाद डाक्टर भीमराव अंबेडकर जैसे जननायक द्वारा संवैधानिक अधिकारों का प्रावधान किए जाने के बाद से अस्पृश्य समाज, दलित शक्ति के रूप में लामबंद होकर समाज के प्रत्येक हिस्से में भागीदारी के लिए संघर्ष करने लगा । उसी का प्रतिफलन है साहित्यिक हिस्सेदारी जिसको हम दलित साहित्य के नाम से जानते हैं, और दलित साहित्य को साहित्यिक मानकता के समकक्ष खड़ा कर देने वाली विधा दलित कहानी है। एक समय तक दलित आत्मकथाएं ही दलित साहित्य का पर्याय बनी रहीं और अधिकांश लोग यही घोषित करते रहे कि आत्मकथाएं ही दलित साहित्य का आधार हैं क्योंकि इनमें सिर्फ अपने भोगे हुए सच का वर्णन होता बाकी कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में लिखित रचनाएं काल्पनिकता का सहारा लेती हैं। वास्तव में ऐसी धारणा एकांगी और संकुचित है। साहित्य का दायरा और विजन व्यापक होता है उसकी समग्र रचनाशीलता ही यथार्थ के विभिन्न परतों को चिन्हित करती है। सिर्फ सच का ब्यौरा मात्र प्रस्तुत कर देने मात्र से ही कोई रचना रचनात्मक नहीं हो जाती है। उसको रचनात्मक बनाने में बौद्धिकता, विचार, अनुभव, भाषा, इतिहास, संस्कृति,कल्पना इन सबका साझा योगदान होता है। जब हम दलित साहित्य की बात करते हैं तब हम सिर्फ आत्मकथाओं को ही जहन में नहीं रखते बल्कि कविता,कहानी,उपन्यास जैसे विश्वप्रिय विधाओं को भी शामिल करते हैं क्योंकि इनके बिना कोई भी अस्मितामूलक साहित्य अधूरा है। बीसवीं सदी से विकसित हुआ दलित साहित्य निरंतर गतिशील रहते हुए आज इक्कीसवीं सदी के इन दो दसकों में और आधुनिक तथा परिपक्व हुआ है। अब उसकी रचनात्मक क्षमता और प्रहारक हुई है। ऐसी साहित्यिक परिवेश में अपनी अभिव्यक्ति की चेतना से संपृक्त दलित कहानियां रचनाशीलता की नई ऊंचाई छू रही हैं। अब यहां दलित साहित्य कोई बेचारों का साहित्य नहीं है बल्कि उन बेचारों को उनकी हकीकत दिखाती है जिन्होने दलित चेतना की अभिव्यक्ति को साहित्य,संस्कृति और इतिहास से गुमराह किया हुआ था। वास्तव में इस धारणा को ध्वस्त करती हैं आज की दलित कहानियां जो अतीत से लेकर आज तक की व्यवस्था से टकराती हैं और सवाल करती हैं। अपनी अस्मिता को बचाए रखते हुए अपने वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों के आधार पर रचनात्मक हो जाना आसान नहीं होता। लेकिन आज की दलित कहानियां प्रतिबद्धता और वैचारिक मजबूती से लिखी जा रही हैं।

वास्तव में आज की दलित कहानी करूणा और आक्रोशी तेवर रखते हुए भी भारतीय जातिवाद की त्रासद स्वरूप को बेहद संजीदगी और रवानगी की चाशनी में डुबोकर यथार्थ की बारीक तह में जाकर रचनात्मकता की नई परिभाषा गढ़ लेती हैं। प्रस्तुत दलित कहानियां रचनाशीलता की एक ऐसी सच्ची दुनिया रचती है जिसमें मानवीय जीवन के लगभग हर रंग और मिज़ाज का वर्णन कुशलतापूर्वक हो सका। इन कहानियों के चरित्र कहीं गैर दलितों के जातिवाद से सीधे-सीधे टकराते हुए नज़र आते हैं तो कहीं उनकी साजिशों,नफरतों और भ्रष्टाचारों का पर्दाफाश करते हुए नज़र आते हैं। इस कहानी विशेषांक का एक उल्लेखनीय पक्ष यह है कि बड़ी संख्या स्त्री दलित कहानीकार अपनी धारदार कहानियों के माध्यम से अपने साहित्यिक वजूद का निर्माण करती हैं। इनकी कहानियां दलित पितृसत्ता को बेनकाब करते हुए लिंग भेद के शोषण का निषेध करती हैं और समतामूलक समाज निर्माण की धारणा के प्रति आश्वस्त करती हैं। इस विशेषांक में शामिल प्रत्येक कहानी अपनी रचनात्मकता के ऊर्जावान होने का स्पष्ट संकेत देती है।

आशा करता हूं कि प्रस्तुत दलित कहानियां अपने भिन्न रंग-रूप,मिज़ाज, तेवर, भाषा, किस्सागोई के कारण लोकप्रियता की मिसाल पेश करेंगी और पठन-पाठन की संस्कृति में अपनी दमदार दखल देंगी।

– डॉ. नामदेव

ऋषि संतानें

कालीचरण 'स्नेही', लखनऊ

अभी ग्यारह बजने में देर थी, पर अश्वनी दुबे आज कुछ पहले ही विभाग जा पहुँचे थे। हिन्दी विभाग में इस समय केवल पातीराम चपरासी ही आया था। पातीराम ने दुबे जी को अचरज से देखते हुए कहा कि सर जी, आप आज इतने जल्दी कैसे आ गए? दुबे जी चुप रहे, बस घड़ी देखने लगे, फिर कहा कि अभी उमाशंकर दीक्षित जी नहीं आए, चपरासी ने कहा कि सर उनकी तो छुट्टी की एप्लीकेशन कल ही आ गयी थी, वे दो दिन की छुट्टी पर बाहर गए हैं, मैं कल ही शाम को डीन आफिस में उनकी एप्लीकेशन दे आया था। यह सुनकर दुबे जी सन्न रह गए, पर कहा कुछ भी नहीं। इसी बीच विभागाध्यक्ष उर्मिलेश अवस्थी, विभाग जा पहुँचे। पातीराम ने उनकी अटैची ली और टेबल पर रख दी। दुबे जी ने झुककर प्रणाम किया, अध्यक्ष जी ने चौबे जी को बैठने का संकेत दिया और स्वयं माँ सरस्वती के चित्र पर चपरासी द्वारा पहले से रख दिए गए फूल चढ़ाने लगे। वे अगरबत्ती खुद जलाएँ, इसके पहले ही चौबे जी ने माचिस निकाल कर अगरबत्ती जलाकर अवस्थी जी के हाथों में थमा दी। करीब सात-आठ मिनट तक पूजा-वंदना होती रही, फिर अध्यक्ष जी ने कुर्सी को सिर नवाकर आसन ग्रहण किया। इसी बीच अपने गुरु एवं पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. गोपेश्वर तिवारी जी के चित्र को सिर झुकाकर प्रणाम किया। अब विभाग में अन्य विभागीय अध्यापक-अध्यापिकाएँ आना आरम्भ हो गए। इनमें मैडम बीना पाठक, मालती शर्मा, हरवंश चौबे और नित्यानंद नारद मुख्य थे। सबने बारी-बारी से विभागाध्यक्ष अवस्थी की चरण-रज अपने-अपने माथे पर लगाकर अध्यक्ष के प्रति अपनी निष्ठा और श्रद्धा व्यक्त की। विभागाध्यक्ष ने मालती शर्मा को अपने पास बुलाकर कान में कुछ कहा और फिर विभाग की डाक देखने लगे। बीना पाठक और प्रो. नित्यानंद नारद अपनी कक्षा में पढ़ाने निकल गए। प्रो. हरवंश चौबे को 'प्रसाद' पढ़ाने जाना था, पर अध्यक्ष जी ने उन्हें संकेत देकर रोक लिया, वे अश्वनी चौबे के बगल में जा बैठे। अध्यक्ष जी ने अश्वनी दुबे से मुखातिब होते हुए कहा कि दुबे, तुम्हें तो रीतिकालीन कविता पढ़ाने को दी है, दुबे जी ने सिर हिलाकर हाँ कहा। अध्यक्ष जी ने गंभीर मुद्रा बनाते हुए कहा कि कल कुछ लड़कियाँ आई थीं, वे बता रहीं थीं कि आप अभी बिहारी के चार-पाँच दोहों पर ही अटके हुए हैं, घनानंद कब चालू करोगे? चौबे जी ने सफाई देते हुए कहा कि सर, ऐसी बात नहीं है, हमने बिहारी के सात-आठ दोहे पढ़ा डाले हैं। अध्यक्ष जी ने कहा कि जरा रफ्तार बढ़ाइए। देखिए न मालती शर्मा ने रामचरितमानस का सुन्दरकाण्ड पूरा पढ़ा दिया है, अब वे विनयपत्रिका के आखिरी पदों तक जा पहुँची हैं। दुबे जी ने कहा सर, बिहारी और गोस्वामी तुलसीदास को पढ़ाने में बहुत फर्क है। अध्यक्ष जी ने चेतावनी के लहजे में कहा कि देखो दुबे, यह फर्क हमें न समझाओ, तुम विभाग में अध्यापक बनने के कतई योग्य नहीं थे, यह तो कहिए कि प्रतिकुलपति प्रो. मार्तण्ड द्विवेदी की सिफारिश थी और तुम्हारे गुरू, गिरधर त्रिपाठी भी रात-दिन मेरे पैरों में पड़े रहते थे, कहते थे अश्वनी दुबे बहुत ही गऊ लड़का है, उसकी बातों में आकर हमने तमाम साँड़ रिजेक्ट कर तुम्हारा चयन कराया, पर तुम वाकई गऊ ही निकले, पहले भी दो-तीन गऊ छाप अध्यापक, नियुक्ति पा चुके थे और फिर तुम भी विभाग में आ घुसे। यह हिन्दी विभाग न हुआ, पूरा गौशाला बन गया है और हम 'ग्वाला' बन कर तुम सबकी देखभाल में अपनी जिंदगी तमाम कर रहे हैं। इसी बीच विभाग में दो-तीन भेड़-बकरियाँ भी नियुक्ति पा चुकी हैं। विभागाध्यक्ष का पारा चढ़ते देख बगल में बैठे प्रो. हरवंश चौबे हाथ जोड़कर कहने लगे, सर, नाराज न होइएगा, तो एक बात कहूँ, विभागाध्यक्ष ने खुद पर नियंत्रण रखते हुए कहा कि कहो दुबे, कहो। हरवंश चौबे ने पतली आवाज में आदर भाव से कहा कि सर, यदि हम ब्राह्मणों को हिन्दी विभागों में हिन्दी की सेवा करने को नहीं मिलेगी, तो भला बताइए फिर हम कहाँ जाएँगे? प्रयागराज के संगमतट पर तो सभी ऋषि संतानें नहीं समा सकती हैं, और न ही देवालयों में। हम पीएचडी डिग्री होल्डर और कहाँ खप सकते हैं? ले दे के यहीं आश्रय स्थल हैं, जहाँ हमारे जैसे द्रोणाचार्य वंशज अपनी आजीविका चला सकते हैं। विभागाध्यक्ष अवस्थी, चौबे उवाच सुनकर मंद-मंद मुस्कुराने लगे। चेहरे पर मुस्कुराहट देखकर दुबे ने एक चौका लगाते हुए कहा कि सर, आप यदि विभागाध्यक्ष न होते तो रामकली पाठक, गुंजन त्रिपाठी और खगेन्द्र दुबे जैसे हमारे बन्धु-बांधव इस विभाग में कभी न घुस पाते। आप तो जानते ही हैं, सर जी, कि मेरी नियुक्ति में यहाँ का कुलपति, कितना अड़ंगा डाल रहा था, यह तो आपने सुना ही है कि उस समय के विभागाध्यक्ष परम पूज्य दिग्विजय पाराशर ने हाथ-पैर जोड़कर मेरी नियुक्ति कितनी मुश्किल से कराई थी और आपके अध्यक्षीय कार्यकाल में मैं, पिछले साल प्रोफेसर के पद पर प्रोन्नत हो गया। इसमें भी चयन समिति के एक सदस्य, प्रो. बलदेव पाण्डे मेरा भविष्य चौपट करने पर अड़े हुए थे, गनीमत है कि इसी चयन समिति में मेरे साढ़ू के समधी प्रो. गजानन मिश्रा भी थे, जो पाण्डे से मेरे लिए भिड़ गए थे, अन्यथा मैं तो प्रोफेसर बन ही न पाता। आप तो परमदयालु हैं ही सर, आपने तो हम में से विभाग के किसी भी अध्यक्ष का कभी अनभल चाहा ही नहीं। यह आपकी ही कृपा और दयालुता कहिए कि आरक्षण कोटे से भी एक सुअर और एक गधा भी विभाग में आ घुसा, अन्यथा पिछले सात-साल से यह दोनों आरक्षित पोस्ट भरी ही नहीं जा रहीं थीं। विभागाध्यक्ष अवस्थी कुर्सी पर पूरी तरह फैलते हुए दुबे से बोले, हरवंश, तुम्हें तो पता ही होगा कि नेहा भारद्वाज किसी प्राईमरी

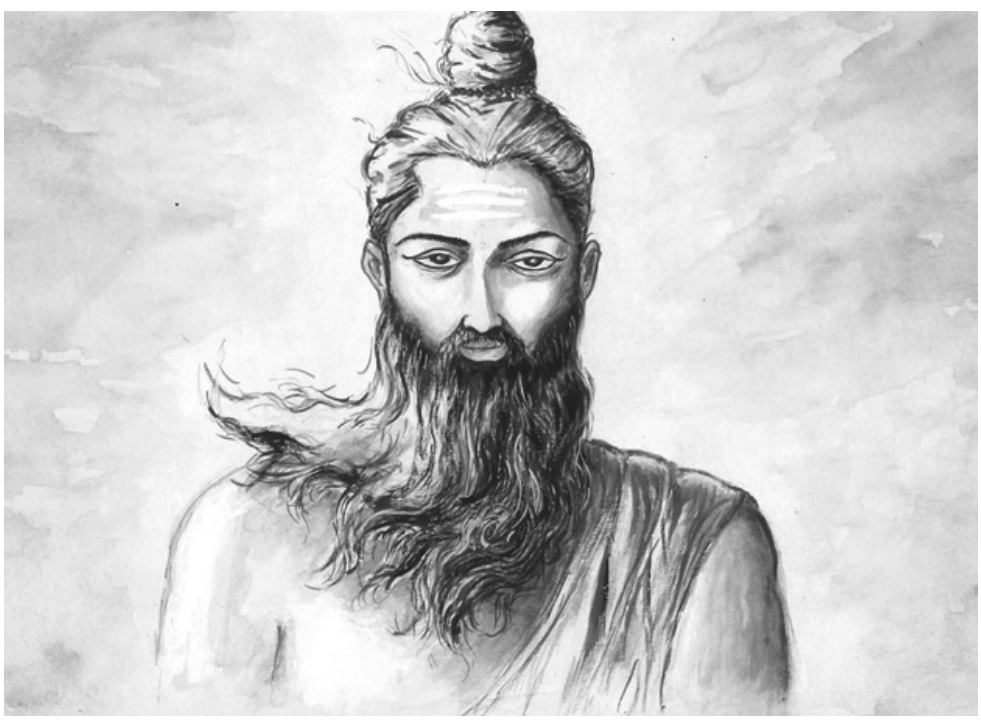

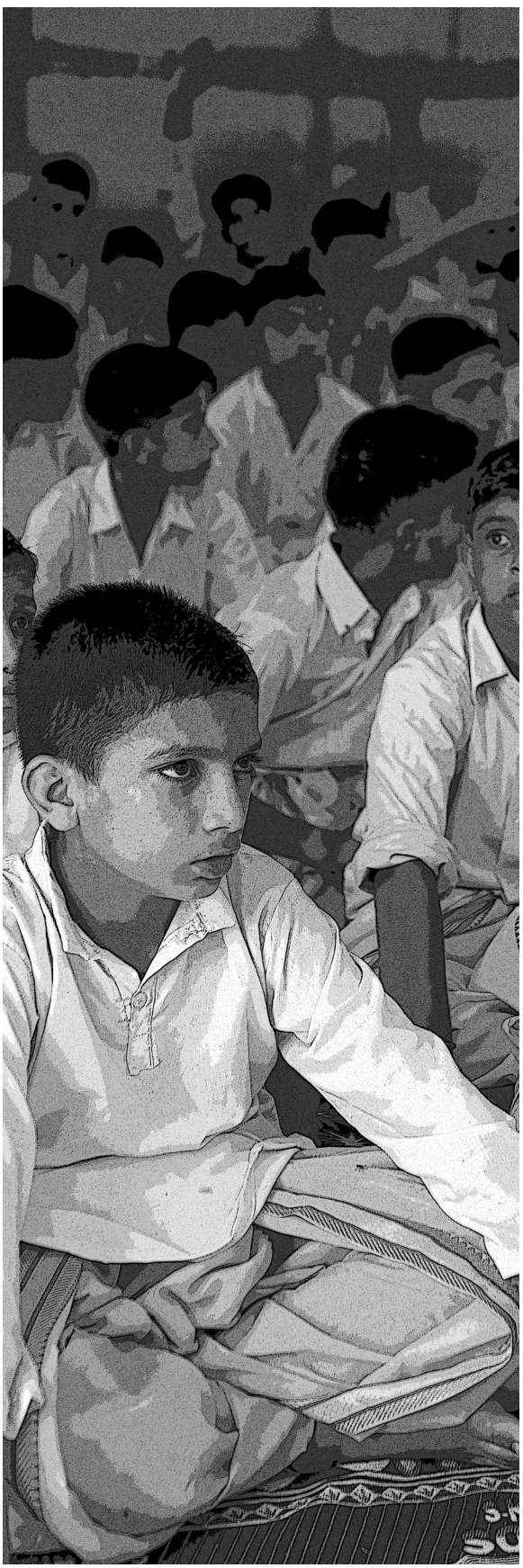

में भी टीचर न हो पाती, तुम सबको पता ही है- कि समाजशास्त्र विभाग के अपने प्रो. गगन बिहारी भारद्वाज जो कि मेरे गुरुवर के जामाता हैं, इसलिए उसका उद्धार करना पड़ा। इस नियुक्ति को लेकर विभाग में ही नहीं, पूरे हिन्दी जगत में मेरी कितनी तीखी आलोचना हुई थी। अब वही नेहा, रामसजन शुक्ला से नेह लड़ाने लग गई है, जो कि मेरा धुर विरोधी है और हाँ अश्वनी, तुम भी तो दो दिन पहले रामसजनवा के साथ ठहाके लगा रहे थे, अश्वनी ने अपनी निगाह नीची कर ली। विभागाध्यक्ष अवस्थी ने चेतावनी के लहजे में कहा कि सुनो अश्वनी, तुम अपनी औकात में रहा करो, तुम कल मेरे रिसर्च स्कालर विमल दुबे से क्या कह रहे थे? दुबे ने नकार के स्वर में कहा, नहीं सर, ऐसा कुछ भी नहीं कहा। कैसे नहीं कहा, वह कल रात में ही मुझे सब बता गया था कि तुम उससे कह रहे थे कि विमल, तुम अपना रिसर्च कब पूरा करोगे? मैं तो तुम्हें हरवक्त रेलवे काउण्टर और डाक खाने में रजिस्ट्री करते हुए ही देखता हूं। दुबे तुम यह मत भूलो कि तुमने अपना रिसर्च वर्क पूरा करने में पूरे सात-साल लगा दिए थे, वह तो गनीमत मानिए सदानंद दुबे की, उसने कहाँ-कहाँ से जुगाड़कर तुम्हारी थीसिस पूरी करा दी थी अन्यथा तुम वास्तव में प्रयागराज के संगमघाट पर पण्डागिरी ही कर रहे होते, हरवंश चौबे ने फिर अश्वनी का बचाव करते हुए विनीत स्वर में कहा कि सर, अश्वनी दुबे, बहुत भोला है, इसे कोई भी भरमा लेता है, मैं इसे खूब समझाता हूँ, पर फिर भी यह भटक ही जाता है, सर, आप विश्वास मानिए, अब से अश्वनी, किसी के बहकावे में नहीं आएगा। अश्वनी दुबे ने उठकर क्षमा की मुद्रा में अध्यक्ष के चरण पकड़ लिए, तब जाके मामला शांत हुआ। इसी बीच एम.ए., सेमेस्टर का एक छात्र उदय प्रकाश अध्यक्ष के कमरे में हरवंश चौबे को अपने पीरिएड की याद दिलाने आया। अध्यक्ष जी ने हरवंश चौबे को क्लाश में जाने को कहा।

विभागाध्यक्ष कक्ष में एकान्त पाकर अश्वनी दुबे ने विभागाध्यक्ष के बगल में जाकर कहा कि सर जी, एक निवेदन करना चाह रहा हूँ, पर हिम्मत जवाब दे जा रही है। अध्यक्ष ने बगल की कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए अश्वनी दुबे को अपनी बात रखने को कहा। अध्यक्ष जी की आज्ञा पा कर दुबे ने कई दिन से दिमाग में कौंध रही, अपनी बात को रखते हुए कहा, सर, आप तो जानते ही हैं, हिन्दी विभाग में लेक्चरर की तीन पोस्ट आई हैं, इनमें दो सामान्य वर्ग के लिए भी हैं, अध्यक्ष ने कहा सो तो है। बताओ तुम क्या चाहते हो, अश्वनी ने विनम्र भाव से कहा सर जी, मेरे साढू जो कि दो साल पहले कैंसर से मारे गए थे, उनकी इकलौती बेटी है कामिनी शुक्ला, उसने तीन साल पहले जे.आर.एफ. निकाल लिया था और अब पीएचडी भी अगले साल तक जमा कर देगी, उसने अपने यहाँ लेक्चरर के लिए आवेदन किया है, बनारस में रहती है, बहुत ही मेधावी है, उसकी उम्र भी कोई सत्ताईस साल हो गई है। कामिनी की शादी भी मुझे ही करना है। सर जी, मैं चाहता हूँ कि उसका उद्धार आपके हाथों ही हो। विभागाध्यक्ष ने गंभीर होते हुए कहा कि देखो दुबे, तुम जानते ही हो, नियुक्तियों में कितना दबाव होता है, अध्यक्ष के हाथ बँधे हुए होते हैं, फिर तुम यह भी जानते हो कि मालती शर्मा की बड़ी बेटी ने भी इस पोस्ट के लिए आवेदन किया है, वह हमारे विभाग की टॉपर भी है। मालती शर्मा के हसबैण्ड, लोटन लाल शर्मा, जिन्हें हम सब एल.एल. शर्मा कहते हैं, बड़े ही तिकड़मी हैं, वे शहर की जानी-मानी शख्सियत हैं, होण्डासिटी कार का शोरूम उनके बड़े भाई का ही है, वे दबाव अवश्य डालेंगे और प्रो. जगन्नाथ जोशी को भी तुम जानते ही हो, है तो वह वे-औलाद, पर उसने अपने साले के लड़के को गोद ले रखा है, नम्बर एक का गुण्डा है वह लड़का, फिर भी है तो जोशी का दत्तक पुत्र ही, प्रो. जोशी, हमारे विभाग को पूरा समय देता है, जब कहो तब हाजिर, विभाग की सभी डाक भी वही देखता है, विश्वविद्यालय के सभी अध्यापक उसे अध्यक्ष का खास आदमी समझते हैं। अश्वनी, अध्यक्ष की बातें सुनने के बाद बोला, सर, वह तो सब ठीक है, पर जिस पर आपकी कृपा होगी, विभाग में वही नौकरी पाएगा, दो साल पहले रीडर के एक पद के लिए कितनी मारामारी थी, पर आप तो आप हैं, पूरे 70 अभ्यर्थियों में से आपने रामदुलारे दीक्षित को चण्डीगढ़ से यहाँ स्थापित कर दिया। किसी ने चूँ तक नहीं की, तब भी प्रो. जगन्नाथ जोशी ने अपनी खास शिष्या डॉ. प्रमिला शुक्ला के लिए एड़ी चोटी का जोर लगाया था, सिलेक्शन कमेटी के दो सदस्यों से भी उन्होंने तालमेल बैठा लिया था, पर आपके सामने किसी की एक न चली। अध्यक्ष जी ने कहा वह तो है। देखते हैं, प्रयास किया जाएगा, अश्वनी ने विभागाध्यक्ष के पैर पकड़ कर अपनी वफादारी साबित करना चाही। अध्यक्ष जी ने कहा कि सुनो दुबे, यह सब बातें गोपनीय ही रखना। अश्वनी ने कहा कि सर, किसी को इसकी हवा तक नहीं लगेगी। इसी बीच डॉ. मालती शर्मा क्लास पढ़ाने के बाद अध्यक्ष के कमरे में दाखिल हुईं, उन्होंने अध्यक्ष जी से कहा कि सर, परसों मेरी शिष्या कुमकुम शर्मा की पीएचडी मौखिकी है। अध्यक्ष जी ने कहा अरे हाँ, तुमने ठीक ध्यान दिला दिया, कौन आ रहे हैं इसमें? मालती शर्मा ने कहा, सर, वही प्रो. रामजी लाल शर्मा, कुरुक्षेत्र वाले। अध्यक्ष जी ने कहा, अरे भाई ये तो बड़ा ही घाघ आदमी है, थीसिस चोर कहीं का। देखो, मालती मैं तो इसकी शक्ल भी नहीं देखना चाहूँगा, मैं उस दिन की छुट्टी ले लूँगा, जगन्नाथ जोशी रहेंगे, वे मौखिकी सपन्न करा देंगे। मालती शर्मा ने विभागाध्यक्ष को अपनी सफाई देते हुए कहा कि सर, पिछली डीआरसी में आप आधी मीटिंग अटेण्ड कर, कुलपति जी के बुलावे पर कुलपति कार्यालय चले गये थे, अपने कक्ष या मीटिंग पूरी कर लेना, तभी होशियारी से प्रो. रामजी लाल शर्मा का नाम जबरिया ही प्रो. रेखा वाजपेयी ने रखवा दिया था, अध्यक्ष जी ने सख

तेवर में कहा कि रेखा वाजपेयी की सिलेक्शन कमेटी में वह ही तो आया था। इसलिए उसे तो रामजी लाल शर्मा, परमात्मा जान पड़ता है। खैर, यह बात छोड़िए, आपकी शिष्या की मौखिकी नहीं रुकनी चाहिए। अश्वनी, जरा रेवती बाबू को बुलाओ। अश्वनी चौबे ने रेवती बाबू को बुला लिया। विभागाध्यक्ष अवस्थी ने रेवती बाबू को याद दिलाया, सुनो रेवती, 12 मार्च को शोध समिति की बैठक है, सबको सूचित कर दिया है तुमने? रेवती बाबू ने कहा, सर सभी सदस्यों को सूचित कर दिया गया है, केवल उमेश त्रिपाठी और मालिनी शुक्ला के हस्ताक्षर नहीं हो पाए हैं, मैं आज ही उन्हें भी सूचित कर दूँगा। अध्यक्ष ने रेवती बाबू को हिदायत देते हुए कहा कि यह लापरवाही है, जाओ उनके कक्ष में अभी हस्ताक्षर कराके लाओ। रेवती बाबू, उलटे पाँव उमेश त्रिपाठी और मालिनी शुक्ला के हस्ताक्षर कराने चल दिया। पिछले हफ्ते भर से विभाग में डीआरस की बैठक को लेकर गहमागहमी बनी हुई है। कोर्स वर्क पूरे कर चुके बाईस शोध छात्रों को शोध विषयों का आवंटन होना है। विभाग के सभी शिक्षक, शोध प्रस्ताव तैयार कराने में व्यस्त हैं। विभागाध्यक्ष ने शिक्षकों को मौखिक हिदायत दे रखी है कि किसी भी छात्र को दलित-स्त्री विमर्श पर शोध नहीं कराया जाएगा। इसलिए अध्यापकों द्वारा शोध शीर्षक के चुनाव में अतिरिक्त सावधानी बरती जा रही है, अधिकांश अध्यापक, रीतिकाल और भक्तिकाल में तुलसी-सूर, घनानंद-बिहारी आदि पर ही शोध प्रस्ताव तैयार करा रहे हैं। प्रो. नित्यानंद नारद, खुद को मार्क्सवादी कहते हैं, पर उनका मार्क्सवाद विभाग में कभी फल-फूल नहीं पाया, पिछले साल अपने एक शोधार्थी को वे 'धूमिल' पर शोध कार्य कराना चाहते थे, पर विभागाध्यक्ष अवस्थी ने उस छात्र को सेनापति के काव्य वैभव पर शोधकार्य करने के लिए दिला दिया था, प्रो. नित्यानंद नारद, मनमसोस कर रह गए थे। उनका एक शोधार्थी, अल्पज्ञात कवि मुरलीधर मामा का कहानी साहित्य और दूसरा शोधार्थी- हिन्दी साहित्य में 'गाय महिमा' पर शोध कार्य कर रहा है। मालती शर्मा की भतीजी मिनी शर्मा का शोध प्रबन्ध, हिन्दी काव्य में 'चित्रकूट महिमा' पर प्रस्तुत होने वाला है।

आज 12 मार्च है। विभाग में 10 बजे से ही शोध छात्रों की भीड़ एकत्र होने लगी। जिसमें ग्यारह बजे से डीआरसी बैठक है। प्रो. जगन्नाथ जोशी की व्यस्तता तो पहले से ही बढ़ गई थी, अधिकांश शोधार्थियों के शोध विषय फौरी तौर पर वही फायनल कर रहे थे। मीटिंग आरंभ होते ही विभागाध्यक्ष ने नियम कायदे तय कर दिए। इसके बाद एक-एक शोध छात्र को अंदर बुलाया जाने लगा। पहले क्रम में दीपू सोनी को बुलाया गया। उसका शीर्षक था- 'रीतिकालीन कवियों का श्रृंगार वर्णन' इस पर प्रो. हरवंश चौबे ने एतराज जताते हुए कहा, अध्यक्ष जी इस पर तो आठ साल पहले एक छात्रा पल्लवी शर्मा शोध कार्य कर चुकी है। प्रो. जगन्नाथ जोशी ने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा कि अरे दीपू-सुनो-फिर इसमें थोड़ा बदलाव किए देते हैं, दीपू ने हाँ कह दी। जोशी जी द्वारा शीर्षक को बदल कर रीतिकालीन कवियों का नायिका वर्णन कर दिया गया। डी आर सी के सभी सदस्यों ने एक स्वर में शीर्षक पारित कर दिया। इसके बाद दूसरा छात्र राधेलाल जाटव उपस्थित हुआ। अध्यक्ष जी ने राधेलाल जाटव का शोध शीर्षक पढ़ा तो आग बबूला हो गए, उसका शोध शीर्षक था, ओमप्रकाश वाल्मीकि के काव्य में दलित चेतना। कौन है तेरा गाइड़? अध्यक्ष ने सख्त लहजे में कहा। राधेलाल काँप उठा। सर, इन्द्रजीत भारती मेरे गाइड़ हैं। अध्यक्ष ने केदार भारती को मीटिंग में ही लताड़ लगाते हुए कहा सुनो इन्द्रजीत भारती, ये भंगी और

चमारों के साहित्य पर यहाँ रिसर्च नहीं होगी, यही क्या कम है कि तुम लोग आरक्षण के बलबूते पर विभाग में नौकरी पा गए। केदार भारती ने कुछ कहना चाहा कि उसके पहले ही प्रो. दिलदार शर्मा, जिन्हें सभी डी.डी. शर्मा के नाम से जानते हैं, अपनी बात रखते हुए कहा सुनो राधेलाल, तुम्हारा तो नाम ही राधेलाल है। ऐसा करो, तुम हिन्दी काव्य में राधावाद पर शोधकार्य करो। सभी सदस्यों ने इस शीर्षक पर जोरदार सहमति दर्ज कराई, राधेलाल जाटव को शोध के लिए विषय मिला ''रीतिकालीन काव्यधारा में राधा प्रसंग''। अध्यक्ष जी, डी.डी. शर्मा के सुझाव पर परम प्रसन्न हुए। अश्वनी दुबे के निर्देशन में दो छात्राएँ-अपने शोध शीर्षक पाकर दु:खी मन से बाहर चली गईं, उनमें से एक नीलिमा चौबे को 'हिन्दी की सगुन काव्यधारा में अयोध्या प्रसंग। दूसरी छात्रा रंजना यादव को 'रीतिकालीन काव्य में वसंत वर्णन' दिया गया। रंजना यादव की इच्छा थी कि वह नागार्जुन के काव्य पर शोध कार्य करे, पर उसके इस शोध प्रस्ताव को सर्वसम्मति से अस्वीकार कर दिया गया। डॉ. इन्द्रजीत भारतीय के साथ डॉ. हेमन्त भारती के दो शोधछात्रों को भी सूर साहित्य पर शोधकार्य करने के लिए विवश किया गया। उनकी इच्छा भी दलित साहित्य पर शोधकार्य करने की थी। शेष बचे छात्रों को जो शोध शीर्षक दिए गए, उनमें से कुछ शोध शीर्षक इतने दिलचस्प हैं, कि उन्हें पढ़कर हँसी फूट पड़ती है। इनमें से कुछ शीर्षक इस प्रकार हैं- भक्ति साहित्य में गोवर्धन पूजा, तुलसी साहित्य में विप्र प्रसंग, सूरसाहित्य में माखन महिमा, राधा चौबे की कहानियों में प्रेम प्रसंग। राधा चौबे, रेलवे में टिकट बाबू हैं। विभाग के अधिकांश अध्यापकों के रेल आरक्षण राधा ही कराती हैं। कुल जमा साढ़े सात कहानियां लिखीं हैं राधा चौबे ने। वे भी सबकी सब, अप्रकाशित हैं।

एक अन्य शोध छात्र को 'शैलजा शुक्ला के काव्य में बादल राग' शोध शीर्षक दिया गया है। शैलजा शुक्ला इसी विभाग की पूर्व विभागाध्यक्ष रह चुकी हैं और उन्होंने रिटायरमेण्ट के बाद अपने बेटे की कमाई से दो काव्य संग्रह, तीन साल पहले

छपवाए थे, दोनों काव्य संग्रहों पर इसी साल, विभाग से ही एम.फिल. भी हो चुकी है।

अन्य स्वीकृत शोध शीर्षक इस प्रकार हैं- 'हिन्दी कविता में पौराणिक आख्यान, ब्रजभाषा काव्य में ऋतु वर्णन। विद्यापति की भक्ति भावना/रीतिकालीन कवियों का विरह काव्य। 'हिन्दी काव्य में हनुमान' भक्ति आदि।

शाम को शोध समिति की बैठक सधन्यवाद समाप्त हो गई। प्रो. जगन्नाथ जोशी ने छात्र-छात्राओं को आवंटित शोध विषयों की सूची, सूचना पट पर चस्पा करा दी।

अगले दिन कुछ साहसी शोध छात्रों ने अध्यक्ष से मुलाकात कर उनको आवंटित किए गए शोध शीर्षक बदलने का निवेदन किया, पर विभागाध्यक्ष ने सभी छात्रों को धमका कर विभागाध्यक्ष कक्ष से बाहर भगा दिया। इनमें से कुछ छात्रों ने कला संकाय डीन से मुलाकात कर हस्तक्षेप की माँग की, पर कलासंकायाध्यक्ष ने सभी छात्रों को आवंटित विषयों पर ही शोध कार्य करने की हिदायत दी। शोध विषयों के चयन पर कुछ शिक्षकों में भी कानाफूसी चलती रही, पर विरोध की हिम्मत कोई नहीं जुटा पाया।

असंतुष्ट छात्रों का एक समूह डॉ. इन्द्रजीत भारती से मिला। डॉ. इन्द्रजीत भारती को विभाग के सभी अध्यापक और छात्र, केवल केदार ही कहकर संबोधित करते हैं। इन्द्रजीत और डॉ. हेमन्त भारती की नियुक्ति चार साल पहले ही पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. जामवंत द्विवेदी के कार्यकाल में अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित लेक्चरर के पदों पर हुई थी। प्रो. जामवंत द्विवेदी और वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो. उर्मिलेश अवस्थी में कभी नहीं बनी। प्रो. जामवंत द्विवेदी को प्रो. उर्मिलेश अवस्थी ने हमेशा जामवंत ही कहा। कई अवसरों पर प्रो. जामवंत द्विवेदी को भालू-वानर कह कर उनकी अनुपस्थिति में उनका मजाक भी उड़ाया गया। प्रो. अवस्थी ने उनकी एक शिष्या दामिनी द्विवेदी का पीएचडी रजिस्ट्रेशन रद्द करा दिया था, उस पर आरोप था कि दामिनी द्विवेदी के शोध शीर्षक 'सौन्दर्य बोध और सूरदास' पर उनके मौसा डॉ. रामबोला शुक्ला, भोपाल से शोध कार्य कर चुके हैं। इससे पूरे हिन्दी जगत में प्रो. जामवंत द्विवेदी की बड़ी बदनामी हुई थी। वे अवस्थी से इसका बदला नहीं ले पाए और रिटायर कर गए, लेकिन वे इस प्रकरण को कभी भुला नहीं पाए। विभाग में प्रो. अवस्थी की मनमानी एवं हालिया असंतोष का जब उन्हें पता चला तो उन्होंने छुट्टी के दिन डॉ. इन्द्रजीत भारती को अपने घर बुला कर इस प्रकरण पर लम्बी बातचीत की और कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण दस्तावेज तथा विभाग में शोध सम्बन्धी अनियमितताओं की परमगोपनीय सूचनाएँ दीं। इसमें विभाग के ही कुछ शिक्षकों का शोध सम्बन्धी कच्चा चिट्ठा भी था। प्रो. जामवंत द्विवेदी से प्राप्त अभिलेखों से शोध में की गई अनियमितताओं के सबूत पाकर डॉ. इन्द्रजीत भारती ने अगले हफ्ते विभागाध्यक्ष तथा कुछ विभागीय अध्यापकों के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। इसमें विभाग के असंतुष्ट सभी शोध छात्र, डॉ. इन्द्रजीत भारती के साथ हो लिए।

डॉ. इन्द्रजीत भारती को विभागाध्यक्ष प्रो. उर्मिलेश अवस्थी, कई बार आरक्षित कोटे का अध्यापक कहकर अपमानित कर चुके थे। डॉ. अश्वनी दुबे द्वारा आरक्षित कोटे के अध्यापकों को सुअर और गधा कहे जाने की बात भी विश्वविद्यालय में प्रचारित हो ही चुकी थी।

डॉ. इन्द्रजीत भारती ने शोध सम्बन्धी अभिलेख तथा सारे आँकड़े जुटा कर डीन और कुलपति से मुलाकात कर उन्हें अवगत करा दिया। कुलपति ने इस प्रकरण का संज्ञान लेते हुए एक पाँच सदस्यीय जाँच समिति गठित कर हिन्दी विभाग की शोध सम्बन्धी अनियमितताओं पर एक महीने में जाँच रिपोर्ट देने को कहा। जाँच समिति गठित किए जाने की खबर से हिन्दी विभाग में हड़कम्प मच गया। विभागाध्यक्ष सहित प्रो. जगन्नाथ जोशी, डॉ. बीना पाठक, डॉ. अश्वनी दुबे, डॉ. उमाशंकर दीक्षित और डॉ. मालती शर्मा के शोध प्रबन्ध, सुर्खियों में आ गए। डॉ. इन्द्रजीत भारती ने अनुसूचित जाति आयोग को भी औपचारिक रूप से शिकायत दर्ज करा कर अवगत करा दिया था कि उन्हें विभागाध्यक्ष तथा विभाग के कुछ शिक्षक, जिनमें डॉ. अश्वनी दुबे प्रमुख हैं, उन्हें आए दिन जाति के नाम पर अपमानित करते रहते हैं। आयोग ने कुलपति को जाँच करने के लिए आदेश दिया और कुलपति को अनुसूचित जाति आयोग की ओर से इस सम्बन्ध में महीने भर में रिपोर्ट देने को कहा गया। कुलपति ने एक अन्य जाँच कमेटी इसके लिए भी गठित कर दी थी, डॉ. इन्द्रजीत भारती की सक्रियता तथा शिकायतों से अब विभागाध्यक्ष, बहुत परेशान रहने लगे। विभाग में अन्य शैक्षणिक गतिविधियाँ लगभग ठप्प हो गईं। केवल अध्यापन कार्य मात्र हो पा रहा था।

जाँच समिति द्वारा शोध से सम्बन्धित अनियमितताओं की जाँच रिपोर्ट हफ्ते भर में कुलपति को सौंप दी गई। जाँच समिति ने विभागाध्यक्ष प्रो. उर्मिलेश अवस्थी सहित, विभाग के तीन अन्य शिक्षकों के शोध प्रबन्ध और उनके शोध कार्य को अन्य विश्वविद्यालयों में किए जा चुके शोध प्रबन्धों की अनुकृति पाया। प्रो. जगन्नाथ जोशी ने 'सूरदास का चरित्र विधान' पर पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की थी, जबकि इसी शीर्षक से 198 1 में पटना विश्वविद्यालय में शोध कार्य सम्पन्न हो चुका था। डॉ. मालती शर्मा ने ''प्रसाद की काव्य भाषा पर पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की थी, जाँच समिति ने इस शीर्षक से 1985 में उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद से पीएच.डी. एवार्ड होने की पुष्टि की। विभागाध्यक्ष प्रो. उर्मिलेश अवस्थी ने 'हिन्दी काव्य में राम का स्वरूप और तत्त्व दर्शन' पर पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की थी, जबकि इसी शीर्षक से 1980 में बम्बई विश्वविद्यालय से रामप्यारे दुबे को पीएच.डी. उपाधि प्रदान की जा चुकी थी। डॉ. अश्वनी दुबे ने हिन्दी का सतसई साहित्य पर पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की थी, जबकि इसी शीर्षक से 1987 में दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा मन्दाकिनी मिश्रा को पीएच.डी. उपाधि प्रदान की जा चुकी थी। जाँच समिति की संस्तुतियों को कुलपति ने स्वीकार कर शोध सम्बन्धी चोरी करने के अपराध में विभागाध्यक्ष को उनके पद से तत्काल बर्खास्त कर अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश कर दी। प्रो. जगन्नाथ जोशी, डॉ. मालती शर्मा और डॉ. अश्वनी दुबे को सम्पूर्ण सेवाकाल में शोध निर्देशन से अवमुक्त कर उन्हें पदावनत कर दिया गया और अग्रिम अनुशासनात्मक कार्रवाई के लिए शासन को सूचित कर दिया गया।

डॉ. अश्वनी दुबे द्वारा डॉ. इन्द्रजीत भारती को अपमानित करने के प्रकरण में दोषी पाए जाने पर गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।

हाल में ही विभागीय शोध समिति द्वारा पारित सभी शोध प्रस्तावों को भी कुलपति द्वारा रद्द कर दिया गया। अब नए सिरे से शोध छात्रों को शोध शीर्षक आवंटित किए जाएँगे, जिनमें छात्रों की रुचि को प्राथमिकता दी जाएगी।

हिन्दी विभाग के अध्यापकों के खिलाफ की गई दण्डात्मक कार्रवाई की चर्चा विश्वविद्यालय के अन्य विभागों में भी सुर्खियों में आ गई। राजनीति विज्ञान विभाग और समाजशास्त्र विभाग में भी शोध को लेकर कानाफूसी तेज हो गई। वहाँ भी कुछ रिटायर जामवंत हरकत में आ गए, लेकिन उन्हें कोई इन्द्रजीत नहीं मिल पा रहा था। उसका कारण यह था कि इन विभागों में आरक्षित कोटे की सीटें ही नहीं भरी गई थी, इस पूरे प्रकरण से डॉ. इन्द्रजीत भारती, आरक्षित वर्ग के शिक्षकों और विद्यार्थियों के रोल मॉडल बन गए। प्रो. नित्यानंद नारद को छोड़कर सारे हिन्दी विभाग के शेष बचे अध्यापकों के चेहरे लटक गए। प्रो. नित्यानंद नारद डॉ. इन्द्रजीत भारती के साहस की प्रशंसा करते हुए अपने खुद के मार्क्सवादी वजूद की खोज खबर करने में लग गए। कुलपति द्वारा प्रो. नित्यानंद नारद को विभागाध्यक्ष पद पर नियुक्त कर उनसे विभाग को नियमपूर्वक संचालित करने की अपेक्षा की। डॉ. इन्द्रजीत भारती ने प्रो. नित्यानंद नारद से केवल यही अनुरोध किया कि सर, आप विभाग को अब गौशाला की जगह, मौलिक शोध केन्द्र के रूप में विकसित कीजिए। यह देश सबका है, विश्वविद्यालय भी सबका है, मैं तो भारती हूँ ही हिन्दी विभाग को भी भारतीय बनाना होगा, इसे हम सब मिलकर बनाएँगे। नव नियुक्त विभागाध्यक्ष प्रो. नित्यानंद नारद ने आश्वस्त किया कि अब विभाग में किसी को भी सुअर-गधा-भेड़-बकरी अथवा वानर-भालू कहकर अपमानित नहीं किया जाएगा। गाय और साँड़ भी अब विभाग में नहीं घूम-घुस पाएँगे। बदले हुए माहौल में विभाग की फिजा भी बदल गई, जो अध्यापक बिलकुल ही नहीं बदलना चाहते थे, वे भी पूरी तरह से बदले-बदले नजर आने लगे, ज्ञान के नए पौधे हिन्दी विभाग में लहलहाने लगे।

निर्णय

पूरन सिंह, दिल्ली

वह जाति, जिसमें मैं पैदा हुआ, सदियों तक भीषण अमानवीय प्रथा को झेलती हुई कराहती रही, को नेस्तोनाबूद करने में नाकामयाब रहा, तो मैं अपने आपको गोली मारकर खत्म कर लूंगा।'

'साथियों, यही प्रतिज्ञा ली थी हमारे मार्गदाता, हमारे जीवनदाता और हमारे समाज के उद्धारकर्ता ने। जी हां, मैं बात कर रही हूं महामानव बाबासाहब डॉ. भीमराव आंबेडकर की। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन शोषित पीड़ित मानवता के लिए स्वाह कर दिया। सोचकर देखो, अगर आज वे नहीं होते तो हम सब भी नहीं होते। हिंदू धर्म व्यवस्था जिसकी जड़ें गैर बराबरी, अन्याय और अत्याचार की नीव पर रखी हैं, महामानव ने इस व्यवस्था की चूलें हिला दी थीं। और आज भी, आप जरा से विचलित होते हैं तो आप इस व्यवस्था के शिकार हो जाएंगे। आपको जीना है तो स्वाभिमान और आत्मसम्मान से जिओ। कायर तो रोज मरता है। हमारी सांसे चलें तो बाबासाहब के नाम से और रुकें तो बाबासाहब के नाम से। मेरे सभी साथियों को मेरा यही संदेश है। इसी के साथ सादर जय भीम करती हूँ और विश्वास रखती हूँ कि इन बातों पर आप सब ध्यान देंगे और जीवन में आत्मसात करेंगे।' सुजाता की आवाज में आक्रोश था, विद्रोह था और जीतती-हारती व्यवस्था से लड़ने का आग्रह था।

सभा में आए लोग बाबासाहब की जय-जयकार कर रहे थे तो- 'सुजाता दीदी जिन्दाबाद-जिन्दाबाद' या फिर 'सुजाता दीदी तुम संघर्ष करो, हम तुम्हारे साथ हैं' के नारों से दशो दिशाएं गूंज रही थीं।

सामाजिक सुधारों के लिए आयोजित किया गया यह एक सादा समारोह था जिसमें राज्य के विभिन्न हिस्सों से समाज सुधारक और बुद्धिजीवी तथा विचारक आए हुए थे। जितने भी लोग आए थे उनमें सुजाता ही सबसे कम उम्र की लड़की थी। सुजाता बी.ए. के अंतिम वर्ष की छात्रा थी। वह जितनी कुशाग्र थी उससे कहीं ज्यादा सुंदर थी। युवा या कॉलेज के लड़के उसे सुनने कम, उसकी सुंदरता को देखने ज्यादा आते थे। कितने ही तो उसके दीवाने थे और कितने उसकी बुद्धिमता, समाज के लिए उसकी निष्ठा और ईमानदारी के कायल थे।

सुजाता के पिता गंगादीन कोई धनवान या नौकरीपेशा व्यक्ति नहीं थे। वे एक मेहनत-मजदूरी करने वाले साधारण व्यक्ति थे। इस समारोह में वे भी बैठे थे पीछे की ओर। वे हमेशा पीछे की ओर ही बैठते थे और अपनी बेटी को सुनते। खुश होते। उस पर गर्व करते। सही कहें तो सुजाता के पिता, पिता होने के साथ-साथ उसकी मां भी तो थे। सुजाता की मां नहीं थी।

धीरे-धीरे समारोह समापन की ओर अग्रसर होने लगा था। वे लौट आए थे घर। उनके लौटने के कुछ समय पश्चात, सुजाता भी आ गई थी। आते ही पिता के गले लगते हुए बोली थी, 'कैसा रहा मेरा भाषण, पापा।'

'खूब अच्छा।' गंगादीन बोले थे।

'आपको खुशी हुई न।' सुजाता बोली थी।

'बेटा, जब तुम बोलती हो और लोग तुम्हें सुनते हैं तो मुझे बहुत खुशी होती है। बस एक बात का ध्यान रखना कि कभी अपने लक्ष्य से भटकना नहीं। तुम्हारा लक्ष्य दुधारी तलवार पर चलना है जिसमें बहुत सारे लालच होंगे, ऊंच-नीच होगी। तुम कभी विचलित मत होना। और सबसे ज्यादा सतर्क ब्राह्मणों और ब्राह्मणवादी व्यवस्था से रहना। वे तुम्हें भटकाने की हजारों कोशिशें करेंगे। कभी भटकना नहीं।' गंगादीन बेटी को समझा रहे थे या फिर मन में कोई टीस साल रही थी या कुछ अंदर ही अंदर कसक रहा था, कोई फांस थी जो निकल ही नहीं रही थी। बेटी जान गई थी कि उसके पिता वह बात कभी नहीं भूल पाएंगे जिसने उनके जीवन को तहस-नहस कर दिया।

'पापा।' कहकर बेटी गंगादीन के सिर में अपनी अंगुलियों से कंघी करने लगी थी।

अभी पिता और बेटी की बातें चल ही रही थीं कि पांच-सात लंबी-लंबी, मंहगी कारें उनके छोटे से घर के सामने आकर रुकीं। उनमें से लोग बाहर आए और सीधे गंगादीन के घर में घुस गए थे।

'सुजाता जी, आपको बहिन जी ने बुलाया है।'

'मुझे।'

'जी, आपको। अभी।' उनमें से एक बोला था जिसकी लंबी-लंबी मूछें थीं, खूब बड़ी-बड़ी। घुटनों से भी लंबा कुर्ता था। गले में पंद्रह-सोलह तोले की चेन थी। उसके साथ तीन-चार गनर भी थे।

'अभी चलना है। पापा को खाना खिला देती तब चलती तो।' सुजाता की सांसें तो अपने पापा में ही बसती थीं। इसके पहले कि वह कुछ बोलती, गंगादीन ही बोले थे, 'चली जाओ बेटी। वे इतनी बड़ी हैं। उन्होंने तुम्हें बुलाया है। लोग तो उनके दर्शनों के लिए उनके पास जाते हैं। मैं खाना लेकर खुद ही खा लूंगा।'

'नहीं पापा। वे बड़ी हैं, एक बात लेकिन मेरे लिए तो आपसे बड़ा कोई भी नहीं है।' फिर आए हुए लोगों से बोली थी, 'थोड़ा वेट करो, पापा खाना खा लें फिर चलती हूं आपके साथ।' और उनके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही अपने पापा के लिए खाना परोस लाई थी। गंगादीन खाना खा रहे थे, वह, उन्हें निहारे जा रही थी। जब वे खाना खा चुके तो वह उन लोगों के साथ चलने लगी थी। 'पापा अपना ध्यान रखना। मैं आती हूं जल्दी।' कहकर उन लोगों की गाड़ी में बैठ गई थी। गाड़ियां हवा से बातें कर रहीं थीं और कुछ ही समय बाद, एक बहुत बड़े बंगले के सामने रुकी थीं।

बंगला क्या, राजमहल था। उन लोगों के साथ चल रही थी वह। कितने ही कमरों के अंदर कमरे, फिर कमरे और अंत में जाकर, उसके साथ आए लोग, बाहर ही रुक गए थे। एक साधारण सा आदमी उसे बहिन जी के पास ले गया था।

ऊंची सी कुर्सी। उस पर बैठी एक अधेड़ उम्र की महिला। पैरों को छूता भक्क सफेद कुर्ता जिसमें नीचे थोड़ी सी चमक रही सलवार और फिर चप्पल। बाल पीछे की ओर मुड़े हुए। 'सुजाता नाम है तेरा।' लगा कि कोई मर्द बोला हो।

'जी।'

'अच्छा बोलती है। तेरा वीडियो दिखाया था योगेश ने। आग है तेरे अंदर समाज के लिए। खुशी हुई।' बहिन जी बोली थीं।

सुजाता कुछ नहीं बोली।

'क्या करती है।'

'पढ़ती हूं।'

'किस कक्षा में।'

'बी.ए. फाइनल में।'

'क्या बनना चाहती है।'

'आई.ए.एस।'

'अगर दस आई ए एस आकर तेरे तलवे चाटें, ऐसा बना दूं तो।' बहिनजी की आवाज में गुरूर था।

'आई ए एस कभी किसी के तलवे नहीं चाटता। नेताओं को लगता है कि उन्होंने उसे वश में कर लिया है। फिर भी कहां आई ए एस की बुद्धि और कहां झूठे, मक्कार, धोखेबाज, ढोंगी पोलिटिशियन।' सुजाता पढ़ने में भी बुद्धिमान थी इसलिए अपनी बुद्धि का गुमान तो उसे भी था।

'चुप्प मूर्ख। तू जानती है किसके सामने खड़ी है। आज मैं चाहूं तो राजनीति का मुंह जिधर चाहूँ उधर ही मोड़ दूं। देश के सबसे बड़े प्रदेश की मैं एकछत्र राजा हूं। न जाने कितने बड़े-बड़े लोग मेरे एक इशारे पर क्या न कर डालें। आज प्रदेश में पोलिटिक्श का दूसरा नाम बहिन जी है और तू...।' बहिन जी का पारा सातवें आसमान पर था लेकिन सुजाता निडर थी और स्वाभिमानी भी।

'आपने जो भी कहा, हो सकता है वह सच हो। लेकिन मैं क्या करूं? मेरे तो आराध्य बाबासाहब हैं। मैं उनके अलावा किसी को नहीं जानती।' सुजाता के पिता ने उसे बाबासाहब नाम का अमृत पिलाया था उसी की शक्ति उसे मजबूत बना रही थी।

'मेरे साथ काम करोगी। मैं तुझे अपनी पार्टी से लड़ाऊंगी। जिताऊंगी। मैं चाहती हूं तू मेरा सीधा हाथ बने। तेरी बहादुरी और निडरता की मैं कायल हूं। मुझे अच्छा लगा। मैं तेरी परीक्षा ले रही थी। तू पास हुई।' कहकर बहिन जी ने उसे आशीर्वाद दे दिया था। हालांकि वे सुजाता से विचलित भी थीं। बड़े-बड़े ठाकुर, ब्राह्मण, बनिया, उनके आगे सिर झुकाते थे फिर ये....ये...बित्तीभर की लड़की। बहिन जी के मन में कहीं कुछ खटका था।

सुजाता ने हां में सिर हिला दिया था।

बहिन जी ने न जाने क्या इशारा किया कि वही

व्यक्ति जो उसे बहिन जी के पास लाया था, वापिस ले गया था।

बाहर वही सब लोग उसका इंतजार कर रहे थे। उसी गाड़ी में, जिसमें वह अपने घर से आई थी, उसे घर छोड़ दिया गया था।

गंगादीन बाहर ही इंतजार कर रहे थे। बेटी पापा कहकर उनके गले लग गई थी। वे उसका माथा चूमे चले जा रहे थे कि गाड़ी में आया बड़ी-बड़ी मूंछोवाला आदमी बोला था, 'बाबू जी, अब आपकी बेटी सिर्फ आपकी नहीं, सभी शोषित समाज की बेटी बन गई है। बहिन जी ने इन्हें आशीर्वाद दे दिया है। अगले विधान सभा के चुनाव जो दिसम्बर में होने हैं, उनमें आपकी बेटी चुनाव लड़ेगी। कोई दुनिया की ताकत उन्हें नहीं हरा सकती। बहिन जी खुद उनके साथ कैपेनिंग करेंगी।'

पापा ने बेटी की ओर देखा था फिर अपनी बाहों में भर लिया था मानो दुनिया की बलाओं से बचाना चाह रहे हों। फिर बोले थे, 'साब आप राजा लोग हैं, जो कह रहे हैं, सही ही कह रहे होंगे।'

उस व्यक्ति ने हाथ जोड़ दिए थे और 'अच्छा चलते हैं', कहकर सभी अपनी-अपनी गाड़ियों में बैठ गए थे। गाड़ियां हवा से बातें कर रही थीं।

दिन ढलने लगा था। शाम के बाद रात ने अपने पंख फैला दिए थे। बेटी अपनी चारपाई पर पढ़ने बैठ गई थी। गंगादीन उसे देखते जा रहे थे। बेटी पढ़ रही थी इसलिए उससे बात नहीं करना चाहते थे लेकिन मन में शंका थी उसे निकाल भी देना चाहते थे कि 'बेटा' बोल गए थे।

'पापा।' बेटी व्याकुल होने लगी थी और अपनी चारपाई छोड़ पापा के पास आ गई थी। 'आप ठीक तो हैं।'

'हां बेटा।'

'फिर'

'बेटा तुम चाहे कितनी ही बड़ी बन जाना, लेकिन अपने रास्ते को...अपने मार्गदाता को...और अपने आतताइयों को कभी मत भूलना।' फिर सुजाता के माथे पर हाथ फेरते हुए बोले थे, 'बहिन जी बहुत ताकतवर हैं। वे जिसे छू लेती हैं, वह सोने का हो जाता है। तुम्हें छू लिया है उन्होंने, अब तुम्हें सोने का बनने से कोई रोक नहीं पाएगा लेकिन तुम, जो-जो मैंने तुम्हें सिखाया उसे भूलना मत। तुम विचलित हुई तो वह दिन तुम्हारे पापा का...आ...खि...री...दि...न।' नहीं बोलने दिया था इसके आगे। होठों पर हाथ रख दिया था अपने पापा के, सुजाता ने। फिर सिर्फ इतना ही बोली थी, 'पापा, आपसे बढ़कर तो मेरे लिए कुछ भी नहीं है। और आपका बताया रास्ता मेरे लिए जीने का साधन।'

गंगादीन सहज होने लगे थे। बेटी अब फिर पढ़ने बैठ गई थी। पढ़ते-पढ़ते थक गई थी सो अब लाइट बुझाकर सोने की तैयारी कर रही थी। उसे भ्रम था कि उसके पापा सो गए हैं लेकिन पापा की आंखों से नींद कोसों दूर थी। धुप अंधेरे में गंगादीन आंखे खोले सपना देख रहे थे...

'सुनो।'

'ऑ।'

'एक बात पूछनी थी आपसे।'

'तो पूछो न।'

'अब बिटिया एक महीने की हो गई है। मेरा मन कर रहा था मंदिर चली जाती। उसके पैदा होने से पहले ही तो मांगा था भगवान से। अब भगवान ने मेरी सुन ली है। अब भगवान बुला रहे हैं। आप कह देते तो चली जाती।' सरावती ने बहुत प्यार से पूछा था।

'पहले भी तो कहां गई थी तुम मंदिर। घर में ही पूजा करते समय मांगा था बेटी को, तो अब क्यों जाना चाहती हो।' मन में शंका घनी थी। वही साकार होने लगी थी या फिर यह कहें कि मंदिर में जाना और जाकर पूजा अर्चना करना भंगी-चमारों के लिए वर्जित था सो डर लग रहा था गंगादीन को।

'हम जानते हैं आप डर रहे हैं। कहीं मंदिर का पुजारी हमें भगा न दे।' पत्नी थी वह। सब जानती थी कि उसका पति किस डर से मंदिर जाने के लिए मना कर रहा था।

'ठीक है। मैं मना नहीं कर रहा लेकिन बहुत संभलकर जाना। सोहर का शरीर है तुम्हारा और फिर उस पर मंदिर की पच्चीस ऊंची-ऊंची सीढ़ियां। ध्यान रखना अपना। न जाने मेरा मन क्यों परेशान सा है।' डर था। भय था लेकिन पत्नी की इच्छा भी थी, सो स्वयं को सरेन्डर कर दिया था गंगादीन ने।

'आप बिल्कुल फिक्र न करें।' कहकर अगले दिन जब शाम को सूर्यास्त हो गया था तभी गई थी सरावती भगवान शिव के मंदिर। पूजा की थाली सजी थी जिसमें- रोली, चंदन, घी, कपूर और फल-फूल रखे थे। चारों ओर देखा, कोई नहीं था। अकेली नहीं गई थी सरावती। पास में रहती थी नंदिनी। उसकी दूर की ननद थी। बारह-चौदह साल की, उसी को साथ ले गई थी।

नंदिनी बाहर पहरा दे रही थी। सरावती पूजा करके अभी संभल भी न पाई थी कि न जाने कहां से मंदिर का पुजारी प्रकट हो गया था। सरावती ने कोशिश भी की थी कि जल्दी से मंदिर छोड़कर चल दे। और उसने जैसे ही उठकर, बाहर, ऊपर वाली सीढ़ी पर पैर रखा ही था कि...कि...चीखा था मंदिर का पुजारी, 'हरामजादो, तुम्हें कितनी बार मना किया है मंदिर के गर्भगृह तक मत जाओ। मगर नहीं। मानते ही नहीं। कर दिया ना मंदिर अपवित्र। अब पूरा मंदिर धोना पड़ेगा।' फिर सरावती के बहुत पास जाकर उसे जोर का धक्का दिया था। संभल न पाई थी। ऊपर की पच्चीसवीं सीढ़ी से लुढ़कती-लुढ़कती नीचे गिरी थी। पूजा की थाली हवा में लहरा गई थी। माथे से लहू बह रहा था। गिरते ही बेहोश हो गई थी। साथ आई ननद, 'भाभी-भाभी' चिल्ला रही थी। सरावती कोई जवाब नहीं दे पा रही थी। ननद को और तो कुछ नहीं सूझा तो वह भागकर गंगादीन के पास आ गई थी, 'भइया...भइया...भाभी...वहां...मंदिर...वहां भाभी बेहोश...भाभी...भइया।'

गंगादीन समझ गया था कि जरूर कोई अनहोनी हुई है उसकी सरावती के साथ। बस जैसा बैठा था, वैसा ही भागा था। तब तक कुछ लोग इकट्ठे हो गए थे। सरावती को उठाकर ले जाने की कोशिश कर रहे थे। सरावती में कोई हलचल नहीं थी।

कहने को तो यह गांव ही था लेकिन सुविधाएं सभी थी जो प्राय: छोटे-मोटे शहरों में होती हैं, सो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र ले गए थे सरावती को। गंगादीन बार-बार यही कह रहा था, 'नहीं...नहीं सरवतिया तुम्हें कुछ नहीं होगा। तुम ठीक हो जाओगी। तुम से मना किया था मंदिर मत जाओ। मंदिर हम दलितों के लिए अनिष्ट है। धोखा है मंदिर हमारे लिए। मेरी बात नहीं मानी तुमने, कभी तो मान लिया करो मेरी बात। सरावती तुम्हें कुछ नहीं होगा।'

नाइट ड्यूटी शुरू हो गई थी फिर भी, अभी दिन की डॉक्टर उपस्थित थी। डॉक्टर महिला थी सो ममता और स्नेह से बोली थी, 'आप थोड़ी देर शांत रहो, मुझे देखने दो। मैं पूरी कोशिश करूंगी आपकी वाइफ को बचाने की।'

गंगादीन अंगोछा बांधे था सिर पर उसे ही रख दिया था डॉक्टरनी के पावों पर। 'बचा लो...बचा लो जिज्जी। मेरी सरावती को। सरावती के अलावा कोई नहीं है मेरा इस दुनिया में...जिज्जी।'

'आईल ट्राई टू माय बेस्ट' कहकर डॉक्टरनी ने गंगादीन को हिम्मत बंधाई थी। तब तक गंगादीन के पड़ौसी भी आ गए थे। वे सभी उसे साहस दे रहे थे। लेकिन...लेकिन...ठीक रात के एक बजे आखिरी सांस ली थी सरावती ने। बस सब कुछ लुट गया था गंगादीन का। सरावती का पार्थिव शरीर लेकर चले आए थे सभी लोग गंगादीन के घर। सुबह हुई थी।

जिद्दी था गंगादीन, 'सरावती की लाश तभी उठेगी जब पुजारी को पुलिस पकड़ेगी।'

गांववाले भी उसी के साथ हो गए थे। ग्राम प्रधान भी आ गया था। तभी न जाने किसने खबर कर दी थी थानेदार को, सो वह भी आ गया था।

'देखो गंगादीन तुम्हारी जाति के लोगों को मंदिर में पूजा-अर्चना की साफ मनाही है। तुम्हारी औरत ने नहीं माना। उसी का फल है।' ग्राम प्रधान ने दो टूक कह दिया था।

'लेकिन पुजारी हत्यारा है। उसी ने धक्का मारा मेरी सरावती को।' गंगादीन थानेदार के आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया था।

'तुम वहां थे।' थानेदार ने पूछा था।

'नहीं। मैं नहीं था। नंदिनी ने बताया। नंदिनी मेरी बहिन है।' गंगादीन बोला था।

'अरे मूर्ख...पुजारी जी ने धक्का नहीं मारा...तेरी औरत का पैर फिसला और वह लुढ़कते-लुढ़कते सीधी नीचे आ लगी...और वह...। ये बात पुजारी जी ने आकर मुझे बताई है। पुजारी जी थाने में बैठे हैं। वे निर्दोष हैं।' थानेदार झूठ बोल गया था।

'नहीं...नहीं...पुजारी झूठ बोल रहा है। आप छोड़

भी देंगे उसे लेकिन मैं...मैं नहीं छोड़ूगा। मार दूंगा उसे...मार दूंगा।' तेज-तेज चीख रहा था गंगादीन।

आवाज इतनी तेज थी, कि पास में सो रही बेटी की नींद खुल गई थी सो अपनी चारपाई छोड़कर आ गई थी पापा के पास। बेटी जान गई थी कि उसके पापा ने वही सपना देखा है, जिसे वे अक्सर देखते हैं और मार दूंगा...मार दूंगा कहते हैं। उनकी सांसें तेज चल रही थीं। बेटी पापा.....पापा कहकर उनके माथे पर हाथ फेरने लगी थी।

गंगादीन सिर्फ बेटी ही कह पाए थे। बेटी ने पानी दिया था। पानी पीकर अब वह शांत थे। 'तुम सो जाओ बेटा।' कहकर खुद भी सोने लगे थे लेकिन नींद...नींद कोसों दूर थी कि...कि फिर... थानेदार ने बजाय पुजारी को पकड़ने के गंगादीन को ही पकड़ लिया था, 'गंगा तूने अभी-अभी पुजारी को धमकी दी है कि तू उन्हें मार डालेगा...चल...मादरचोद...थाने, तुझे बंद करता हूं और एक धर्म के रक्षक को मार डालने, धमकी देने के केस में अंदर करते हैं, हरामजादे।'

दरअसल अब गंगादीन सपना नहीं देख रहा था अब तो याद कर रहा था...या यह कहें कि बातें थीं जो भुला ही नहीं पाया था कभी...

ग्राम प्रधान ठाकुर था। ठकुराइ उसमें कूट-कूट कर भरी थी सो थानेदार से बोला था, 'क्या गजब करते हो थानेदार साहब, गंगादीन की औरत मरी है...उसका गुस्सा होना लाजिमी है। आप ऐसे कैसे ले जाएंगे थाने। छोड़िए उसे।' थानेदार सहम गया था। छोड़ दिया था गंगादीन को। गंगादीन ने ग्राम प्रधान की ओर याचक की निगाहों से देखा था।

ग्राम प्रधान ने उसे हिम्मत दी थी।

सभी ने मिलकर उसकी पत्नी का अंतिम संस्कार कर दिया था।

अपनी सरावती के अंतिम संस्कार से लौटकर, अब सबसे बड़ी समस्या उसके सामने मुंहबाए खड़ी थी, वह थी, बेटी को पालने-पोसने की। एक माह की बेटी-कैसे होगा, क्या होगा। याद कर रहा था कि वहीं से थोड़ी सी गर्दन उचकाकर अपनी बेटी को देख भी लिया था। बेटी सो रही थी।

फिर याद करने लगा था...पास पड़ोसियों और गांव के सभी लोगों ने उसका साथ दिया था। और सबसे बड़ा साथ रहा था नंदिनी का। नंदिनी खुद भी बड़ी नहीं थी फिर भी वह उसका पूरा ध्यान रखती थी।

गंगादीन दिन में मजदूरी पर जाता और रात में बेटी की देखभाल करता था। चूर-चूर शरीर आराम मांगता लेकिन...हिम्मत और साहस का दूसरा नाम था तब गंगादीन।

बिन मां की बेटी...धीरे-धीरे बड़ी होने लगी थी और एक दिन वह भी आया जब बेटी स्कूल गई। उस दिन गंगादीन ने न जाने क्यों ऊपर की ओर हाथ उठा दिए थे और अपनी कमीज का दामन फैला दिया था।

बेटी बड़ी होने लगी थी। बेटी साहसी थी और पढ़ने-लिखने में भी अव्वल। एक...दो...तीन... पांच-सात...नौ...ग्यारह कक्षा छलांगती बेटी बारहवीं में आ गई थी। गंगादीन को जीने का अर्थ मिलने लगा था।

अब वह अपनी बेटी को ब्राह्मणवादी व्यवस्था का यथार्थ, ब्राह्मणों का ढोंग, उनकी चालबाजी, वेद-पुराणों, स्मृतियों, थोथे ग्रंथों में छिपी दलितों, असहायों के साथ धोखे की दास्तानें, उनके दमन के किस्से बताता। बेटी को लाकर अच्छी-अच्छी किताबें देता। बाबा साहब के संदेश, उनकी आत्मकथा, उनका जीवन संघर्ष सिखाता। हिंदू धर्म और उसकी अमानवीयता को समझाता। बेटी आत्मसात कर लेती। बेटी में विद्रोह, साहस, हिम्मत और मानवीयता कूट-कूट कर भरने लगी। गंगादीन ने सुजाता को तपाकर सोना बनाया था।

और आज उसी सोने की पहचान बहिन जी ने कर ली थी।

लौट आया था वापस। अब याद नहीं कर रहा था गंगादीन। अब अपने आप पर खुश हो रहा था कि न जाने कब पक्षियों की कलरव से जान गया था, सुबह हो गई है। उठकर बैठ गया था।

खटर-पटर सुनकर सुजाता भी जाग गई थी। दैनिक कार्यों में लग गए थे पिता-पुत्री। समय भागने लगा था। सुजाता अब पार्टी की सक्रिय कार्यकर्ता थी। पढ़ती भी थी कि...कि...तभी एक दिन फिर वही लोग आए थे।

'सुजाता दीदी, बहिन जी ने बुलाया है तुम्हें।' कहकर गाड़ी का दरवाजा खोल दिया था।

कुछ ही समय लगा होगा कि सुजाता बहिनजी की समक्ष थी।

'मैंने तुझे इसलिए बुलाया है कि मैं तुझे इलेक्शन में खड़ा करना चाहती हूं।' सुजाता की ओर देखकर बोली थी बहिन जी। बहिन जी इस बार अकेली नहीं थी। उनके सामने अन्य नेता बैठे थे जो लगभग सभी सुजाता से ज्यादा बड़े थे, उम्रदराज थे। सुजाता उनके सामने मेमने सदृश थी।

सुजाता ने सुना तो एक बार को तो अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ था उसे। बहिन जी का स्वर फिर गूंजा था, 'मैं चाहती हूं कि तू सिकंदरपुर सीट से खड़ी हो जहां से देवकीनंदन त्रिपाठी पिछली छः विधानसभाओं से लगातार चुनकर आ रहा है। मेरे बड़े-बड़े ताकतवर और धुरंधर नेता वहां से मुंह की खाकर आए हैं। उसे अगर कोई टक्कर दे सकता है तो तू है।' इतना कहकर उन्होंने वहां बैठे अपने दरबारियों को देखा था जिनकी साँसें उनके गले में ही अटकी थीं। लेकिन उनके आगे जवाब देने की या दिस-देट करने की किसी की हिम्मत नहीं थी। फिर भी अवधनारायण ने हिम्मत की। अवधनरायण बहिन जी के थोड़ा सा मुंह लगा था, 'भैन्जी वह तो जनरल सीट है। सुजाता दीदी अभी बच्ची है। उन्हें वहां से लड़ाना मतलब शेर के सामने मेमना खड़ा करने वाली बा...त।'

'चोप्प अवध...अगर तुझमें इतनी ही अकल होती तो आज तू इस सीट पर होता और मैं तेरी वाली पर...चोप्प।'

अवधनारायन ने अपनी धोती को आगे की ओर छूकर देखा था। गीली होते-होते रह गई थी। सिंकदरपुर सीट से देवकीनंदन त्रिपाठी के विरुद्ध जनरल सीट से सुजाता ने चुनाव लड़ने का शंखनाद कर दिया था।

गंगादीन ने सुना तो एक बार फिर अपनी कमीज का दामन फैला दिया था।

देवकीनंदन त्रिपाठी ने जब सुजाता का नाम सुना तो सिर्फ इतना ही कहा था अपने साथियों से,

'कउन है ये सुजातवा।'

'एक मजदूर की लौंडियां है। बी.ए. कर रही है।' कोई बोला था और चारों और अट्टाहास होने लगा था। 'अरे हम तो सोचे रहे कि बहिन जी शेर के सामने शेर खड़ा करवे करेगी लेकिन ये का ये तो बकरिया बांध दी....हा....हा।' बड़े-बड़े ताकतवार, नेता उसके सामने खड़े हुए थे और धूल चाट गए थे तो सुजाता किस खेत की मूली थी।

सुजाता ने जमीन-आसमान एक कर दिया था। कितनी देर जागना है, कितनी देर सोना है। नहीं जानती थी वह। नींद आती तो आंखों पर पानी मार लेती। पिता देखते लेकिन कुछ न कहते। देवकीनंदन त्रिपाठी...त्रिपाठी माने...ब्राह्मन...माने...पुजारी... माने...उसकी पत्नी का हत्यारा...माने...विद्रोह...माने बदला...माने...। अब अगर बेटी भी दांव पर लग जाए तो रोकूंगा नहीं।

चुनाव के दौरान तीन बार बहिन जी आयी थी सुजाता के इलेक्शन कैंपेन में और दोयम नंबर के नेता हर सप्ताह देवकीनंदन त्रिपाठी के चुनाव क्षेत्र में रैली करते थे। उधर सुजाता के कॉलेज के साथी भी थे।

अब मुकाबला जाति के समीकरण को छोड़कर युवा बर्सेज बुजुर्ग हो गया था। सवर्ण लड़के भी सुजाता के साथ थे।

सुजाता अब बोलती न थी, दहाड़ती थी। चीत्कार करती थी। चारों और लगता मानो हवा रुक जाती हो और आश्चर्य तो उस दिन हो गया जब विशाल भीड़ के सामने बहिन जी मंच पर बैठी थीं और बड़े-बड़े दबंग नेता भी बैठे थे और उनके साथ अलायंस के नेता और उम्मीदवार भी थे उनमें ही बोल रही थी सुजाता, 'ईंट से ईंट बजा दूंगी मैं। ये ब्राह्मन जिन्होंने सदियों से भोली-भाली मानवता को अपने खूनी पंजों में जकड़ कर रखा है। विश्वास दिलाती हूं उन पंजों को जड़ से उखाड़ दूंगी। मैं बाबासाहब की बेटी, मैं बहिन जी की लाड़ली... देवकीनंदन तेरी मां ने सच में तुझे दूध पिलाया है तो मेरी टक्कर को झेल। मैंने अपनी मां का दूध नहीं पिया। मैंने अपने पिता का रक्त पिया है। तेरी चीथड़े न उड़ा दिए तो मैं गंगादीन की बेटी नहीं। मैं वादा करती हूं तेरे साम्राज्य को नेस्तोनाबूद कर दूंगी।' फिर आगे और दहाड़ी थी, 'आज मानवता त्राहि-त्राहि कर रही है उसके जिम्मेदार सिर्फ तुम हो तुम, देवकीनंदन, तुझे मिटाकर ही दम लूँगी मैं। मैं बहिन जी के चरणों की सौगंध खाकर कहती हूँ तेरा सर्वनाश ही मेरा लक्ष्य होगा।' और अंत में जय भीम, पूरा बोल भी नहीं पाई थी कि सभा में बैठे लोग उठ खड़े हुए थे और नारों में दसों-दिशाए गूंजने लगी थी-

सुजाता दीदी, जिंदाबाद...जिंदाबाद।

जब तक सूरज चांद रहेगा, दीदी तेरा नाम रहेगा।

जहां दीदी का बहे पसीना, वहां रक्त बहा देंगे।

देवकीनंदन भाग गया है, शेरनी की दहाड़ से...आश्चर्य की बात थी कि लोगों ने बहिन जी जिंदाबाद नहीं कहा था सो स्वयं सुजाता ही बोली थी, 'बहिन जी जिंदाबाद-जिंदाबाद...बाबासाहब जिंदाबाद-जिंदाबाद।'

बहिन जी सन्न थी। पहली बार इतनी बड़ी भीड़ देखी थी। पहली बार अपने से ज्यादा जलजला देखा था। लेकिन आज वे खुश भी थीं कि उनका निर्णय गलत न था, फिर भी न जाने क्यों अंदर ही अंदर कुछ कसक रहा था...कुछ दरक सा गया था...कहीं टीस सी होने लगी थी।

सभा की समाप्ति पर, सब लोग अपने-अपने घरों को चले गए थे। देवकीनंदन त्रिपाठी जिसे मेमना समझा था वह तो शेरनी निकली। बस फिर क्या था, 'रमेशवा चल उसके घर।'

'किसके, मालिक?'

'उस लाऊंड़ियां के, अरे क्या नाम है उसका, सुजातवा के।' रमेश उनका ड्राइवर, राजदार, जड़खरीद सभी कुछ था।

और कुछ ही अरसे में मर्सडीज गंगादीन के घर के सामने खड़ी थी।

संयोग ही था कि सुजाता घर पर ही मिल गई थी। गंगादीन भी थे।

दोनों हाथ जोड़ दिए थे देवकीनंदन त्रिपाठी ने सुजाता और उसके पिता के सामने, 'तू बेटी है मेरी। पिता-पुत्री का कैसा मुकाबला। पिछले तीस साल से कोई माई का लाल मुझे डिगा नहीं सका। उस दिन की वीडियो देखा है बेटी। तू बोलती कहां है। तू तो दहाड़ती है। तू सच में शेरनी है।' फिर आगे बढ़कर सुजाता के पैर छू लिए थे। 'इतिहास साक्षी है। पिता ने हमेशा पुत्रियों का दान किया है-कन्यादान। बेटी, इस बार मुझे भी अभयदान दे दे।' अब ब्राह्मन अपने वास्तविक रूप में आ गया था या फिर ये कहो कि सांप केचुली छोड़ रहा था।

'पिता के लिए पुत्री आशीर्वाद की हकदार होती है। आप पिछले तीस साल से हैं। इस बार बेटी को अभयदान दे दो। विश्वास दिलाती हूँ, आपके मान-सम्मान में कोई कमी नहीं आने देंगे।' थोड़ी सी चतुर भी हो गई थी सुजाता।

सत्ता का सुख जिसने भोगा हो, वह कहां मानने वाला था। देवकीनंदन त्रिपाठी ब्राह्मन था, हार मानना कहां सीखा था उसने। साम, दाम, दंड, भेद सभी तरीके जानता था वह।

'अच्छा एक काम करते हैं।' अब वह गंगादीन की ओर मुड़ा था। उसे अपने धन-वैभव का बहुत गुरूर था, 'आप एक पिता हैं। एक पिता के लिए बेटी पराया धन होता है। सुजाता बिटिया के विवाह की पूरी जिम्मेदारी मेरी। इस बात से सहमत न हो और मेरा विश्वास न हो तो पांच करोड़ लाड़ो के एकाउंट में कल आ जाएंगे।' फिर अपने आप से ही बोला था, 'नहीं, नहीं पांच करोड़ कम हैं। बेटी है आखिर ग्यारह करोड़, अब ठीक है।'

इसके पहले कि गंगादीन कुछ बोलते, सुजाता आ गई थी, 'देवकीनंदन त्रिपाठी मेरे घर आए हैं आप। इसलिए कुछ नहीं कह रही आपसे। मेरे पापा से बड़े हैं। अब अगर आप यहां से नहीं गए तो..।'

देवकी नंदन त्रिपाठी नहीं रुके थे। 'रमेशवा चल' कहकर अपनी गाड़ी में बैठे तो कब फुर्र हो गए पता ही न चला था। मन ही मन कह रहे थे, 'हरामजादी, चमरिया अगर जीत गया तो तेरी हड्डियां भी न मिलने दूंगा, देखना कितने चढ़वाता हूँ तुझ पर।'

निरंतर चुनाव अभियान चलता रहा था। निश्चित समय पर वोट खुले थे।

तीस साल से एकछत्र राज कर रहे देवकीनंदन त्रिपाठी की जमानत जब्त हो गई थी। पूरे प्रदेश में सुजाता से ज्यादा किसी को वोट न मिले थे। देवकीनंदन त्रिपाठी के सीने पर सांप लोट गया था। और जब गंगादीन ने सुना तो जाने कब होठ चबा लिए थे...'पुजारी'।

बहिन जी ने लाखों-करोड़ों लोगों के सामने सुजाता को अपने गले लगा लिया था और सभी के सामने सुजाता दीदी जिंदाबाद- जिंदाबाद का नारा भी लगाया था। बदले में सुजाता ने उनके पैर छू लिए थे।

बहिन जी की पार्टी ने दो तिहाई बहुमत से सरकार बना ली थी जिसमें सुजाता भी मंत्री थी।

सुजाता, बहिन जी का सीधा हाथ थी।

सुजाता, सबसे कम उम्र की मंत्री थी।

सुजाता, सबकी प्रिय थी।

सुजाता, सभी का सम्मान करती थी।

समय भागने लगा था।

सुजाता आज भी अपने उसी एक कमरे के घर में रहती थी, हां! अब गंगादीन मजूरी पर नहीं जाते थे।

तभी एक दिन...उसके घर पर कुछ लोग आए थे। लंबे-लंबे जनेऊ लटकाए। गले में रूद्राक्ष की मालाएं, हाथों में कलावा और न जाने कितने हरे, पीले, धागे बांधे, ललाट पर नाक को छूता त्रिपुण्ड धारण किए, शरीर पर केवल पीली धोती...आधे नंगे थे वे सब।

'सुजाता दीदी से मिलना है।' वैसे तो सभी पीली धोती पहने थे लेकिन उनमें से एक, जो उन सबका सरगना दिख रहा था, उसने सफेद धोती पहनी थी।

'जी, बेटी अंदर है। अभी बुलाते हैं।' गंगादीन ने कहा था। उन्हें लगा था कि कोई चंदा लेने वाले होंगे।

'जी कहें।' सुजाता आ गई थी।

'आपसे एक विनती है।' वही सफेद धोतीवाला बोला था।

सुजाता ने सिर्फ सिर हिलाया था।

'दरअसल, हमारे इसी गांव में एक मंदिर है। वह मंदिर पुराना पड़ गया था। हमने पैसा इकट्ठा करके उसे बड़ा और भव्य बनवाया है। आपके आगे हाथ जोड़ते हैं। कल आप सुबह मंदिर आएं। उसका उद्घाटन कराना है, आपसे। स्वयं मैं आपके हाथों से पूजा-पाठ करवाऊँगा। सबसे पहले आपके हाथों से ही भगवान के शिवलिंग पर जलाभिषेक करवाया जाएगा। आपके आने से मंदिर की पवित्रता और बढ़ जाएगी। दीदी, मेरी विनती व्यर्थ न जाए। हम हाथ जोड़ते हैं, आपके आगे।'

अम्बर

शैली किरण, हिमाचल प्रदेश

अम्बर जिम जाती है, नौकरी करती है उसका जीवन स्तर बहुत ऊंचा है। एक गांव की लड़की शहर में नौकरी करती है, अकेली रहती है, गाड़ी में घूमती है। नए ढंग के कपड़े पहनती है। कल तक जिनके पास रुमाल तक खरीदने के पैसे नहीं थे, आज ब्रांडेड कपड़े पहनती है, जूते पहनती हैं, गांव के लोग उसे देखकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं और उसके ऑफिस के सहयोगी आपस में मजाक उड़ाते हैं', क्या चटक रंग पहनती है अम्बा, रहेगी तो रिजर्व वाली ही। पैसे से कपड़े खरीदे जा सकते हैं सलीका नहीं।'

अपने गांव में मां के पास जाती है तो वह लड़की आवारा कहलाती है, अम्बर की बहन सीमांत कहती है हम लोगों को लोग बहुत बातें करते हैं, जानबूझकर। कुछ ना भी करें तब भी बदनाम हो जाते हैं, दूसरी लड़कियां कुछ भी कर लें, उन्हें कोई कुछ नहीं कहता।

अम्बर इन बातों को हवा में उड़ा देती है।

उसने शहर से स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई पिता के साथ रहकर की। जब गांव आती है तो उसे लगता है कि यह कोई दूसरी दुनिया है। जहां उन लोगों के घर भी बौने हैं और कद भी बौने हैं। जहां गोबर के कंडे दीवारों से चिपके हुए हैं, जहां आज भी गांव की बरसात का पानी उनके घर के आगे से नाले से बह रहा है, जहां आज भी उसकी मां ऊंची जाति के लोगों के सामने संपन्न होते हुए भी ना जाने क्यों सर झुका कर चलती है। जहां आज भी उनकी जात वालों का पानी भरने का अलग कुआं है। जहां आज भी मोहल्ले की औरतें जब जुड़ती हैं तो कहती हैं कि पति की छोड़ी हुई सब की रखैल होती है। सब उसे बहाने से पूछते हैं कि उसे कितनी तनख्वाह मिलती है, उसके क्या-क्या खर्च हैं। इतना पैसा वह कहां से लाती है।

जब अम्बर सड़क पर घूमती अपनी नई गाड़ी में फर-फर धूल उड़ाती जाती सब बेशक उसके बारे में हर ढंग की बातें करते, अम्बर की शादी नहीं टिकी, आवारा है। कैसे कपड़े पहनती है, पति की छोड़ी हुई है, कौन आंख देख मक्खी खाता है, कुछ तो कहते हैं फिल्मों में काम करती है, गंदी फिल्मों में।

अम्बर कभी यहां लौटना नहीं चाहती। उसे लगता है यहां सब उसे आंखों-आंखों से खा जाना चाहते हैं, लेकिन विधवा मां शहर जाने को तैयार नहीं है। कहती है फिर से शादी कर ले।

अम्बर शहर में अपना घर खरीदने के लिए सोचती है, लेकिन परिवार की कोई ना कोई जरूरत लंबित रहती है। लंबी चौड़ी रिश्तेदारी उनसे लोक व्यवहार के खर्चे उसके सपनों की बाधा बन जाते हैं।

गांव के पांच मरले के घर में अम्बर मां को बहन को दिन-रात खटते देखती है। गांव के लोग कई बार उसकी कार को रास्ते से नहीं गुजरने देना चाहते, वे कहते हैं कि रास्ता उनकी जमीन में है, वह चाहे तो पैदल वहां से चली जाए। वह हजार बार मां को बोल चुकी है कि वह सिलाई का काम बंद कर दे, उसे लगता है शायद सिलाई की दुकान के लालच में ही मां गांव में डटी हुई है, लेकिन मां हर बार सलाह जरूर देती है कि वह शादी कर ले और अपना घर बसा ले।

अम्बर जानती है कि अगर वह खर्च भेजना बंद कर दे तो सीमांत की पढ़ाई रुक जाएगी, पिता की मृत्यु के बाद घर के हालात बहुत बदल गए हैं। शहर से वे लोग गांव चले गए। जहां उनका अपना घर था। शहर में उनके पास छत नहीं थी और गांव में खर्च ज्यादा नहीं थे। अम्बर पहले महिला हॉस्टल में रहती रही। फिर रहने के लिए एक फ्लैट किराए पर लिया। यहां भी मकान मालिक ने पूछा था, 'आपका पूरा नाम क्या है?'

अम्बर ने आधार कार्ड आगे बढ़ा दिया था और मुस्कुरा दी थी। उसकी सुंदर बड़ी आंखें गोरा रंग देख कर मकान मालकिन मकान मालिक के कान में फुसफुसाई थी। 'अच्छा किराया दे रही है एससी लगती नहीं है।'

अम्बर कहना चाहती थी कि दलित ही है लेकिन कह नहीं पाई। अकेली औरत घर की तलाश करते-करते थक गई थी। तीन साल से घर तलाश रही थी। सोमेश के साथ उसकी शादी ने उसे तोड़ कर रख दिया था। बड़ी हसरतों से उसने सोमेश से प्रेम विवाह किया था, लेकिन घर वालों ने सोमेश को बेदखल कर दिया था। अपने से भी छोटी जात की लड़की से शादी की थी। कुछ दिन तो सब कुछ ठीक-ठाक चला, लेकिन धीरे-धीरे बात इतनी बढ़ी कि सब खत्म हो गया। बेशक दोनों एससी वर्ग से थे, लेकिन सामाजिक हैसियत के हिसाब से सोमेश के घरवाले खुद को अम्बर से ज्यादा ऊंचा मानते थे। कभी-कभी तो अंबर को लगता था कि सोमेश की उससे शादी ही उसके पिता की मृत्यु का कारण है। बेशक वे हार्ट अटैक का शिकार हुए थे, लेकिन उन्हें इस बात का बहुत दुःख था, मलाल था कि पढ़ी-लिखी अम्बर ने नौकरी होते हुए भी बेरोजगार और कम पढ़े-लिखे आवारा सोमेश से शादी कर ली थी।

सोमेश उसके पिता की मृत्यु का अफसोस तक करने नहीं आया था। अब अम्बर भी अपने ऑफिस में रहने वाले आयुष को पसंद करने लगी थी, वह जाति क्रम में दलित था। लेकिन उससे निचले पायदान पर था और शायद इस कारण से वह उसे अपना नजदीकी समझती थी।

अम्बर को अब लगता है कि शायद जाति एक होना ही सबसे बेहतर है। आयुष ने भी उसकी तरह स्वर्ण औरत से शादी कर रखी थी। आयुष ने बताया था नीमा उसे बार-बार नीची जाति का कहकर अपमानित करती थी। नीमा सिर्फ बी.ए. पास थी। जबकि आयुष आफिसर बन गया था। विदेश भी रह चुका था। फिर भी नीमा उसे हरदम नीचा दिखाती रहती थी। बल्कि एक दो बार तो सबके सामने उसे थप्पड़ भी मार चुकी थी।

जब लड़ाई-झगड़े ज्यादा बढ़ गए तो आयुष ने नीमा से बातचीत करना बंद कर दी, लेकिन वह नीमा को खर्च देना बंद नहीं कर सका। महंगे प्राइवेट स्कूल में उसका बेटा पांचवी में पढ़ता था, जिस कारण उसका हाथ हमेशा तंग रहता। आयुष कई बार शिकायत करता, 'ऐसे लगता है जैसे नीमा मुझे इंसान नहीं एटीएम कार्ड समझती है।'

पर जब भी वे दोनों मिलते सामाजिक हालात पर खूब चर्चा करते, अक्सर शाम को एक ही गाड़ी में घर लौट आते। आयुष का घर पहले आता, वह अपने घर चला जाता। वहां से नीमा पैदल-पैदल अपने आवास पर आती। अक्सर उसकी मकान मालकिन पूछती, 'वह घर कैसे आई है, बाहर ऑटो तो कोई नहीं है, गाड़ी भी घर में ही है?'

गाड़ी तो अम्बर के पापा की निशानी थी, इसलिए वह उसे नहीं बेच पाई, लेकिन वह सोचती कि पेट्रोल के कुछ रुपए तो बचा सके, मां को दे सके।

अम्बर ने बिना बात मुस्कुराना सीख लिया था, सो जवाब देने की औपचारिकता से बच जाती थी।

आयुष उसके घर आने की जिद करता तो वह शालीनता से मना कर देती। वह जानती थी कि तलाकशुदा होने के कारण उसे घर मिलने में वैसे ही कितनी दिक्कतें हुई थी, अब अगर कोई पुरुष मिलने आ गया तो उसकी मुश्किलें और बढ़ जाएंगी। वह जानती थी कि आम शहरों में भी लोगों के दिल इतने बड़े नहीं हुए कि पुरुष मित्रों को आसानी से पचा सकें। लोग अभी भी खिड़कियों से उसे झांकते थे।

वह आयुष के साथ लॉन्ग ड्राइव पर चली जाती या होटल रेस्टोरेंट में साथ खाना खा लेती। अक्सर आयुष रो देता और कहता कि, 'काश उसने नीमा से शादी नहीं की होती तो आज यह गुलामी नहीं करनी पड़ती!'

अम्बर कहती, 'पुरुष कहां स्त्री की गुलामी करता है?' आयुष कहता, 'तुम दलित पुरुष को पुरुषों में क्यों रखती हो उन्हें पुरुषों के अधिकार कब मिले हैं? पितृसत्ता तो सवर्ण पुरुष के ही पास है।'

अम्बर बहस करती, 'मुझे जब सोमेश ने पीटा तब वह पुरुष ही था, जब अप्राकृतिक संबंधों के लिए इस्तेमाल किया तब वह पुरुष ही था, जब मेरे पिता से शादी के बाद भी मांगकर उसने दहेज लिया तब भी वह पुरुष ही था, मेरी छोटी बहन को जब उसने छेड़ा तब भी वह पुरुष ही था!'

आयुष तर्क करता, 'फिर भी यह दलित पुरुष की खुद की बुराई नहीं है यह शोषण के कारण उनमें आई है, उच्च वर्गीय पुरुषों की नकल करने के कारण आई है, वरना दलित पुरुष तो औरतों के पूरे हिमायती होते हैं!'

अम्बर मुड़ कर खीझ कर जवाब देती, 'पता नहीं मैं इन बातों को समझ नहीं पाती।'

आयुष उसे डांटते हुए कहता, 'इसीलिए तो कहता हूं कि पढ़ना-लिखना चाहिए!'

वह बहस करती, 'तो पढ़ने-लिखने से ही मुझे समझ आएगा कि मेरे ऊपर क्या बीता है? मुझे कोई इंसान टॉर्चर करता है, तो क्या तभी मुझे समझ आएगा? मुझे उसका विरोध करना चाहिए या मुझे उसका कारण सोचना होगा कि वह ऐसा क्यों कर रहा है? आज आप भी नीमा को कसूर देते हैं, लेकिन कल तो आपने भी उच्च वर्ण की लड़की को अपनी शादी के लिए चुना?

'यह तो प्रेम की बात थी।'

आयुष स्वर्ण स्त्रियों को हमेशा पढ़े-लिखे कामयाब, अमीर दलित पुरुषों से ही क्यों प्यार होता है। किसी झाड़ू मारने वाले, कूड़ा उठाने वाले, किसी मजदूरी करने वाले दलित से प्यार क्यों नहीं होता?

आयुष अपनी बात आने पर झल्ला कर बोलता, 'तुमने भी तो सोच समझ कर जीवन नहीं जिया एक

आवारा शराबी आदमी से शादी कर ली?'

आयुष मुझे लगता था सोमेश बहुत अच्छा इंसान है, वह दुःख में बहक गया है इसलिए दारू पी रहा है। मेरे घर में मुझे अच्छा और बुरा बताने वाला कोई नहीं था। मैं जो किताबें पढ़ रही थी, मैं जो फिल्में देख रही थी, उन सब में एक अच्छी स्त्री थी जो एक बुरे मर्द को सुधार रही थी, मेरे आस-पास मोहल्ले गांव में जितनी स्त्रियां थी, वह सब शराबी पुरुषों और बच्चों को सुधार रही थीं।

पर तुमने नीमा से शादी क्यों की? क्योंकि मेरे सब दोस्त उसे पसंद करते थे, क्योंकि मुझे लगा कि वह मेरी गरीबी में मेरे साथ है, लेकिन बाद में उसने मुझे बताया कि मैं विदेश में पढ़ा हूं तो उसने सोचा कि मैं उसे विदेश ले जाऊंगा।

आपस में काफी सारी बातें करते हुए वे काफी करीब आ गए थे, इतने करीब कि सब अम्बर को मैडम आयुष भी कहते उसकी पीठ के पीछे।

धीरे-धीरे आयुष ने उसे बताया कि उसकी पत्नी से उसके संबंध ठीक नहीं है, उनमें कोई भी जिस्मानी रिश्ता पिछले पांच वर्ष से नहीं है।

अम्बर ने गंभीरता से पूछा, 'तो क्या उसे औरत की जरूरत महसूस नहीं होती?'

आयुष ने बताया कि जरूरत महसूस होती है लेकिन नीमा को देखते ही उसका बुखार उतर जाता है।

आयुष ने पर्सनल होते हुए उससे पूछा, 'क्या उसे किसी पुरुष की जरूरत महसूस नहीं होती?'

अम्बर खुद में सिमट गई। बेशक शहर की रोशनी में वह पुरुष के साथ सहज थी लेकिन इतने पर्सनल सवालों के लिए तैयार नहीं थी, उसे पछतावा हुआ कि उसने आयुष से इतना निजी सवाल क्यों किया, लेकिन अब तीर कमान से निकल चुका था, बात बदलने के लिए उसने पूछा कि, 'आज लंच में क्या लाए हैं?'

आयुष मुस्कुरा दिया, 'तो तुम बात बदलना चाहती हो। ठीक है तुम्हारी मर्जी, लेकिन दो दोस्त आपस में हर बात कर सकते हैं, पुरुषों ने कितनी चालाकी से बात करने के विषय पर भी अपना कब्जा रखा है, सोचो जरा इस पर।'

अम्बर ने अपना टिफिन निकाला और आयुष का टिफिन भी खोला, भरवा करेले बने हुए थे अम्बर ने मटन बनाया हुआ था।

उसने आयुष से पूछा कि 'आप वेजिटेरियन हैं?'

आयुष मुस्कुराया, 'नहीं हमारे लोगों में वेजीटेरियन कहां है, यह भी तो हमें पोषण से वंचित करने की एक चाल है। तुम सोचो घास पात खाकर दुश्मन से लड़ा जा सकता है, क्या?'

अम्बर मुस्कुराई, 'लेकिन आप तो हमेशा वेजीटेरियन खाना लेकर आते हैं'

'उसकी वजह यह है कि मेरी पत्नी वेजिटेरियन है। वह तो यही बनाती है।'

अम्बर का मन कसैला हो गया। उसने कुछ मटन आयुष के डिब्बे में रख दिया और रोटी कुतरने लगी।

आयुष खाना खाते हुए बोला, 'बहुत अच्छा बना है। एक बात तो है तुम खाना बहुत अच्छा बनाती हो तुम्हारा पति इस मामले में बहुत लकी रहा होगा।'

अम्बर ने जवाब दिया, 'नहीं वह भी वेजिटेरियन था और अपना खाना वैष्णव ढाबे से बाजार से ही खाता था।' आयुष के मुंह में गाली आई, 'जब खाना तुम्हारे हाथ से नहीं खा सकता था तो तुम्हारे साथ सो कैसे सकता था!' अम्बर मुस्कुराई नहीं, उसकी आंखों में आंसू आ गए थे। 'उसका मानना था एक्चुअली उसके घर वालों का मानना था कि मैंने उस पर कोई जादू कर दिया था। वह कहता था कि हमारी नीच जाति के लोग जादू करना जानते हैं और स्त्रियां मर्दों को वश में कर लेती हैं।'

'कैसे जाहिल आदमी से तुमने शादी कर ली, तुम्हें पता है अमू हमारे घरों की कितनी स्त्रियों को डायन कहकर जिंदा जला दिया गया।' खाते-खाते आयुष की आंखों में भी पानी देख कर अम्बर बोली, 'कुछ डायन जिंदा भी बच जाती हैं।'

उसने अपने आपको घर आकर बहुत डपटा। उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था। आयुष पर उसका कोई अधिकार नहीं है। जो भी है, वह अपनी पत्नी की कितनी भी बुराई करे, जिंदगी की असल सच्चाई है कि उसका एक बेटा है एक परिवार है, उसकी पत्नी उसका खाना बनाती है। उसके साथ रहती है। क्या पता उसके साथ सोती भी हो। मर्दों की कौन सी बात सच है, कौन सी झूठ, कौन कह सकता है?

हर रोज तय करती कि आज आयुष से दूर रहना है, लेकिन अगले ही दिन कोई ऐसा बहाना बन जाता कि वह पास आ जाते हैं। बॉस का सेक्रेटरी साथ होने की मजबूरी बन जाता है, अम्बर चाहती कि उसका ट्रांसफर दूसरे विभाग में हो जाए ताकि उसे इस बंधन से मुक्ति मिल जाए। वह अपने मन की बात को पहचानती थी कि आयुष से प्रेम करने लगी है। वह जानती थी आयुष भी उसे पसंद करता है या उसे अम्बर की जरूरत है।

उसका दिल कहता, किसी का घर मत तोड़ना, तुम्हें कोई कितना भी पसंद हो। किसी ने तुम्हारा घर तोड़ा तो तुम्हें कितना दुःख हुआ, इस बात को याद रखो।

आयुष कहता दलित को त्याग करना ही सिखाया जाता है। देखो तो बाबा लोगों को सब जमीन दान कर देते हैं। अपने बच्चों को नहीं पढ़ाते, लेकिन पूजा-पाठ पर दिल खोलकर खर्च करते हैं। सब कोयल के जैसे हैं। कौवा के अंडे को पालते हैं, अपने अंडे गिरा कर, कितना शौक है इन सबको पन्नाधाय होने का अपने बच्चों को खत्म करके दूसरों पर दया दिखाने का, महान होने का, इन्हें कितना शौक है।

अम्बर को याद आता है उसके बाबा ने भी मुजारा कानून के तहत अपने नाम आवंटित जमीन जिस पर वे कई पुश्तों से हलवाहे थे, जमीदार को वापस लौटा दी थी, क्योंकि जमीदार खुद चलकर उन लोगों के घर आ गए थे। अम्बर गांव जाती तो उस करोड़ों की जमीन को देखकर उसे अजीब लगता। पिता बिना इलाज चल बसे, चाचा बिना इलाज चल बसे, बुआ बुढ़ापे में भी नरेगा में दिहाड़ी करती हैं, मां पशुओं का गोबर उठाती है, सीमांत अच्छी फीस ना जुटा पाने की वजह से डॉक्टरी करने से वंचित है, लेकिन दादा को किसी का कोई मोह नहीं था, भविष्य की कोई चिंता नहीं थी, घर में आज भर का अनाज है बस इतनी सी सोच। अम्बर गुस्सा हो जाती, दलित पुरुषों को गाली देने लगती, गैर जिम्मेदार ठहराने लगती।

तो आयुष कहता कि, 'बात ऐसी नहीं है। अपनी औरतों को कमाने की पूरी आजादी देते हैं, बाहर निकलने का पूरा अधिकार देते हैं, शोषण के कारण वैसे ही हो गए हैं, निर्णय लेने की क्षमता विकसित नहीं कर पाए हैं।'

अम्बर मेज पर कुहनियां टिका कर बहस करती, 'उनकी स्त्रियां स्तन ढकने के लिए स्तन काटती रही क्यों इतने दबे हैं?'

आयुष कहता दरअसल इंसान अपने समाज की परिपाटी पर चलता है। एक बार एक बुजुर्ग के दबने

से, हारने से परंपरा चल पड़ती है, उसे मानने की फिर आने वाली पीढ़ियां बिना सवाल किए परंपरा के नाम पर उसे ढोती चली जाती हैं, जो रूल करता है उसी की सोच परंपरा का निर्माण करती है।'

अम्बर अपना तर्क रखती, 'एक दलित स्त्री के शोषण में तो सब शामिल हैं, स्वर्ण पुरुष, दलित पुरुष, स्वर्ण स्त्री घर-बाहर सब लोग, सब जातियों के लोग, किस-किस से लड़े?'

आयुष गंभीर होकर जवाब देता, 'किसी से लड़ने की जरूरत नहीं है। बस खुद को सक्षम बनाने की जरूरत है, सबको जागरुक करने की जरूरत है, हीन भावना से निकलने की जरूरत है।'

अम्बर मुंह टेढ़ा कर मुस्कुराती तो वह समझ जाता कि उसकी बात का मजाक बनाया गया। वह गहरी सोच में पड़ जाता और फिर किसी फाइल में डूब जाता।

'अम्बर मैंने स्वर्ण औरत से शादी करके जिंदगी तबाह कर ली।' आयुष ने उदास होकर कहा। 'काश तुम्हारे जैसी मेरी बीवी होती।'

अम्बर फिर सामान्य हो गई उसे समझ नहीं आता था, आयुष पहले उसे गुस्सा दिलाता है। जब वह गुस्से में तमतमाने लगती है तो कोई ऐसी बात बोल देता है कि उसका सारा गुस्सा काफूर हो जाता है।

'अम्बर शादी के इलावा तुम्हारी जिंदगी में क्या कभी कोई नहीं आया?'

'नहीं सर, ऐसे कैसे हो सकता है। मैं भी एक सामान्य इंसान हूं और मेरी जिंदगी में भी कई लोग आए हैं।' अम्बर ने ईमानदारी से उत्तर दिया।

आयुष ने गंभीर होते हुए पूछा, 'मतलब सबसे तुम्हारा प्यार तो आत्मिक रहा होगा, मतलब तुम समझ रही हो ना कि तुम उनके साथ आगे तो नहीं बढ़ी होगी।'

अम्बर समझ कर भी ना समझ सकी। फिर भी धीरे से उसने ईमानदारी से कह दिया, 'नहीं सर ऐसा नहीं है। कोई इंसान जो किसी रिश्ते में उतरता है तो समझता ही नहीं, तय नहीं कर पाता कि उसे कितना आगे बढ़ना है।'

धीरे-धीरे आयुष अम्बर को बाजार ले जाने लगा। उसकी पसंद के कपड़े खरीदता, उसकी पसंद के जूते खरीदता, अपनी जरूरत का हर सामान उसकी पसंद से खरीदता, कहता कि उसे दलित होने के कारण सब की ज्यादा जानकारी नहीं है। वह अपने परिवार की पहली पीढ़ी है, जिसने धन और रूतबा देखा, वह कहता कि अम्बर के पिता सरकारी नौकरी में होने के कारण उसको बहुत जानकारी है। सब चीजों की और सलीका है। वह उसके लिए भी सामान खरीदने लगा। शुरू-शुरू में तो अम्बर टालने की कोशिश करती, लेकिन धीरे-धीरे उसे भी आयुष पर अपना हक लगने लगा।

दफ्तर में सब लोग उससे चिढ़ने लगे, यह लड़कियां होती ही ऐसी हैं, काम निकालने के लिए कुछ भी कर सकती हैं।

अम्बर अनदेखा कर देती थी, उसे लगता कि आयुष उसकी तरफ गहरा आकर्षित है और हो ना हो एक दिन उनका पति-पत्नी होना तय है, आयुष उसके घर भी आने लगा, उसने अपनी मकान मालकिन को यह बता दिया कि आयुष उसका बॉस है लेकिन यह नहीं बताया कि वह शादीशुदा और एक बच्चे का पिता है। आयुष मकान मालकिन की बेटी को हिसाब पढ़ा देती, जिसे धीरे-धीरे उसकी इस बात में आपत्ति खत्म हो गई कि वह अम्बर से मिलने क्यों आता है, बल्कि वह उसका इंतजार करती।

अम्बर डेट पर आयुष से पैड मंगा लेती। उसे कई बार लगता कि उनका संबंध दोस्ती से बहुत आगे बढ़ रहा है। लेकिन इस आगे बढ़ने को वे रोक नहीं पाती, सब तरह से उसे हमेशा इनकार ही मिला था, अपमान, हताशा ही मिली थी, शायद उसका कारण अम्बर का मुंहफट होना भी था, वह कोई भी बात साफस्पष्ट तरीके से कह देती थी जिस कारण उसका कोई भी रिश्ता लंबा नहीं चल पाता था। उसकी मां उसे अक्सर समझाती कि मीठा बोलने वाले का पानी भी बिक जाता है और कड़वा बोलने वाले का शहद भी नहीं बिकता। लेकिन अम्बर ने स्कूल कॉलेज के जमाने से खुद को सुरक्षित करने के लिए, एक चरित्र नाम की चीज को बचाने के लिए स्पष्ट तीखी भाषा का प्रयोग शुरू किया, जो अब उसकी आदत बन चुका था।

आयुष उसके तीखे शब्दों को आराम से सुन लेता कहता, 'जो व्यक्ति दबा हुआ है, लेकिन कमजोर है वह अपना विरोध कैसे करे?'

अम्बर पूरी तरह से आयुष पर निर्भर हो चुकी थी वह उसे भविष्य में अपने जीवनसाथी के रूप में देखने लगी थी, अब उसे डिप्रेशन से निपटने के लिए गोलियों की नहीं आयुष की जरूरत रह गई थी।

आयुष बहुत दुःखी, बहुत गंभीर रहता था। अम्बर उसे अपना तन-मन देकर सुखी बनाना चाहती थी और सपनों की दुनिया में इस कदर आगे बढ़ गई कि उसे उसके इलावा कुछ ना दिखाई देता था, ना समझ आता था।

आयुष का ट्रांसफर हो गया। अम्बर बुरी तरह से टूट गई। आयुष ने उसे दिलासा दिया कि जल्द ही वह अपनी बदली रुकवा लेगा। उसने बताया कि उसका एक साला मिनिस्ट्री में है, उसकी काफी चलती है।

अम्बर को बहुत अजीब लगा कि आयुष को बीवी के हाथ का खाना पसंद नहीं हैं, बीवी के लाए कपड़े पसंद नहीं हैं, परफ्यूम पसंद नहीं है, लेकिन साले से मदद लेना पसंद है।

फिर उसने सोचा शायद अम्बर के पास ही रहने के लिए आयुष यह सब कर रहा है। आयुष का ट्रांसफर रुक गया। अम्बर बहुत खुश हो गई, लेकिन यह खुशी ज्यादा दिन नहीं चल सकी, वह गर्भवती थी इस बात को आयुष को कैसे कहे, फिर भी एक दो महीने बाद उसने हौसला करके यह बात आयुष को बताई, तो वह बहुत खुश हुआ, 'चलो कहीं भाग चलते हैं।'

अम्बर बोली, 'आयुष कैसी बात करते हैं। हमारी नौकरी है, हमारी पहचान है, मेरी मां बहन सब हैं उनकी जिम्मेदारी है, कैसे भाग चलें?'

आयुष उदास हो गया, 'तो तुम ही कहो क्या करें, मैं तुम्हारी वजह से इस सब में फंस गया हूं। वो अब हमें समझ नहीं आ रहा है तो अब क्या करें।

अम्बर गुस्से में बोली, 'ठीक है आप घर जाइए मैं खुद देख लूंगी क्या करना है।'

आयुष चुपचाप उठकर चला गया, अम्बर समझ नहीं पाई कि इस चुपचाप जाने का अर्थ क्या है?

वह समाज से बेहद डर गई। उसकी तबीयत बहुत खराब थी, फिर भी उठी, और अपनी पहचान की डॉक्टर के पास गई उससे अबॉर्शन पिल्स ले आई।

उसने आयुष की राय लेने के लिए उसे बहुत फोन किए लेकिन पता नहीं कहां व्यस्त था कि फोन उठा नहीं पाया, अम्बर समझ नहीं पा रही थी क्या करें। दो तीन महीने से वह लगातार इस बारे में चिंतित थी। अवसाद उसे जकडता जा रहा था, घर में लेटी रहती दफ्तर से छुट्टियां लेकर।

अचानक व्हाट्सएप पर नीतिका की भेजी लंबी डाक आई हुई थी। अम्बर सबको डाउनलोड नहीं करना चाहती थी, लेकिन बिना कुछ खाए पिए इतनी देर से लेटी थी कि बेचारगी को कम करने के लिए फोटो डाउनलोड करके देखने लगी।

फोटो बॉस के बेटे के जन्मदिन की थी, शायद वो लोग बच्चे के स्कूल से अचानक ही दफ्तर आ गए थे, और ऑफिस वालों ने दफ्तर में ही बच्चे का जन्मदिन मनाने का फैसला कर लिया था। आयुष की पत्नी उसके साथ खड़ी थी उसका बेटा यूनिफार्म पहने बीच में खड़ा था किसी के चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी, शायद वे लोग सफल गृहस्थी का अभिनय कर रहे थे। या शायद अम्बर ने ही सफल गृहस्थी को असफल गृहस्थी समझा था।

अम्बर को नीतिका पर गुस्सा आया कि उसे यह फोटो क्यों भेजी गई।

उसने नीतिका को फोन मिलाकर डांटना चाहा, लेकिन नीतिका का फोन आउट ऑफ रीच आ रहा था।

उसने धीरे से अबॉर्शन पिल्स निगल ली। दो दिन बिस्तर में भूखी प्यासी चिल्लाती रही, तीसरे दिन मकान मालकिन बिना दरवाजा खटखटाये अंदर आ गई। 'अम्बर तुम बीमार हो? बताया क्यों नहीं?

उसने अम्बर को पीने के लिए जूस दिया, ब्रेड बटर दिया, ना चाहते हुए भी रोते-रोते अम्बर ने जूस पी लिया। अपनी बेचारगी पर खुद तरस आ गया मरने की भी सुविधा नहीं। उसे सामने सीमांत का कृतज्ञता से झुका चेहरा नजर आ गया। तनख्वाह लेकर मां के चेहरे पर आई संतुष्ट मुस्कान नजर आ गई।

मकान मालकिन अम्बर के पीले, उतरे चेहरे को देख के बोली 'उठो डॉक्टर के पास ले चलें?'

अम्बर ने मना कर दिया, मकान मालकिन ने उसके सिर पर हाथ फेरा, अम्बर शादी कर लो कोई तो तुम्हारी केयर करेगा।

अम्बर की रुलाई छूट गई, 'दीदी...!'

किराए का मकान

नीलम, असिस्टेंट प्रोफेसर लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली

उन दिनों किराए का एक अदद मकान ढूंढ़ना ही रश्मि का मकसद बन गया था। रोज-रोज अखबार में मकान के इश्तिहार देखना, डीलरों को फोन करना उसकी दिनचर्या का अहम हिस्सा बन गया था। उधर बच्चों की परीक्षाएं भी सिर पर थीं। ऐसे में मकान खाली करने का अल्टीमेटम और नया ढूँढने की झंझट चिंताओं के बादल बन कर उसके दिमाग पर हावी होने लगे थे। ऐसे में रोज की तरह उस रविवार भी मोबाइल की घंटी बजी थी।

रश्मि ने फोन उठाया 'हेलो! आप कौन बोल रहे हैं?'

उधर से आवाज़ आई- मैडम मैं रावत डीलर बोल रहा हूँ। आपने किराए के मकान की बात की थी। एक मकान बहुत अच्छा हाथ लगा है। मकान मालिक यहां नहीं रहता। वह राजेन्द्र नगर में 250 गज की कोठी में रहता है। बहुत बड़ा आदमी है। यहां पर उसका मकान खाली है। आप कहें तो उसका मकान आपको दिखा दूँ? आपको बहुत पसंद आयेगा।'

रश्मि यह सुन कर बहुत प्रसन्न हो गयी। 'हां हां रावत जी आप एक समय निश्चित कर लीजिए मैं भी ऑफिस से छुट्टी लेकर सीधे आपके ऑफिस आ जाऊंगी।'

रावत ने 'ठीक है मैडम' कह कर फोन रख दिया।

अगले दिन रश्मि नये जोश और उमंग के साथ अपने ऑफिस के लिए तैयार होकर निकलने लगी। रश्मि ने कहा- 'सुनो सुशील, हो सके तो आज तुम ऑफिस से जल्दी आ जाना। डीलर का फोन आया था उसने कहा है कि दो तीन मकान वो आज ही दिखा देगा।'

'तुम्हें देखना है तो तुम जाओ। मेरे पास इन सब फालतू कामों के लिए वक्त नहीं है। अपने ऑफिस के बगल में मकान लेने का फैसला तुम्हारा था, न कि मेरा। फिलहाल इस काम के लिए मैं ऑफिस से छुट्टी नहीं ले सकता। तुम औरतों का क्या है? ऑफिस में काम तो करती नहीं हो, बस गपशप में अपना समय पास करती हो। औरत होने के नाम पर खूब फायदा उठाती हो तुम लोग।' सुशील उपेक्षा के भाव से बोलता गया।

'क्या बकवास कर रहे हो सुशील!'

'बकवास नहीं सच है।'

'क्या तुम कहना चाहते हो हम औरतें काम नहीं करतीं, फ्री का वेतन लेती हैं? कम से कम तुम तो ये बात मत कहो। तुमसे तीन गुना काम करती हूँ अकेले। सुबह से मशीन की तरह चलती रहती हूँ। बच्चों की जिम्मेदारी, घर की जिम्मेदारी, ऑफिस की जिम्मेदारी क्या नहीं निभाती हूँ। घर की जिम्मेदारी, मेरी ही सिर्फ अकेली नहीं है, यह तुम्हारी भी है। मैं भी बाहर काम करती हूँ और तुम इतनी घटिया बकवास कर रहे हो। शर्म आती है तुम्हारी इस सोच पर।'

यह सुनते ही सुशील रश्मि पर चीखने लगा। 'हरामजादी कहीं की। साली मुझसे तुलना करती है।'

'बस सुशील बहुत हो गया। गाली मत देना।'

सुशील ने धमकाते हुए कहा 'जा तुझे जो करना है कर।'

रश्मि का मन आया कि सब छोड़-छाड़ कर घर बैठ जाये। लेकिन मासूम बच्चों को देखकर वह फिर से अपने को तैयार कर ऑफिस के लिए निकल पड़ी। रास्ते में रश्मि सोचती रही कि क्या घर की सारी जिम्मेदारी का ठेका उसी ने ले रखा है। सुशील को देखो सुबह उठता है, नहाता है, खाता है और ऑफिस निकल जाता है। उसे यह भी चिंता नहीं होती कि बच्चे कैसे स्कूल जायेंगे। सारी जिम्मेदारी तो बस मेरी ही है। बच्चों को स्कूल भेजना, स्कूल से घर लाना ट्यूशन भेजना, उनको पढ़ाना, उनके साथ खेलना आदि।

'ये लीजिए मैडम आपका ऑफिस आ गया।' रिक्शावाले ने कहा। रिक्शेवाले की बात सुनकर रश्मि जैसे नींद से जगी।

रिक्शे से उतर कर वह धीरे-धीरे ऑफिस की सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

सारे तनाव के बाद भी आज रश्मि बहुत उत्सुक है। उसने ऑफिस का सारा काम फटाफट निपटाया और अपने बॉस के केबिन में गई और बहुत ही शालीनता से बोली 'सर आज मुझे किराए का मकान देखना है, थोड़ा जल्दी घर जाना है। मैंने सारा काम निपटा दिया है।'

'मैडम आप औरतें भी जब देखिए तब कोई न कोई बहाना लेकर आ जाती हैं, कभी बच्चों के स्कूल जाना है, कभी बच्चा बीमार है, तो कभी कामवाली बाई नहीं आयी, न जाने कितने बहाने। आप लोगों के ही तो मजे हैं, फ्री की तनख्वाह लेती हैं आप लोग। मेरा बस चले तो औरतों का सलेक्शन ही न करूं। खैर, छोड़िए आप लोगों का क्या है अभी जरा कुछ कहा नहीं कि आप वूमेन कमीशन या एससी कमीशन पहुंच जायेंगी।' यह कह कर शर्मा जी दांत निपोरने लगे।

रश्मि का मन हुआ कि वह अभी यहीं खड़े-खड़े दो चार बात शर्मा जी को सुना दे। लेकिन अभी उसके पास उलझने का समय नहीं था। उसे जल्द-से-जल्द पांच बजे घर पहुंचना था। उसे ऑफिस के आसपास ही मकान चाहिए था, ताकि वह ऑफिस के साथ-साथ बच्चों की भी देखभाल कर सके। सुशील से तो उसे न के बराबर सहयोग मिलता था। इसलिये ऑफिस के आसपास मकान लेना उसकी मजबूरी बन गई थी।

अचानक घंटी बजी। बेटी ने दरवाजा खोला और रश्मि की ओर देखकर कहा- 'मम्मा! मम्मा! कोई अंकल आये हैं आपसे मिलने।'

रश्मि ने कहा 'बेटा उनसे नाम पूछो।'

'मम्मा कोई रावत अंकल हैं।'

'अच्छा! अच्छा! बेटा! आप उनसे बोलो वो

नीचे वेट करें मैं आती हूँ।' रश्मि जल्दी-जल्दी मुंह-हाथ धो बच्चों को हिदायत दे फटफट सीढ़ियां उतरने लगी।

'अरे! रावत जी माफ करिये, थोड़ी देर हो गई।'

'अरे कोई बात नहीं मैडम, पांच-दस मिनट तो चलता ही है। आज मैं आपको दो-तीन मकान दिखाता हूं, हो सकता है इनमें से आपको कोई न कोई मकान पसंद आ जाएगा।'

'ठीक है!' कहकर रश्मि रावत के साथ धीरे-धीरे चलने लगी।

कई मकानों को देखने के बाद भी रश्मि को कोई मकान पसंद नहीं आया। 'रावत जी कोई और मकान दिखाइए। यहां तो किराया इतना मांग रहे हैं जैसे लगता है कि दस रुपए की बात है। दिल्ली जैसे शहर में सस्ते और अच्छे मकान का मिलना तो सपना है।'

'कोई बात नहीं मैडम जी! आप चिंता मत करो, अभी आपके पास एक महीने का समय है, आपको जल्द ही कोई अच्छा मकान दिलाते हैं। ऐसा करते हैं कल आपको कुछ और एक दो मकान की चाभी मंगा देते हैं। आप पसंद कर लेना।'

'ठीक है रावत जी अब हम चलते हैं।'

रश्मि अगले दिन फिर ऑफिस से आने के बाद रावत डीलर का इंतजार करने लगी। उसके मन में बस एक ही हलचल चल रही थी, बस उसे सही कीमत पर थोड़ा ठीक-ठाक मकान मिल जाये। जहाँ वह आराम से चार पांच साल काट ले, क्योंकि बच्चों के साथ बार-बार मकान शिफ्ट करने में बहुत दिक्कत होती है, ऊपर से ऑफिस वालों की अलग से सुनो। सुशील से तो उसे कोई उम्मीद ही नहीं है। सुशील का पुरुष अहम उस पर इतना हावी है कि वह सोचता है कि सारे घर की जिम्मेदारी उठाने का काम सिर्फ औरतों का ही है। उसका मानना है कि अगर उसे नौकरी करना है तो घर की सारी जिम्मेदारियों का वहन करते हुए करे। इसी बात को लेकर रश्मि और सुशील में अक्सर तू-तू मैं-मैं हो जाती थी। इन सबके बावजूद सुशील की नजरें रश्मि के वेतन पर हमेशा गड़ी रहती थीं। वह इन्हीं बातों में उलझी थी कि तभी फोन की घंटी बजती है और रश्मि अपने जीवन की उलझनों से बाहर आने का प्रयास करती है।

आज रावत बड़ी सी गाड़ी लेकर आया है। उसका रूप रंग कुछ बदला-बदला सा लग रहा था। 'अरे मैडम जी आपके हसबैंड का फोन आया था वह कह रहे थे कि मैडम को ही मकान दिखा दो वो नहीं आ सकते। मुझे देर तो नहीं हुई मैडम जी।' अभी रश्मि कुछ बोलती तभी वह तपाक से फिर बोला 'वैसे मैडम जी आपकी उमर कितनी है?'

'चालीस साल।'

'लगता नहीं! मैडम जी कि आप चालीस साल की हो। अभी तो आप बस तीस की लगती हो। रश्मि कुछ झेंप सी गई। उसे रावत का ये बेबाकीपन कुछ अटपटा सा लग रहा था। उधर रावत अपने आवेश में रश्मि से अपने जीवन के बारे में मदहोश होकर बताते जा रहा था। मैडम मैं भी अभी बयालीस साल का हूँ। मेरी भी यहाँ एक बहुत बड़ी कोट्ठी है। महीने के चार पांच लाख रुपया ऊपर वाले की कृपा से कमा लेता हूँ। मैडम जी!'

'हां-हां, कहिए रावत जी।'

'लगता है आपको मेरी बातों में कोई दिलचस्पी नहीं है। लीजिए ऑफिस आ गया। इस बार तो आपको मकान पसंद आ ही जायेगा। मैंने कसम खा रखी है कि मकान कहीं-न-कहीं दिला कर रहूंगा।' रावत ने कुछ लोगों को फोन किया और इंतजार करने लगा। थोड़ी देर बाद घंटी बजी!

'हेलो हां, सिंघल साहब, आज आपने मकान दिखाने की बात कही थी।'

'हां रावत जी, दो-तीन मकान हैं। लेकिन आप जरा पार्टी से पूछिए उनकी जाति क्या है?'

'क्यों भाई, बात क्या है?'

'एक पार्टी तो बहुत अच्छी है, डॉक्टर हैं, उनकी बहुत बड़ी कोठी है। वो अपना दूसरा घर किराए पर देना चाहते हैं। लेकिन उन्होंने कहा है कि वह अपना घर सिर्फ पंडित, सिंह और गुप्ता को ही देंगे। बाकी किसी और जाति को नहीं।'

'अच्छा रुकिए मैं जरा मैडम से पूछता हूँ।' प्रापर्टी डीलर रावत ने पीछे मुड़कर रश्मि से पूछा 'मैडम आप गुप्ता हो, पंडित हो या सिंह?'

रश्मि इतना सुनते ही थोड़ा भड़की। 'क्यों रावत जी मेरी जाति से आपको क्या लेना देना? मैं किसी भी जाति की हूँ इससे मकान से क्या वास्ता?'

'अरे मैडम, आप नाराज मत हो। जिसका घर है उसको सिर्फ पंडित, सिंह और गुप्ता फैमिली ही चाहिए। सबकी अपनी-अपनी सोच है मैडम जी।'

रश्मि थोड़ा ठहरकर बोली 'इसमें से मेरी कोई जाति नहीं है। और मुझे ऐसे मकान की जरूरत भी नहीं जो जाति पूछ कर मकान देने की बात करते हैं। बस नाम के डॉक्टर हैं, अभी भी जाति में उलझे हुए हैं। वाह रे मेरे देश के पढ़े-लिखे लोग।' वह मन ही मन बड़बड़ाने लगी।

रश्मि के चेहरे के भाव को देखकर रावत ने कहा 'देखिये न मैडम आज के इस दौर में भी लोग जाति पूछ कर अपना मकान दे रहे हैं।'

रश्मि को आश्चर्य तो नहीं हुआ लेकिन दुःख जरूर हुआ क्योंकि उसके ऑफिस में भी उसके पीठ पीछे उसे रिजर्व कैटेगरी का कहा जाता है। लेकिन रश्मि बहुत ही बोल्ड और तेजतर्रार कर्मचारी है। वह बाबा साहब के विचारों को ही अपना गहना श्रृंगार मानती है। उसी को वह पहनती और ओढ़ती है। बाबा साहब उसके प्रेरणा हैं। कलम की ताकत को वह सबसे बड़ा हथियार मानती है। यही कारण है कि वह अपने स्वर्ण सहकर्मियों के साथ पूरी बोल्डनेस के साथ रहती है। और अपना काम बिना डरे करती है।

एक बार की बात है उसकी सीनियर सहकर्मी ने उसे बुलाया और आपस में बातचीत करने लगीं। बातचीत करते-करते उसने कहा 'सुनो रश्मि! आप कुछ लोग तो रिजर्वेशन से आये हो इसलिए आप

लोगों को कड़ी मेहनत से काम करना चाहिए। किसी को भी शिकायत का मौका नहीं देना चाहिए।'

'क्या बात करती हैं मैडम! ये आप बहुत गलत कह रही हैं। आपके कहने का मतलब है कि जो रिजर्वेशन से आते हैं उनके पास ज्ञान नहीं होता। यह सोच ही यह दर्शाती है कि आज भी आप लोगों के मन में आरक्षण से आये लोगों के प्रति दुर्भावना है। मैं दावे के साथ कहती हूँ इस ऑफिस में आप किसी से भी मेरी तुलना कर लीजिए मैं किसी से कम नहीं। आज जो कुछ भी हूँ मैं अपनी मेहनत और काबिलियत से हूँ। इस ऑफिस में बहुत सारे स्वर्ण सहकर्मी ऐसे हैं जिनको पेपर डिस्पैच तक करना नहीं आता उनको तो आप जैसे लोग नहीं कहते कि बावन प्रतिशत आरक्षण लेकर आये हो तो जरा मेहनत से काम करो। टाइटिल लगाने मात्र से ही कोई ज्ञानी और अज्ञानी नहीं होता।'

'अरे रश्मि! मैं आपको नहीं कह रही हूँ। मैं तो आपके बाकी और साथियों को कह रही हूँ जो रिजर्वेशन से आये हैं।'

'मैडम! आप मुझे कहिए या मेरे साथियों को पर गलत बात, तो गलत है। आप लोगों को अपना ये माइंड सेट बदलना होगा। आप लोग दिल्ली जैसे महानगर में रह कर इस तरह की भाषा और सोच रखते हैं।' रश्मि कुछ आक्रोश में बोलती गई।

अचानक घंटी बजती है, रश्मि अपनी निद्रा से बाहर आती है। मोबाइल उठा कर देखती है रावत का फोन है। वह नंबर डायल करती है।

उधर से आवाज़ आती है- 'नमस्कार मैडम जी!'

'हां बोलिये रावत जी! आपका फोन था!'

'हाँ मैडम जी, एक पार्टी मिली है आप कहिए तो समय फिक्स कर लें। आज एक दो मकान आपको और दिखा दें।'

'हां! हां! आप समय बता दें। मैं समय से पहुंच जाऊंगी।'

'ठीक है मैडम! मैं आपको आकर पिक कर लूंगा।'

'नहीं-नहीं आप रहने दीजिए। मैं खुद आपके ऑफिस आ जाऊंगी।'

'ठीक है मैडम।'

दरअसल, रश्मि नहीं चाहती थी कि रावत उसे लेने के लिए घर आये। पता नहीं क्यों उसे रावत के व्यवहार में कुछ अजीब सा बदलाव दिखाई दे रहा था। वह यह बात सुशील से भी नहीं कह सकती थी क्योंकि सुशील वैसे भी बहुत शक्की मिजाज का है। बहुत उहापोह के बाद इस विषय पर उसने अपनी दोस्त मंजू से बात करना उचित समझा।

मंजू ने समझाने के लहजे में कहा- 'देख रश्मि तूने जो बात बताई है उसके आधार पर मैं बस इतना ही कहूंगी कि आज अपना काम निपटा और दूसरा डीलर देख। कुछ मर्द ऐसे होते ही हैं। अकेली औरत को काम करते देख उनकी नियत ऐसे ही बदलती है।'

'हां तू ठीक कह रही है मंजू आज मैं मकान देखकर दूसरे डीलर से बात करती हूँ।'

रश्मि जल्दी से तैयार होकर ठीक आधे घंटे के बाद रावत के ऑफिस पहुंच गई।

'आइये-आइये मैडम, चाय लेंगी या कॉफी।'

'अरे नहीं रावत जी! आप फटाफट बस मकान दिखा दीजिए।'

'मैडम लड़का चाभी लेने गया है बस पांच मिनट में आ रहा है। मैंने सिंघल जी के अलावा श्रीवास्तव जी से भी बात की है वे एक दो मकान और आपको दिखा देंगे।'

तभी श्रीवास्तव भी ऑफिस के अन्दर दाखिल होता है।

'अरे श्रीवास्तव जी इनसे मिलिए, ये रश्मि मैडम हैं। बहुत बड़ी सरकारी कंपनी में काम करती हैं। एक कोई अच्छा सा मकान इनको दिखा दीजिए।'

'हां! हां! क्यों नहीं। दो चार मकान मेरे पास हैं, मैं मैडम को दिखा देता हूं। चलिए देखने चलते हैं।' श्रीवास्तव ने कहा।

एक दो मकान देखने के बाद रश्मि को पसंद तो आया लेकिन खानपान की बंदिश थी। आप नॉन वेज नहीं खा सकते।

'लेकिन हम तो प्योर नॉन वेजिटेरियन हैं और खाने को लेकर हम कोई समझौता नहीं करते।'

'पता नहीं कैसे-कैसे लोग होते हैं मैडम। खैर जिसका मकान है उसकी मर्जी।'

एक मकान और है वह आपको जरूर पसंद आएगा। मैं पांडे जी से पूछता हूँ।

'हेलो पांडे जी! मैं श्रीवास्तव डीलर बोल रहा हूँ।'

'हां, हां बोलिये।'

'अरे भाई, बीस-पच्चीस हजार के रेंज में एक मकान किराये का चाहिए। मैडम और सर दोनों सरकारी नौकरी में हैं। छोटा परिवार है।'

'भाई दो मकान खाली हैं, बहुत बढ़िया हैं, उनको पसंद आयेगा। एक मकान जैन साहब का है पर प्योर वेजिटेरियन चाहिए उनको। लहसुन प्याज का भी सेवन न करता हो किराएदार।' पांडे जी ने कहा।

'फिर तो ये मकान नहीं चलेगा पांडे जी, वो लोग नॉन वेजिटेरियन हैं।

'तो दूसरा मकान दिखा दो, पर उनकी जाति पूछ लेना।'

'अरे मैडम, आपकी जाति क्या है?'

मतलब! जाति से मकान का क्या लेना-देना। रश्मि ने तपाक से बोला।

'असल में बात यह है मैडम जो पार्टी है वह कह रही है कि हरिजन, जाट, गुर्जर और मुसलमान को वो अपना मकान किराये पर नहीं देंगे।'

रश्मि कोफ्त से भर गई। वाह रे दिल्ली! कहने के लिए अत्याधुनिक शहर, लेकिन जाति के नाम पर आज भी वह इतना पिछड़ा है। वह रावत से बोली 'रावत जी फिर तो यह मकान मुझे नहीं मिल सकता।'

'क्यों मैडम जी? क्योंकि मैं दलित हूँ।'

दलित शब्द सुनते ही रावत और श्रीवास्तव थोड़ी देर तक बिलकुल सन्न होकर एक दूसरे को आपस में देखते रहे।

फिर सहसा रावत ने कहा 'मैडम हम तो यह जाति-वाती कुछ नहीं मानते। सब एक हैं। आपको पता है मेरा एक दोस्त है, वह भी हरिजन है। मैं तो उसके घर खूब जाता हूँ। उसके यहां खाना भी खाता हूं। मुझे तो कोई फर्क नहीं पड़ता।' रावत ने सांस लेकर फिर बोला 'लेकिन मैडम अब जिसका घर है वह न दे तो हम क्या कर सकते हैं।'

रश्मि ने कहा 'हां भाई उनका घर उनकी मर्जी।' यह कहकर वह वापस घर लौट आई। और रास्ते भर यही सोचती रही कि किस आधार पर लोग कहते हैं कि आरक्षण समाप्त कर दो। सब बराबर हैं जाति भेद खत्म हो गया। जब किराए के मकान के लिए इतनी जद्दोजहद है तो अगर आरक्षण नहीं होगा तो नौकरियों आदि में इनका बहिष्कार करने में ये कैसे पीछे हट सकते हैं। ये सोचते हुए रश्मि सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। तभी बेटे ने दरवाजा खोला। 'मम्मा घर पसंद आया।'

वह बेटे को क्या जवाब देती? वह चुपचाप अंदर बेडरूम में चली गई।

कई दिनों की जद्दोजहद के बाद रश्मि को किराए का मकान आखिर मिल ही गया। वह बहुत खुश थी कि चलो यहां कोई जाति नहीं पूछा गया। अभी भी समाज में कुछ अच्छे लोग बचे हैं जिनका जातिवाद से कोई लेना-देना नहीं है। उसने बहुत ही प्यार से अपने किराए के मकान को सजाना शुरू किया।

'अरे भईया! देखो जरा ध्यान से कहीं यह तस्वीर टूट न जाए, कांच की है।'

'हां हां मैडम, बिलकुल ध्यान से कर रहा हूं।'

'भईया! जरा यहां कील ठोक दीजिएगा, इस तस्वीर को टांगना है।'

'जरूर मैडम, लीजिए कील ठोक दिया। लाइये कवर उतार कर दीजिए तस्वीर टांग देता हूं।'

जैसे ही रश्मि ने तस्वीर को कवर से निकाला ऐसा लगा कील ठोकने वाले ने अपने माथे पर ही कील ठोक दिया हो।

'क्या हुआ भईया? कोई दिक्कत!'

'नहीं नहीं! ये तो अंबेडकर की फोटो है।'

'हां तो!'

'हमें लगा कि भगवान की तस्वीर होगी। क्या आप हरिजन हैं?'

'क्यों भईया? जो अंबेडकर की तस्वीर लगाये वो हरिजन ही होता है।' इतना कहकर रश्मि किचन में चली गई और सोचने लगी कि 'बाबा साहब अंबेडकर ने देश और समाज के लिए क्या कुछ नहीं किया लेकिन उनको सिर्फ एक ही फ्रेम में फिट कर दिया जाता है। उन्हें उस फ्रेम से कोई बाहर ही नहीं देखना चाहता है। भगवान की कोई तस्वीर लगाओ तो लोग आपको कितना सात्विक और आदर्शवादी मानते हैं।'

नये मकान में रश्मि अपने आपको ढालने का प्रयास कर रही थी कि तभी उसके घर के दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी। सामने देखा तो प्लम्बर था। रश्मि ने कहा- 'अरे आओ भइया, जरा देखो

तो टंकी में पानी ठीक से नहीं जा रहा है।'

वह जैसे ही घर में घुसा, सामने एक बड़ी सी तस्वीर लगी थी, उसको देखते ही वह तपाक से बोला! 'भाभी जी क्या आप लोग हरिजन हैं?'

मैंने उससे पूछा क्यों आपको कैसे पता?

'बाबा साहब की फोटो देखकर। सिर्फ हरिजन लोग ही अपने घरों में इनकी फोटो लगाते हैं। भाभी जी मैं भी हरिजन हूँ, हम लोगों के लिए तो ये भगवान हैं भाभी जी।'

'अच्छा भईया! अब चलो अपना काम करो नहीं तो शाम हो जाएगी।'

ऐसे ही कई दिन बीत गये। रश्मि अपने घर और ऑफिस के कामों में पहले की तरह रम गई। जीवन की गाड़ी पटरी पर धीरे-धीरे लौटने लगी थी। अचानक एक दिन उसके मकान मालिक का प्रवेश होता है। वह जैसे ही घर के अंदर घुसता है, सामने बाबा साहब की तस्वीर मुस्कुराते हुए उसका स्वागत कर रही थी। मल्होत्रा साहब इधर-उधर नजरें दौड़ा कर पूरे घर का मुआयना करते हैं। लेकिन उनको कहीं पर भी इंसानों द्वारा बनाये गये भगवान की तस्वीर नज़र नहीं आती। अपनी पैनी निगाहों से वो अंबेडकर की तस्वीर को देखते हैं, मन में शंका लिए वह रश्मि से कुछ नहीं कहते। रश्मि पानी से भरा ग्लास लेकर आती है, 'लीजिए मल्होत्रा जी पानी पीजिए।'

'नहीं नहीं मैड! पानी नहीं चाहिए।'

'अरे, लेकिन बाहर बहुत गर्मी है और आप इतनी दूर से आये हैं, पानी तो लीजिए।'

'नहीं-नहीं, पानी नहीं चाहिए।'

रश्मि मल्होत्रा जी की पैनी नजरों को पढ़ रही थी और कुछ-कुछ उनके भाव को समझने का प्रयास कर रही थी। लेकिन मल्होत्रा साहब ने उस समय कुछ नहीं कहा। बस इतना ही पूछा कि 'आप कहाँ की रहने वाली हैं?'

'जी मैं तो लखनऊ से हूँ।'

'और आपके पति?'

'गाजीपुर से।'

'अच्छा! अच्छा!'

करीब एक घंटे के बाद वो मन में प्रश्न लिए घर से बाहर चले गये।

कुछ समय बीतने के बाद एक दिन वह बहुत ही आराम से घर पर बच्चों के साथ खेल रही थी तभी सुशील ने आकर कहा, 'अरे रश्मि जरा जल्दी से तैयार हो जाओ मल्होत्रा जी के घर जाना है।'

'क्यों?'

'आज शनिवार है और उनको किराया देना है।' उनका फोन आया था वो पूछ रहे थे। तुम बताओ कितने बजे के लिए बोलूं?'

'सुशील मल्होत्रा जी से कह दो कि शाम को आकर हम किराया दे देंगे।'

शाम पांच बजे रश्मि और सुशील अपने मकान मालिक मल्होत्रा के घर पहुंचे। बहुत सारी बातें हुई। बातों ही बातों में मल्होत्रा साहब ने कहा 'रश्मि जी आप कहां की हैं?'

'अरे! मल्होत्रा जी आपको उस दिन बताया तो था कि मैं लखनऊ से हूँ।'

'तो क्या सुशील जी भी वहीं के हैं?'

सुशील थोड़ा सकुचाया लेकिन रश्मि ने तपाक से कहा 'नहीं ये गाजीपुर के हैं।'

'गाजीपुर?'

'जी ये उत्तर प्रदेश में है।'

'अच्छा-अच्छा।' असल में सुशील किसी को अपने घर का सही पता नहीं बताना चाहता था कि वह गांव से है इसलिए किसी के भी पूछने पर वह बहुत गर्व से अपना घर लखनऊ ही बताता था।

'अच्छा तो ये बताइये सुशील जी, आप कुमार लिखते हैं, कुमार किस जाति से?'

सुशील थोड़ा घबराया। वह क्या उत्तर दे। काटो तो खून नहीं। वह इधर-उधर देखने लगा, 'क्योंकि सुशील ज्यादातर अपनी जाति छुपाने के प्रयास में लगा रहता था, अगर कोई बाहरी उससे पूछता तो वह अपना नाम हमेशा सुशील सिंह बताता था। इस बात को लेकर रश्मि और सुशील में अक्सर झगड़ा भी होता था।'

'सुशील तुम हमेशा सबको अपने नाम के आगे सिंह क्यों लगाकर बताते हो। सिंह लगाते ही तुम्हारे अंदर एक गौरव महसूस होता है? तुम अपनी जाति क्यों छुपाते हो?'

सुशील ने गुस्से में कहा- 'तुम्हारा दिमाग खराब है। मैं कहां अपनी जाति छुपाता हूँ। सिंह और कुमार में क्या अंतर है।'

'सुशील अगर अंतर नहीं होता तो तुम सिंह कभी नहीं बताते।'

सुशील को असमंजस में देख रश्मि बोली मल्होत्रा जी हम एससी हैं। सुशील रश्मि का मुंह देखने लगा और मन ही मन बड़बड़ाने लगा कि क्या जरूरत है उलझने की? मल्होत्रा की आंखों में एक अजीब सी जातिवादी गंध दिख रही थी जो बाबा साहब की तस्वीर देख कर उसके मन में उस दिन रश्मि ने उसकी आँखों में महसूस की थी। ऐसा लग रहा था मानो मल्होत्रा साहब ने अपना मकान देकर कोई गुनाह कर दिया हो।

'उसने कहा आपने तो डीलर मित्तल को यह नहीं बताया कि आप एससी हैं।'

'मित्तल जी ने जाति को लेकर हमसे कुछ पूछा ही नहीं, मल्होत्रा जी।'

'अच्छा-अच्छा। चलिए छोड़िए ये बताइये कि एससी में भी आप किस जाति से हैं?

'दुसाध'

'दुसाध कौन जाति होती है? कभी हमने सुना नहीं। इनका क्या काम होता है ये क्या करते हैं?'

रश्मि ने कहा 'ये सुअर पालते हैं।' 'अच्छा जी। हम तो एससी का मतलब चमार, धोबी और भंगी ही समझते थे।'

'जी हम चमार और भंगी ही हैं।'

'मतलब?'

'मतलब ये कि आपकी जानकारी के लिए बता दें कि हम सिर्फ और सिर्फ दलित हैं।'

'अरे मैडम आप गुस्सा क्यों होती हैं? जात-वात का पता तो होना ही चाहिए। आखिर हम सब को एक ही समाज में रहना होता है। सब पता होना चाहिए। वैसे आप बुरा मत मानियेगा आप चेहरे से एससी नहीं लगते हैं।'

'क्यों मल्होत्रा जी चेहरे पर एससी और स्वर्ण लिखा रहता है क्या?'

'अरे नहीं-नहीं मैं तो बस ऐसे ही कह रहा था।'

घर लौटते वक्त सुशील खामोश था। घर पहुँचते ही सुशील बिफरने लगा 'साली! हरामजादी! तुझे क्या जरूरत थी वहां एससी बोलने की?'

और गाली-गलौज का यह अंतहीन सिलसिला रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बनता गया। कुछ दिनों बाद एक रात बारह बजे सुशील ने बाबा साहेब की उस तस्वीर को उठाकर पटक दिया। तस्वीर के कांच ड्राइंग रूम में बिखर गए थे। अगले दिन जब सुशील ऑफिस से घर आया तो पहले से भी बड़ी तस्वीर टंगी हुई देखकर बड़बड़ाते हुए उसने कहा था 'साली, कुतिया नहीं सुधरेगी' यह कहकर उसने दरवाजा मुंह पर दे मारा।

गटर के अंदर काले नाग और काले आदमी की जंग

रूपनारायण सोनकर, देहरादून

यह एक ऐसी जंग है जहां एक इंसान अपनी जान की परवाह न करते हुए वन्य जीवों की रक्षा करता है। अगर उनकी रक्षा करते हुए वह अपने प्राण भी गँवा दे तब भी कोई चिंता नहीं। पर्यावरणविद सही मायने मे ऐसे ही लोगों को कहा जाता है।

कुछ जंगे ऐसी होती हैं जो धरती के अंदर लड़ी जाती हैं जो बहुत ही भयंकर होती हैं। जो जंगे धरती के ऊपर लड़ी जाती हैं उनमें दोनों शत्रुओं के हथियार एक दूसरे को अच्छी तरह दिखाई देते हैं लेकिन धरती के अंदर लड़े जाने वाले युद्धों में हथियार छिपे रहते हैं। ऐसे खतरनाक हथियारों को रासायनिक हथियार कहते हैं। इनकी मार और इनका प्रभाव दूरगामी होता है।

बलवंत एक टोकरी और फावडा लिए गटर के अंदर सफाई कर रहा है। टोकरी मे कीचड़ भरकर और उसको दोनों हाथों से उठाकर गटर के ऊपर खड़े मजदूरों को पकड़ाता जाता है। यह क्रम कई घण्टे तक जारी रहता है। बलवंत का पूरा मुंह और पूरा शरीर कीचड़ से काला हो जाता है। रोटी के लिए ऐसा कठिन कार्य दलित मजदूरों को करना पड़ता है।

इन मेहनतकश युवाओं को नाममात्र का वेतन मिलता है। ये गैर दलित ठेकेदार इनका आर्थिक शोषण करते हैं। ये दलित युवा अस्थाई कर्मचारी होते हैं। ये लोग एमए और बीए होते हैं।

1 बलवंत एम ए पास है और दलित समाज से आता है। कीचड़ से उसका पूरा शरीर लथपथ हो गया है। उसी समय एक काला नाग फन फैलाकर बलवंत के सामने खड़ा हो गया। अब मानव काला नाग उस जहरीले काले नाग से कैसे निपटे?

बलवंत काले नाग से कहता है-

'देखो! नाग जी, हम दोनों इस समय काले नाग हैं। मैं तुम पर हमला नहीं करूंगा।'

काला नाग बोला-

'मानव का मैं विश्वास नही करता। आप लोगों ने पहले हमारा जंगल काटा और अब आप लोग हमें काटने के लिए गटर के अंदर भी आ गये।'

'आप की और हमारी स्थिति एक जैसी है। कॉरपोरेट घरानों ने अपने-अपने कल कारखाने स्थापित करने के लिए हम दोनों के जंगल और घर उखाड़ दिये। इसलिए आज हम दोनों गटर के अंदर कीचड़ मे हैं।'

'लेकिन आप मानव हैं। मैं मानव पर विश्वास नहीं करता।'

'मैं तुम्हारा वध नहीं करना चाहता हूँ, जबकि मेरे हाथ मे फावड़ा है।'

'गटर इतना संकरा है कि तुम फावड़ा चलाकर मुझे मार नहीं सकते हो जबकि मैं तुम्हारे ऊपर दूर से जहर फेंक कर तुम्हें मार सकता हूँ।'

'नाग जी, यह भयंकर युद्ध कैसे टाला जाये?'

'मेरे पास रासायनिक हथियार हैं।'

'मेरे पास नुकीले हथियार है।'

'जीत सदैव रासायनिक हथियारों की ही हुई है।'

दोनों कहते हैं -

'हम एक दूसरे का विनाश नहीं चाहते हैं, लेकिन हम एक दूसरे का विश्वास भी नहीं कर सकते हैं।'

'नाग जी, मेरा रास्ता छोड़ दो।'

'रास्ता कदापि नहीं छोड़ूंगा, यह मेरे अधिकार में जमीन है।'

एक दूसरे की भौंहे तन जाती हैं। नाग अपने रासायनिक हथियारों का प्रयोग कर देता है। बलवंत अपने हथियारों का वार नाग पर नहीं करता है बल्कि बलवंत रासायनिक हथियारों की काट ढूंढने में लग जाता है। वह रासायनिक हथियारों के जखीरा को नष्ट करना चाहता है। वह रासायनिक हथियारों के फार्मूला व उनकी निर्माण स्थिली को पकड़ना चाहता है। बलवंत फावड़ा से जितना अधिक नाग को डराता है। नाग, विष उसकी ओर फेंकता है। दोनों काले नाग एक दूसरे पर अपने-अपने बचाव में वार करते हैं। काला नाग बना मानव भयंकर नाग को केवल फावड़ा से डराता है, मारता नहीं है।

बलवंत के सामने उसकी जिन्दगी जाने का खतरा खड़ा है। वह फावड़ा गटर के एक कोने में रख देता है। वह अपनी टरबन अपने सर से उतार कर दाहिने हाथ में मजबूती से पकड़ लेता है और काले नाग के फन के चारों तरफ डालकर उसको दबोचते हुए गटर के अंदर से बाहर निकल आता है। ऊपर खड़े उसके भाइयों में खुशी की लहर दौड़ गई।

गटर के ऊपर खड़े कई गैर दलित दबंग उस काले नाग को मारना चाहते हैं। उनमें एक तिरपिटा पंडित लाठी जमीन के ऊपर जोर से पटकते हुए बोला-

'मैं इस जहरीले नाग को मार डालूंगा।'

बलवंत बोला-

'आप ऐसा नहीं कर सकते हैं। यह बहुत ही दुर्लभ प्रजाति का कोबरा नाग है। मैंने इसको अपनी जान की बाजी लगाकर पकड़ा है।'

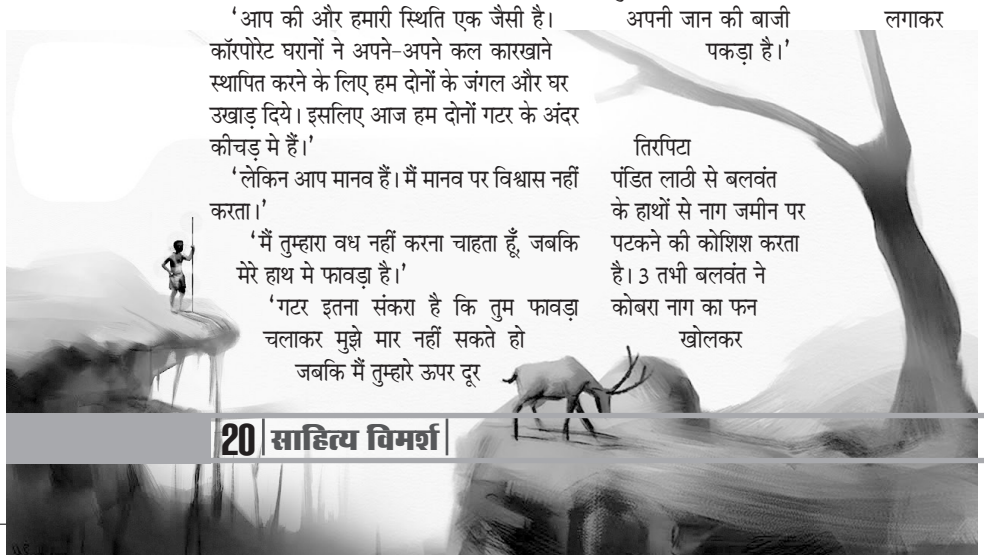

तिरपिटा पंडित लाठी से बलवंत के हाथों से नाग जमीन पर पटकने की कोशिश करता है। 3 तभी बलवंत ने कोबरा नाग का फन खोलकर उसकी ओर दौड़ा। तिरपिटा पंडित दुम दबाकर वहां से भाग गया। उसने वन विभाग के कर्मचारियों को सूचित कर वहां बुला लिया। वन विभाग के कर्मचारियों ने उस नाग को घने जंगल में ले जाकर वहां छोड़ दिया।

बलवंत के समाज का एक लंबा चौड़ा खूबसूरत युवा सौरभ अपनी अरबपति स्वर्ण प्रेमिका के साथ मरसिडीज में बलवंत के कहने पर आ गया था। बलवंत ने कोबरा नाग को पकड़ने की सारी बातें सौरभ को सूचित कर दी थी। सौरभ ने भी वन विभाग के अधिकारियों को गटर के अंदर काले नाग होने की जानकारी दे दी थी। वन विभाग के कर्मचारी आने के पहले बलवंत नाग को पकड़ कर गटर के ऊपर आ गया था।

सौरभ ने गाड़ी से नीचे उतर कर बलवंत को गले लगा लिया। बलवंत बोला -

'भैया! जान बच गई। चाहे मैं मर जाता लेकिन कोबरा नाग को न मारता।'

'आपने वन्य जीवों के साथ जो सहानुभूति दिखाई है वह पूरे विश्व के लिए एक उदाहरण है।'

सौरभ की प्रेमिका गरिमा यह देखकर बहुत ही आश्चर्यचकित है। वह सौरभ से कहती है-

'ये सफाई कर्मी आपके कौन हैं?'

'ये मेरे भाई हैं।'

'लगता है यही तुम्हारी दुनिया है।'

'सही कहा आपने, यही मेरी दुनिया है।'

'तुम इतने लंबे चौड़े और हैंडसम हो, तुम दलित हो ही नहीं सकते।'

'मैं दलित हूँ और भंगी जाति का हूँ।'

'तुमने पहले मुझे नहीं बताकर धोखा दिया।'

'मैंने आपको कई बार बताने की कोशिश की लेकिन आप ने मेरी बात नहीं सुनी।'

'आप इनको छोड़ दें और मेरी कॉरपोरेट घरानों की दुनिया में रहें। उस दुनिया मे हवाई यात्राएँ होती हैं। पंच सितारा होटलों में रहना और स्वादिष्ट व्यंजनों का सेवन होता है। देश-विदेश के देशों का भ्रमण होता है। अपने भाइयों और इस गरीब दुनिया को छोड़ दो।'

'मैं अपने भाइयों और इस दुनिया को तब तक नही छोड़ सकता जब तक मैं इसको आप जैसे लोगों की दुनिया न बना लूं। मेरी दुनिया मेरे शोषण और पूंजीवाद नहीं होगा। सभी समान होंगे। सभी के पास रोजगार और परिवार के जीने लायक संपत्ति होगी। कोई बहुत अमीर और कोई बहुत गरीब नहीं होगा। भंगी जाति व अन्य दलितों को देश का प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, प्रदेशों के मुख्यमंत्री, राज्यपाल बनवाने के बाद ही चैन की साँस लूँगा।'

खरबपति बाप की बेटी गरिमा, सौरभ को छोड़कर चली जाती है।

पहचान

अंजली काजल, अतुल ग्रोव रोड, सी.पी., नई दिल्ली

जब लड़की ने अपना फॉर्म कांपते हाथों से उनके सामने किया था तब किरण की नज़र लड़की की कई जगह से सिली हुई जूती पर ठहर गई थी। लड़की ने जब फॉर्म किरण के हाथ में दिया था तब उसके पैरों की उँगलियाँ सिकुड़ गयीं थीं। किरण ने दाखिला फॉर्म को पढ़ा और श्रीमती साधना शर्मा से कहा,

'मैडम कम्पार्टमेंट केस है।' किरण के कहने में सवाल था।

'एस. सी. है?'

'जी'

'ले लो।' श्रीमती साधना शर्मा ने कहा।

लड़की के चेहरे पर राहत की एक हलकी लहर आई और पैरों की सिकुड़ी हुईं उँगलियाँ खुल गयीं। श्रीमती साधना शर्मा उसे जाते हुए देख रही थी,

'इन लोगों को सब माफ़है। ना पढ़ना पड़ता है, ना पास होना होता है। सब भीख में मिल जाता है।'

स्टाफरूम के 'गोस्सिपिंग क्लब' का वो हिस्सा नहीं थी। पर अनीता से अक्सर किताबों को लेकर चर्चा होती। अनीता की नियुक्ति 'लीव वकेंसी' पर हुई थी। जिसकी जगह पर उसे नियुक्त किया गया था, वो अध्यापक अपने बच्चों के पास कैनाडा चले गए थे और उनके लौटने के आसार कम थे। अनीता इस कॉलेज के ट्रस्ट द्वारा किये जा रहे शोषण का शिकार हो रही थीं। उन्हें तय मानदेय से कम पैसा दिया जाता था पर हस्ताक्षर पूरे मानदेय पर कराया जा रहा था। जिस दिन तनख्वाह मिलने का दिन होता और वो हस्ताक्षर करती तब हँसते हुए क्लर्क से कहती 'एक दिन सबको फंसा दूंगी' वो दोनों हाथ जोड़ देता और कहता 'मैं भी मालिक का नौकर ही हूँ मैडम।'

'प्रगतिशीलों ने इस देश को तबाह कर रखा है।' श्रीमती साधना शर्मा का पसंदीदा जुमला बोलते हुए किरण ने अनीता को आँख मारी। दोनों खिलखिला कर हंस दी।

'सपना बेबी, अगर सेहत ठीक नहीं लग रही थी तो आज छुट्टी कर लेती' श्रीमती साधना ने सपना को लाड़ लड़ाते हुए कहा।

'सुबह पहले सोचा था आज नहीं आऊँ, 'बट' घर पर भी क्या करती। यहाँ आकर 'टाइम पास' हो जाता है। और फिर मेरा 'बेबी' भी खुश रहता है यहाँ..इतने 'डेलीशिस' खाने भी तो मिलते हैं आप लोगों से।'

सपना अपने उभरे पेट पर हाथ फेरते हुए हंसी। सपना वशिष्ट कॉलेज प्रिंसिपल की रिश्तेदार थीं उन दिनों ख़बर उड़ रही थी कि उसकी 'अस्थायी' अध्यापिका की नौकरी जल्दी ही 'स्थायी' में बदलने वाली थी।

किरण सहगल जी को चोर नज़र से देख रही थी जब अनीता ने उसे पकड़ लिया।

'क्या निहार रही हो बन्नो?'

'यही कि 'मिडिल ऐज' भी काफी दिलचस्प होती है। जब सहगल जी हमें पढ़ाने आते थे वो मेरे कॉलेज के शुरुआत के दिन थे...उन दिनों उनके बारे में सुनती थी कि लड़कियां उनके लेक्चर में खाली उन्हें देखने जाती थी, पर मुझे उनका मंच पर बोलना अच्छा लगता था।'

'सीधा क्यों नहीं कहती सहगल जी तुम्हारे 'क्रश' थे।' अनीता ने छेड़ा।

'हाँ कुछ 'क्रश' जैसा ही मामला था। समाज में कुछ बदलने की बात करने वाला हर आदमी मेरा ध्यान खींचता था तब।'

दोनों हंसती रही।

'बहुत बुरा हाल है। बच्चे किताब तो पढ़ना ही नहीं चाहते हैं। सिवाए कोर्स के किसी और किताब को पढ़ने में उनको दिलचस्पी ही नहीं है।' सहगल जी अनीता और किरण के पास वाली कुर्सी पर बैठते हुए गहरी सांस लेते हैं।

'इंसान की समझ पर पड़े परदे कई बार किताब पढ़ने से भी नहीं खुल पाते।'

किरण की बात पर सहगल जी मुस्कुराए। फिर उन्हें कुछ याद आ गया।

'आप दोनों से एक काम है। 'यूथ फेस्टिवल' के लिए दो बच्चों को चुनकर भेजना है कविता-पाठ के लिए। एक बच्ची को मैंने तैयार किया है, एक आप लोग बताइये।'

किरण ने 'लेक्चर रूम' में बैठी लड़कियों पर निगाह दौड़ाई। हर साल की तरह इस साल भी वाणिज्य पढ़ने वाली लड़कियां कम हो गयीं थीं। लड़कियों का यह कॉलेज शहर की उस बस्ती के बहुत करीब था जहाँ शहर के एक ख़ास व्यापारियों के घर थे। ये लोग उस बस्ती में एक समुदाय की तरह इकठ्ठे रहते थे। बस्ती के पास होने की वजह से इनके घरों की ज़्यादातर लड़कियां इसी कॉलेज में पढ़ने के लिए आतीं थी। ऐसा कहा जाता था कि ये समुदाय अपनी लड़कियों के दाखिला के समय 'ट्रस्ट' को अच्छा खासा चंदा भी देता था। ज़्यादातर लड़कियां अच्छे स्कूलों से पढ़कर आतीं। इनमें से जो लड़कियां अच्छे अंक लाती वे वाणिज्य पढ़ने को चुनती। पर यही लड़कियां बाहरवीं के बाद वाणिज्य छोड़कर स्नातक में चली जातीं थीं। किरण को धीरे-धीरे इसकी वजह का पता चला। इनके घरों की औरतें केवल घर संभालतीं। उन्हें घर से बाहर जाकर काम करने की अनुमति नहीं मिलती थीं। कुछ इक्का-दुक्का लड़कियां जिद्द करके घरवालों को मना पाती बाकी हार मान लेतीं। जो हार मान लेतीं वो लड़कियां होम साइंस, चित्र कला या स्नातक के दूसरे विषय चुन लेतीं।

शुरुआती परिचय के बाद किरण ने लड़कियों से एक सवाल किया कि जीवन में वो आगे क्या करना चाहती हैं?

कुछ लड़कियों ने आगे चलकर 'चार्टर्ड अकाउंटेंट' बनने की इच्छा जताई, कुछ ने अध्यापिका बनने की, तो कुछ को पता नहीं था उन्हें क्या करना है, कुछ ने कहा मौका ही नहीं मिलेगा क्योंकि आखरी साल तक पहुँचते-पहुँचते घरवाले उनकी शादी कर चुके होंगे। फिर एक लड़की झिझकते हुए अपनी बारी आने पर खड़ी हुई। उसने अपने दुपट्टे को संभाला और किरण की ओर देखते हुए बोली,

'मै बहुत पढ़ना चाहती हूँ। तब तक पढ़ती रहना चाहती हूँ जब तक मेरा मन करे। इस पढ़ाई के लिए साथ में कुछ काम करूंगी, कुछ ऐसा काम जो मेरी पढ़ाई के खर्चे को चला पाए। और फिर एक दिन मैं अपनी बस्ती में एक स्कूल भी खोलना चाहती हूँ ताकि मेरी बस्ती की लड़कियों को पढ़ने के लिए दूर ना जाना पड़े।'

पीछे के बेंच पर बैठी कुछ लड़कियां हंस पड़ीं। वो लड़की झिझककर अपनी बेंच पर बैठ गयी। किरण ने उस लड़की को पहचाना। ये वही लड़की थी जो उस दिन फॉर्म जमा करने आई थी।

उस दिन के बाद किरण ने कई बार उस फॉर्म वाली लड़की को कॉलेज में देखा। ज़्यादातर वो लाइब्रेरी के एक कोने में बैठी पढ़ रही होती। जिस तरह की पत्रिकाएं और किताबें वो पढ़ती, वो किरण का ध्यान खींचती थी। एक दिन जब वो लड़की लाइब्रेरी में बैठी पढ़ रही थी, लड़की ने आँख उठाकर किरण की ओर देखा, किरण ने उसे इशारे से बुलाया। लड़की थोड़ा सा घबरा गई थी।

'क्या नाम है तुम्हारा?

'मैडम, गीता।'

'किस विषय में कम्पार्टमेंट है तुम्हारी?'

'गणित में।'

'तुमने वाणिज्य पढ़ने का निर्णय स्वयं लिया था या किसी के कहने पर यह विषय चुना था?'

'मैंने स्वयं ही चुना था।'

'तुम चाहो तो इस विषय को बदल सकती हो अभी भी?'

'नहीं मुझे इस विषय को बदलना नहीं है।'

किरण कुछ देर उसके चेहरे के भाव पढ़ती रही।

गीता ने कॉलेज के 'नोटिस बोर्ड' पर कविता-पाठ प्रतियोगिता के बारे में पढ़ा। सबसे नीचे लिखा था कि भाग लेने के लिए किरण या सहगल जी को अपनी कविता के साथ संपर्क करें। कुछ पल वो वहीं खड़ी सोचती रही, फिर आगे बढ़ गई।

किरण ने गीता को कल गणित की किताब लेकर 'स्टडी रूम' में आने के लिए कहा था। गीता 'स्टडी रूम' की ओर चल पड़ी।

'आज सचमुच बहुत बुरा लगा। जिस तरह लड़कियों ने सभागार में 'हूटिंग' की। इतने बड़े

शास्त्रीय संगीत के कलाकार आए और इन लड़कियों ने सभागार में जो किया बहुत बुरा संदेश गया।'

आज 'स्टाफरूम' में चर्चा का विषय यही था। श्रीमती सिंघल जो कि संगीत पढ़ाती हैं ने किरण की ओर इशारा करते हुए कहा,

'ये सब 'साइंस' और 'कॉमर्स' के विद्यार्थी ही होते हैं जो कलाकारों के प्रति ऐसा रवैया रखते हैं।'

जब भी कॉलेज में कोई शास्त्रीय संगीत का कार्यक्रम होता था, ऐसा आम ही देखने को मिलता था कि सभागार में लड़कियां कम होती थी। पिछली बार प्राध्यापक ने ऐसे ही किसी कार्यक्रम के बाद 'नोटिस बोर्ड' पर प्राध्यापक का आदेश लगवाया था कि ऐसे सभी कार्यक्रमों में उपस्थित होना सब विषय के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होगा। तब से लड़कियां, जिन्हें जबरदस्ती वहां बिठाया जाता वे कार्यक्रम में कई बार 'हल्ला' करती पायीं गयीं।

'जब ये लड़कियां शास्त्रीय संगीत नहीं सुनना चाहती तो उनको ज़बरदस्ती वहां भेजना भी ग़लत है। इन कलाओं की कद्र वही कर सकता है जिसे इन कलाओं की पर्याप्त जानकारी दी जाये। हम बच्चों को सब तरह की कलाओं की जानकारी अगर दें तब शायद उनमें से कई इन्हें सुनना पसंद करें। और मैं ऐसे बहुत लेखकों को जानती हूँ जिनकी पृष्ठभूमि 'साइंस' और 'कॉमर्स' जैसे विषयों में है और वे अच्छे लेखक हैं।'

किरण ने अपना पक्ष रखा। पर इस चर्चा के बहाने उसे अपने महिला कॉलेज की याद हो आई। कॉलेज भी स्कूल जैसा लगता था। लड़कियों के सब कॉलेज में दोपहर के एक निश्चित समय तक गेट बंद रखे जाते थे ताकि लड़कियां जब एक बार कॉलेज में दाखिल हो जाएँ तब बाहर ना जा पायें। हफ्ते में एक दिन स्कूल की तरह वर्दी पहनना अनिवार्य होता था। लड़कों के कॉलेज में ऐसे कोई नियम नहीं थे, जो लड़कियों के कॉलेज में थे। हर छोटे शहर में लगभग यही स्थिति थी। बल्कि इससे भी बुरी।

'मुझे याद है एक बार मेरा एक मित्र मुझे कोई किताब देने मेरे कॉलेज पहुँच गया। वो तय समय से पहले आ गया और मैं गेट के इस पार उसको देख पा रही थी पर मुझे किसी ने बाहर जाने की अनुमति नहीं दी। उस दिन वो मुझे गुस्से में बोला अगर मेरी कोई बेटी हुई तो मैं उसे कभी इस तरह के कॉलेज में पढ़ने नहीं भेजूंगा।'

सहगल जी और अनीता के चेहरे पर मुस्कुराहट थी। श्रीमती साधना ने चिढ़कर कहा,

'ऐसा कुछ लड़कियों की वजह से करना पड़ता है। ये 'छोटी जाति' के लोग भी अब पढ़ने आने लगे हैं पर इनके संस्कार तो बने नहीं। संस्कार तो घर से बनते हैं।'

किरण कुछ नहीं बोली इसके बाद।

कुछ दिन गीता को पढ़ाने के बाद किरण जान गई थी कि गीता पढ़ने में कमजोर नहीं थी। एक दिन उसने गीता की कॉपी में लिखी कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं,

'आसमान भी मेरी तरह चुप है
मुझपर भी एक कोहरा सा छाया है...'

उस दिन दोपहर में उसने गीता से पूछा 'क्या तुम मंच पर कविता पढ़ोगी?' गीता की आँखों में चमक आ गयी थी।

पूजा जैन ने अपनी कविता आत्मविश्वास के साथ पढ़ी। सहगल जी ने गर्वपूर्ण नज़रों से किरण को देखा। जैसे ही सहगल जी ने गीता से कविता पढ़ने के लिए कहा, उसकी सांसें तेज़-तेज़ चलने लगी, माथे पर पसीना बह आया। वो कुछ भी बोल नहीं पायी। किरण ने गीता के सिर पर हाथ रखा और उसे जाने के लिए कहा।

'कॉलेज की प्रतिष्ठा का मामला है' सहगल जी धीमे से बोले।'

दोनों लड़कियों को भेज दिया गया तब किरण ने सहगल जी से कहा।

'नारी की महानता और ममता का महिमामंडन करती कविताएं मुझे पका देती हैं।'

सहगल जी हंस पड़े।

'पूजा का उच्चारण अच्छा है। कविता बदली जा सकती है।'

'तुम मेरी बहन की शादी में क्यों नहीं आयी?' सरबजीत ने उलाहना देते हुए पूछा।

'मुझे लड़कियों की शादी में जाना पसंद नहीं है।'

'क्यों पसंद नहीं है?'

'लड़कियां जब विदा हो जाती हैं, घर में एक मनहूस सा सन्नाटा छा जाता है।'

सरबजीत की आँखों में बूँदें छलक आयीं।

'तुम्हारी दीदी की शादी हो चुकी है न?'

'हां' गीता ने धीरे से जवाब दिया।

आज फिर गीता को कविता पढ़नी थी। पूजा और उसके साथ आयीं उसकी दो सहेलियां गीता को आते देखकर अजीब तरीके से हंसने लगीं। गीता जब पास आकर खड़ी हुई, किरण का ध्यान आज फिर उसके पैरों पर गया। उसके पैर की उँगलियाँ जूते के अंदर सिकुड़ रही थी और वो बार-बार अपने होंठों पर जीभ घुमा रही थी। किरण ने देखा जैसे ही पूजा ने कविता पढ़नी शुरू की, गीता के माथे पर पसीना बहने लगा।

उसने गीता को बैठने के लिए इशारा किया। गीता को पानी पिलाया गया। उस दिन किरण को पता चल गया था कि गीता को 'पैनिक अटैक' होते थे।

'बेकार मेहनत कर रही हो किरण', जाते-जाते सहगल जी किरण से कह गए।

अगले दिन जब गीता पढ़ने के लिए 'स्टडी रूम' में किरण के पास आई, किरण ने गीता से बातें करना शुरू किया। वो उससे तब तक बातें करती रही जब तक कि गीता उसके साथ कुछ सहज नहीं हो गयी। इसी दौरान बातचीत में उसे पता चला उसकी दो बहनें और एक बड़ा भाई था। एक बहन उससे छोटी थी और एक बड़ी। पिता एक फैक्ट्री में काम करते थे।

'तुम्हारी औकात नहीं है इस कॉलेज में पढ़ने की।'

गीता के भाई को कॉलेज के पहले ही दिन जब यह सुनना पड़ा था तब उसका पढ़ाई से मन उचट गया था। यही नहीं उसकी ख़राब अंग्रेजी और टाट वाले सरकारी स्कूल की पढ़ाई उसे कुंठित करने लगी थी। उसे एहसास हुआ कि आरक्षण से उस कॉलेज में दाखिला ले लेने भर से समस्याओं का हल नहीं हो गया था, बल्कि ये शुरुआत थी। आखिर तंग आकर एक दिन उसने पढ़ाई छोड़ दी और पिता के साथ होज़री मिल में काम करने जाने लगा।

इससे पहले कि कोई गीता से कविता पढ़ने के लिए कहता, किरण ने पूजा की सहेलियों को वहां से जाने के लिए कह दिया। पूजा अब एक मशहूर साहित्यकार की एक लम्बी कविता याद करके आई थी। सहगल जी ने मुस्कुराते हुए किरण की ओर देखा तब किरण समझ गयी थी उनका मतलब। उसने पूजा के नाम पर सहमती दे दी थी।

सहगल जी जब उठकर चले गए तब किरण ने गीता से कहा,

'गीता, ये तुम्हारी कविता है और तुम्हें इसे महसूस करते हुए बोलना है। बस!'

उसने गीता से कविता पढ़ने के लिए कहा। गीता ने झिझकते हुए कहा,

'मैं कविता याद नहीं कर पा रही हूँ। क्या मैं अपनी कविता पढ़कर बोल सकती हूँ?'

उसने हाथ में एक पन्ना पकड़ रखा था जिस पर कविता लिखी थी। सहगल जी ने उसे कविता पढ़कर ही बोलने के लिए कहा।

उस दिन गीता ने पहली बार सहज होकर कविता पढ़ी। किरण को पता था सहगल जी जानते थे कि कविता में कुछ बात थी। उस दिन वे स्वयं कह रहे थे 'आखिर कितने बच्चे स्वरचित कविता बोलते हैं?'

बात सहगल जी ने ही शुरू की थी। उन्होंने 'स्टाफरूम' में कम्बोज जी से उनके बच्चे के कॉलेज में दाखिले के बारे में पूछा था।

'सर नहीं हो पाया।'

'ओह! प्रतिस्पर्धा बहुत बढ़ गई है।' सहगल जी ने कहा।

'प्रतिस्पर्धा तो ठीक है पर इन आरक्षण वालों ने भी तो कब्ज़ा कर रखा है हमारे बच्चों की सीटों पर' कम्बोज जी ने गुस्से में कहा था।

किरण को पता था बात यहीं पहुंचेंगी। उसके अंदर कुछ दहकने लगा था।

'सर आपके बच्चे के कितने नंबर थे?' किरण ने कम्बोज जी से पूछा'

'अस्सी प्रतिशत'

'और कट ऑफ' क्या रहा?

'पचासी प्रतिशत'

'तो फिर उसे और मेहनत करनी होगी'

'पर आरक्षण से आने वाले बच्चों के साठ

प्रतिशत थे और उनको दाखिला मिल गया'

'सर आप अनुसूचित जाति से हैं क्या?'

'नहीं-नहीं मैडम' कम्बोज जी उखड़ गए।

'फिर आप उनसे अपना मुकाबला क्यों कर रहे हैं। वे वंचित वर्ग के लोग हैं।'

'क्या वंचित वर्ग मैडम। हरामखोर हैं। इनकी और कितनी पीढ़ियों को आरक्षण चाहिए?'

'सर सदियों का फासला है, कुछ समय तो लगेगा साथ आने में।'

उसके बाद श्रीमती साधना भी बहस में कूद पड़ीं। कम्बोज जी तो लगभग गाली पर उतर

आये। वही-वही बातें -आरक्षण एक भीख है, ये लोग खाली वोट बैंक हैं, इस देश की नाकामी का कारण आरक्षण से भर्ती हुए लोग हैं, आरक्षण से बने डॉक्टर से कितने लोगों की जान को खतरा है, कितने पुल गिरते हैं इन आरक्षण वालों की वजह से आदि आदि...

बहस से स्टाफरूम गर्म हो गया। और अंत में वो बहस में एक तरफ अकेली ही रह गई। इस देश में हर बहस आरक्षण पर आकर ख़त्म होती है। पूरा देश आरक्षण का मारा हुआ है। पड़ोसी शुक्ला जी की बीवी परेशान थी 'देखो शहरों में अब कहाँ ये लोग हमारे घरों के पाखाना साफ़ करते हैं। सब हमें खुद ही करना पड़ता है।' स्कूल के मास्टर उसकी सहेली को जो हरियाणा के एक सरकारी स्कूल में पढ़ाती थी, कहते थे 'बेटी इन छोटी जात वालों को ज्यादा मत पढ़ाया कर। बड़े होकर हमारे ही बच्चों के लिए मुश्किल बनेंगे।'

किरण को सब लोगों का कम्बोज जी के पक्ष में बोलना उतना नहीं खला था जितना सहगल जी का चुप लगा जाना। चुप्पियों की राजनीति!

'समय अब बदल चुका है। हमारे बाप-दादाओं की ग़लती की सज़ा हमारे बच्चे क्यों भुगतें?' कम्बोज जी ने सबका समर्थन मिल जाने के बाद कहा।

'समय इतना भी नहीं बदला कम्बोज जी।' कॉलेज में मेरा पहला दिन था और आपका मुझसे पहला सवाल था, 'आपकी कास्ट क्या है?' ...आप क्यों जानना चाहते थे मेरी जाति?..जब जाति का कोई महत्त्व नहीं रहा। तब हम क्यों अभी तक अपनी जातियों में शादी करते हैं? क्यों हम अपनी जाति के लोगों को नौकरी पर रखते हैं?'

किरण ने एक ठंडी सांस ली।

'कॉलेज के पहले ही दिन आपका मेरी जाति क्या है।' पूछना मुझे काफी निराश कर गया था। सोच रही थी इस सवाल को मेरी शैक्षणिक योग्यता क्या है होना चाहिए था। मैं आज बता देती हूँ मेरी जाति क्या है कम्बोज जी। मैं उसी जाति से हूँ जिसे अभी आप 'हरामखोर' कह कर संबोधित कर रहे थे।'

श्रीमती साधना हक्लायीं... 'आ..आ...आप तो नहीं हो सकती।'

'क्यों नहीं हो सकती? क्योंकि मैं आपके बराबर आ बैठी हूँ?'

'स्टाफरूम' में शमशान सा सन्नाटा छा गया।

उस शाम किरण अपने कमरे में कम रोशनी में अकेली बैठी थी। जब भी उसका मन ठीक ना होता, वो अपने कमरे में अपनी पसंद का संगीत सुनती या किताब पढ़ती। पर 'स्टाफरूम' में हुई बहसों का शोर अभी भी उसके अंदर हाहाकार मचाये हुए था। ये कोई पहली बार नहीं हुआ था। किरण को अपना 'पहला प्यार' याद आ गया जिससे बात शादी तक पहुँच जाने के बाद टूट गई थी। वो एक ब्राह्मण परिवार से था, उसने कहा था, 'बुरा मत मानना। अब देखो मेरे घरवाले जब एक 'छोटी जाति' की लड़की को बहू स्वीकार कर रहे हैं तो तुम्हारे माँ-बाप को भी उनकी कुछ शर्तें माननी होंगी।'

एक सवाल उसके ज़हन में बार-बार उठ रहा था। आज तक क्यों उसमें इतनी हिम्मत नहीं आ पाई थी कि वो कॉलेज में अपनी जाति बता पाती? क्यों इस सवाल को वो टालती रही थी? गीता ने उसके अंदर ऐसा क्या बदल दिया था कि अब और वो उस कॉलेज में अपनी जाति छुपाकर नहीं रखना चाहती थी?

गीता गणित की परीक्षा में पचपन प्रतिशत अंक लेकर पास हो गई थी।

गजब दिन था वो भी। लड़कियों में उत्साह था। निर्णायक मंडल में एक जाने-माने साहित्यकार भी थे। सहगल जी मंच के सामने कुर्सियों की दूसरी कतार में बैठे थे। किरण भी उनके साथ बैठी थी। श्रीमती साधना शर्मा के साथ कॉलेज के कई अध्यापक मौजूद थे।

सहगल जी उस दिन 'स्टाफरूम' में हुई चर्चा के बाद जैसे किरण से आंखें नहीं मिला पाते थे। आज कार्यक्रम शुरू होने से पहले किरण के पास आए और कुछ देर जैसे शब्द ढूँढ़ते रहे।

'आप सही कहती थीं कि किताबें भी हमारी सोच पर पड़े पर्दों को नहीं उतार पाती कई बार। मैं गीता के बारे में ग़लत था।'

लड़कियां बड़ी-बड़ी कविताएं याद करके आई थीं और उन कविताओं को बहुत आत्मविश्वास के साथ मंच पर बोल रहीं थीं। आखिरकार गीता का नाम बोला गया। वो हलके गुलाबी रंग का सलवार सूट पहनकर आई थी और उसके बाल लम्बी चोटी में गुंथें हुए थे। वो मंच पर जा खड़ी हुई। गीता ने जब शुरुआती संबोधनों के साथ अपनी स्वरचित कविता का शीर्षक 'पहचान' बताया, एक पल के लिए किरण के ज़हन में वही समय उभर आया जब गीता कांपते हाथों से फॉर्म जमा करने आई थी। गीता ने कविता पढ़ना शुरू किया। अभी तक एक भी लड़की ने स्वरचित कविता नहीं पढ़ी थी।

'उसने दुनिया को जब
अपनी निगाह से देखना शुरू किया था
उसे लगा था
दु:ख से गहरा कुछ न होगा दुनिया में
और ग़रीबी से बड़ी कोई मार ना होगी
पर ज्ञान का सूरज उगेगा जब देश में
फिर बीच में कोई दीवार न होगी
लेकिन दुनिया की अलग थी हकीकत
दु:ख से ज्यादा मारक थी नफरत
किसी का अपना पूरा शहर था
किसी के हिस्से सदियों का सफर था
मेरी माँ के हाथों में कालिख लिखी थी
मेरे पिता के तन पे किसी और की मिटटी थी
हिस्से में हमारे कोई खेत नहीं था
हमारे नाम का तो कोई देश नहीं था
अपने होने से ज्यादा पहचान जरूरी थी
हमारे बीच अभी सदियों की दूरी थी।'

सभागार तालियों से गूँज उठा। उस कविता को सुनने के बाद किसी के भी कानों में कुछ और नहीं जा रहा था।

नहले पर दहला

विजय कुमार 'संदेश', हज़ारीबाग़

विश्वविद्यालय कार्यालय में योगदान का आज मेरा तीसरा दिन था। घर-परिवार से कोसों दूर यहाँ मैं अकेला था। अजनबी शहर और अजनबी लोग। कार्यालय के सभी कर्मचारी-अधिकारी मेरे लिये अपरिचित थे। अभी तक किसी से बहुत अधिक आत्मीयता नहीं हो पायी थी। बगल में बैठने वाले रामदीप जी से थोड़ी-बहुत गप्प-शप्प होती थी, जिससे मन लगा रहता था। रामदीप जी से ही मुझे मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय के नये कुलपति जिन्हें सभी 'साहेब जी' के नाम से सम्बोधित करते हैं बहुत कड़क, ईमानदार और साफगोई-पसंद हैं। इससे उनकी एक विशिष्ट छवि मेरे मन में बनने लगी थी। पर, अभी तक मैंने उन्हें देखा नहीं था। समय पर आना, समय पर जाना और ऑफिस के सारे काम निपटा कर ही दम लेना मानों उनका शगल था, आदत थी। कोई भी अपनी घड़ी की सूई उनके आने और जाने के समय से मिला सकता था। साहेब जी से मिलने की, एक नजर देखने की मेरी प्रबल इच्छा थी, पर अभी तक उस सौभाग्य से मैं वंचित था।

साहेब जी के कक्ष की घंटी बजी। अर्दली, रामू दौड़ा-दौड़ा अंदर गया। साहेब जी ने कहा- तीन दिन पहले जो सहायक कुलसचिव आये हैं, उन्हें बुला ले आओ। रामू ने आकर मुझे सूचना दी कि साहेब जी ने आपको याद किया है। साहेब जी का बुलावा सुनकर ही मेरे हृदय की धड़कन बढ़ गयी। कलेजा धक-धक करने लगा। सोचा, अभी आते ही मुझसे क्या भूल हो गयी जो साहेब जी ने मुझे तलब किया। धौंकनी की तरह धक-धक करते दिल को काबू में किया और रामू से कहा- चलो चलता हूँ। साहेब जी की जो आदरणीय छवि मेरे मानस में बन चुकी थी, उससे मैं पूरी तरह उनके प्रति आकर्षित था। अनायास अपनी जगह से उठा और चल पड़ा साहेब जी के कक्ष की ओर। द्वार पर नेम-प्लेट डॉ. एम. नारायण देखकर मैं थोड़ी देर के लिये ठिठक गया। परदे को हटाकर बड़ी विनम्रता से कहा- अंदर आ सकता हूँ सर। उन्होंने कहा- हाँ और चुप हो गये। शायद उन्होंने मुझे आते हुए देख लिया था। मेरी नजर जैसे ही उन पर पड़ी तो मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा। मेरे भीतर से आवाज आई अरे, ये तो मुकुल है, मुकुल नारायण। मेरा सहपाठी, स्कूल में हम साथ-साथ थे। लगभग तीस वर्ष हुए होंगे, कोई देखा-देखी नहीं हुई। कॉलेज के दिनों में यह अवश्य सुना था कि आगे की पढ़ाई के लिए वह इस शहर से दूर किसी उच्चतर संस्थान में गया है। बस इतना ही मालूम था। आज अचानक इस तरह सामने पाकर मैं हतप्रभ था। उन्होंने मुझे गले से लगा लिया और सामने की कुर्सी पर बिठाते हुए पूछा-पहचानते हो मुझे। मैंने सिर हिलाकर हामी भर दी और धीरे से कहा- मुकुल, मुकुल नारायण और बचपन के स्कूल के दिनों की एक-एक स्मृतियाँ मेरे सामने चित्रपट की भांति घूमने लगीं।

कहते हैं स्मृतियाँ जब आती हैं तो अतीत के सारे दृश्य साफ होने लगते हैं, सारे धुंधलके छँटने लगते हैं और बुरे-अच्छे चित्र मन-मस्तिष्क के परदे पर उतरने लगते हैं। मैं आज से तीस वर्ष पूर्व अतीत में खो जाता हूँ। मैंने देखा कि दस-ग्यारह वर्ष का किशोर मैं अपने सहपाठियों- मुकुल, राकेश, अमर, दिलीप, केशव, सुधीश और मुकेश के साथ क्लास रूम में बैठा हुआ हूँ। हम सब में मुकुल सबसे अधिक प्रतिभाशाली था। वह दलित था और उसने इस धारणा को खण्डित किया था कि दलित मेधावी नहीं होते। पिता जी की दिनोंदिन गंभीर होती हुई बीमारी के कारण घर का सारा बोझ उसी के कंधों पर था। माँ, छोटा भाई और एक बहन थी। अपनी पढ़ाई के साथ-साथ वह घर के तमाम काम स्वयं निपटाता था। पड़ोस के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर स्वयं पढ़ता और उससे जो पैसे मिलते उससे घर का काम चलाता। उस दिन अंग्रेजी के शिक्षक श्री तारकेश्वरनाथ श्रीवास्तव ग्रामर पढ़ा रहे थे। हमारी मित्र-मंडली को पढ़ने में मन नहीं लग रहा था। एक मेष-शावक सामने के मैदान में खेल रहा था। सुधीश चुपके से बाहर गया और उस शावक को पकड़ लाया। मुकुल के बगल में उसने उस मेष-शावक को छोड़ दिया जिससे वह शावक क्लास रूम में ही दौड़ने लगा। शायद अपनी माँ को खोज रहा था। क्लास के सभी छात्र उस शावक की धमा-चौकड़ी देख एक साथ हँस पड़े। शिक्षक महोदय छात्रों की यह हरकत देख तिलमिला उठे और उन्होंने अपने क्रोध का इजहार कुछ इस तरह किया,

मुकुल की पीठ पर दनादन कई सोंटे पड़े। पूरा क्लास सन्न रह गया। मौन। पिन ड्रॉप साइलेंस। बेचारा सीधा-सादा मुकुल, अध्यापक महोदय के क्रोध का शिकार हो गया। हम सब मन ही मन बहुत दु:खी हुए पर विवश थे, अन्यथा हम सब भी मुकुल की तरह ही पिट जाते।

मन ने स्वत: बुदबुदाया- बेचारा मुकुल

और, अतीत का दूसरा पृष्ठ सहसा खुल गया।

दिसम्बर का अंतिम सप्ताह था। सभी स्कूलों में क्रिसमस की छुट्टी हो चुकी थी। लोग-बाग छुट्टियाँ मनाने कहीं न कहीं जा रहे थे। हमारी मित्र-मंडली ने भी निर्णय लिया कि हम लोग आगामी एक जनवरी को नये वर्ष के आगमन की खुशी में पिकनिक मनाने जायेंगे। मित्र-मंडली के इस निर्णय को भला कौन टाल सकता था। लिहाजा नये वर्ष के प्रथम दिन हम सभी अहले प्रात: पिकनिक के लिये चल पड़े।

हजारीबाग का जिला स्कूल। स्कूल से कोई तीन किलोमीटर दूर नगर के पूर्व-उत्तर कोने में कैनेरी पहाड़। पहाड़ की चोटी पर मंदिरनुमा वॉच टॉवर और वॉच टॉवर के ठीक नीचे बैठने के लिए बना हुआ संगमरमरी चबूतरा। चबूतरे से कैनेरी के चारों ओर दूर-दूर तक विहंगम और नयनाभिराम दृश्य दिखाई देता है। चोटी से हजारीबाग शहर की हरियाली इस तरह दिखाई देती है गोया, पूरा शहर जंगल के बीचों-बीच बसा हो। शायद इसीलिए इसे हजार बागों का शहर कहा जाता है। घनी आबादी के बावजूद हरियाली आज भी कुछ-कुछ बची हुई है। कैनेरी की तलहटी में उसके चारों ओर मोरम-पथ है, जिससे पूरे पहाड़ की परिक्रमा की जा सकती है। हम पहाड़ की परिक्रमा करते हुए चोटी पर गए। पहाड़ की चोटी से दिखती हुई शहर की हरियाली ने हमें पहली नजर में इस तरह अभिभूत कर लिया कि पूरा शहर आँखों में समा गया। अंग्रेजी काल से ही हजारीबाग खूबसूरत पर्यटन-स्थलों के लिए विख्यात रहा है। रत्नगर्भा दामोदर, बोकारो और कोनार जैसी नदियां, कैनेरी, सिलवार, जुलजुल और बभनबै जैसे वनाच्छादित हरे-भरे पहाड़ व रांची-पटना रोड़ के दोनों ओर दस किलोमीटर की लम्बाई में नेशनल पार्क हजारीबाग की शोभा है। बड़ी बात यह कि नेशनल पार्क से जंगल की एक लंबी पट्टी पूरब-दक्षिण दिशा में उड़ीसा को लांघती हुई पश्चिम की ओर छत्तीसगढ़-मध्य प्रदेश तक चली गई है। जंगली पशु इसी पट्टी में विचरण करते हैं। कभी-कभी हाथी, बाघ, लकड़बग्घा जैसे जंगली हिंस्र पशु और आम आदमी आमने-सामने भी होते रहे हैं। मैंने अपने हिंदी के शिक्षक श्री जयगोविंद मिश्र से पूछा था कि सर, इस पहाड़ का नाम 'कैनेरी' क्यों है? तो उन्होंने बताया था कि कभी इस क्षेत्र में 'कैनेरी' नाम की चिड़िया बहुतायत में पायी जाती थी, पर अब विलुप्ति के कगार पर है। इसी चिड़िया के नाम पर ही अंग्रेजों ने इस पहाड़ का नाम 'कैनेरी' रखा था। कैनेरी की तलहटी से सटे मोरम-पथ से दक्षिण मात्र

सौ गज की दूरी पर बड़ा-सा तालाब और तालाब के एक कोने से लग कर बहती हुई स्रोतस्विनी सेवाने है। जंगल में शाल, पलाश, नीम, शीशम, करंज, पियार, महुआ के बड़े-बड़े पेड़ तथा चप्पे-चप्पे में बेर, करौंदा और पुटुस की कंटीली झाड़ियाँ हैं। स्थानीय लोगों ने बताया था कि यहाँ शाम होते ही बाघ डेरा डाल देता है। जंगली सूअर, खरगोश, लोमड़ी, सांभर आदि तो दिन में ही इधर-उधर विचरण करते दिख जाते हैं। अंधेरा घिरते ही बाघ हाँऊँ! हाँऊँ! करता हुआ पहाड़ के चट्टान पर आकर बैठ जाता है। इस कारण शाम होते ही यह रास्ता बंद हो जाता है। दिनभर हम सभी ने पिकनिक का खूब आनंद लिया, धमा-चौकड़ी की तथा तरह-तरह के खुद के बनाये हुए व्यंजनों का स्वाद लिया। कब सुबह से दोपहर और दोपहर से शाम हो गई किसी को पता नहीं चला। सबने आज फिर दिनभर मुकुल को अपना निशाना बनाया, चुहलबाजी की, हँसी-दिल्लगी-ठिठोली की तथा परिहास का भी वह केन्द्र रहा। दिनभर में कितनी बार वह बोर हुआ होगा, नहीं कह सकता।

ढलते सूरज को देखकर हम सबने चलने की तैयारी की, पर नियति को शायद यह मंजूर नहीं था। हमारा वाहन जो हमें लेने के लिये आने वाला था, अभी तक नहीं आया था। हम सबकी बेचैनी ढलते सूरज और निरंतर गहराते अंधेरे के साथ बढ़ती जा रही थी। जंगली हिंसक जानवरों का भी भय सताने लगा था। दूसरी ओर मुकुल चैन से बैठा वंशी बजा रहा था।

शाम के छह बज रहे होंगे। भुवन-भास्कर अपनी जगह छोड़ चुके थे। वातावरण धीरे-धीरे निस्तब्ध होता जा रहा था। जंगली पशु-पक्षी भी शोर कर चुप हो गये थे। तभी अचानक राकेश ने शोर मचाया- देखो, देखो, मुकुल को क्या हो गया है? हम सभी एकबारगी मुकुल की ओर दौड़ पड़े। मुकुल जमीन पर सुस्त पड़ा हुआ था। सर्दी के मौसम में भी उसके चेहरे पर पसीने की बूँदें थीं। वह कुछ नहीं बोल पा रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे उसे लकवा मार गया हो-सारा शरीर सुन्न पड़ गया था। हम सबको काठ मार गया। तत्काल उसे 'मेडिकल ट्रीटमेंट' की आवश्यकता थी। यहाँ से तीन किलोमीटर तक कोई गांव नहीं था। सबसे निकट का कस्बा कोर्रा था, जहाँ सुबह-शाम एकमात्र इलाके के मशहूर चिकित्सक डॉ. मित्रा बैठा करते थे। हम सबके सामने अचानक बड़ी विकट समस्या मुंह बाये खड़ी हो गयी थी।

जंगल में पड़े सूखे बांस और बल्ले को जोड़कर तुरंत हमने स्ट्रेचर तैयार किया। अपने-अपने कोट, स्वेटर और शॉल से अस्थायी गद्दी बनाकर मुकुल को स्ट्रेचर पर पीठ के बल लिटाया और लेकर दौड़ पड़े शहर की ओर। जंगली पहाड़ी कच्चा रास्ता और उबड़-खाबड़ धरती को चीरते हुए हम लगभग तीन किलोमीटर तक हाँफते-गिरते पहुँचे ही होंगे कि सामने से हमारा वाहन आता दिखाई दिया। सब खुशी से उछल उठे। अचानक स्ट्रेचर से मुकुल भी उठ बैठा और हम सभी की पस्त हालत देखकर हँस पड़ा। उसके इस मजाक से हम सभी भौंचक्क थे। उसने नहले पर दहला जड़ दिया था। उसका पहला ही दाँव सब पर भारी पड़ गया था। हम सब केवल इतना ही कह सके- मुकुल तुम भी...।

तभी, साहेब जी ने मेरा पूरा शरीर झिंझोड़ डाला, मेरी तंद्रा भंग हुई। इस अल्पावधि में ही मैंने तीस वर्ष पूर्व की स्मृतियों की यात्रा तय कर ली थी। उन्होंने कहा- लो चाय पी लो, कब से पड़ी है- ठंडी हो जायेगी। मैंने चाय का कप मुँह से लगाया, साहेब जी की ओर देखा। वे मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे।

दरोगवा

मुसाफिर बैठा, पटना

नेपाल से सरहद साझा करते उत्तरी बिहार के एक जिले का पिछड़ों, अति पिछड़ों व दलितों की पूरी आबादी वाला एक धुर पिछड़ा गांव। गांव में दबदबा पिछड़ों के बीच अगड़े ग्वालों का। ग्वाला माने यादव। घुमा के बूझिए तो लालू, मुलायम, शरद वाला यादव! एक राजनीतिक टर्म 'भूराबाल' (भूमिहार, राजपूत, ब्राह्मण, लाला/कायस्थ) जैसी दबंग व पेचोंखम रखने वाली माने जाने वाली मनुवादी जमात-जातियों की छटाँक भर भी उपस्थिति नहीं थी इस गांव में। हालांकि 'भूराबाल' की गैरमौजूदगी में समस्त 'सांस्कृतिक' आमदों से सजे आचरणों को अंजाम देने का जिम्मा

यादवों ने ही संभाल रखा था! इस खयाल से यादवों का एक कुनबा खास मौज में था। कुनबे के लोग अक्सर इन 'सांस्कृतिक' कर्मों को दत्तचित्त होकर संपन्न किया करते थे। स्वजाति हो या विजाति, कमजोर एवं गरीबों की राह में नित समदर्शी काँटे उगाए बिना इनका जी नहीं भरता था। दूसरी जात के धनिक लोगों को तो ये बात-बेबात तंग करते, उनसे कभी बरजोरी, डरा-धमका कर तो कभी पुचकार अथवा किसी बहाने से कैश एंड काइंड में उगाही करते। ज्यादती करने का खून मुंह लगने के कारण ये कई बार अपनी जात ले तक को तंग-तबाह करने से बाज नहीं आते। हां, अपने जात भाइयों के कमजोरों पर इतना लाड़-प्यार जरूर उमड़ता, जब गैर जात वालों पर अपनी बिरादरी को तरजीह देने का मामला आता, अपनी जात की नाक-रक्षा का सवाल आता। मसलन, लड़ाई-झगड़े के मौकों पर सही ग़लत का खयाल किये बिना ये अपनी बिरादरी वालों का पक्ष लेते। कुल मिलाकर, जाति प्रपंच, सांस्कृतिक लठैती एवं अन्यायकारी बरजोरी के तमाम कुकर्म एवं धत्कर्म कर ये बदगुमान ग्वाले गांव में बराबर असहज व तनाव का वातावरण बनाए रखते।

गांव के नाभि बिंदु से अलग-थलग कुछ दूरी पर उत्तर दिशा में अवस्थित थी मुसहरों, चमारों एवं डोमों की समावेशी टोली। हालांकि इनके भी जाति-खांचे अलग थे। ये दलित जातियां भी एक दूसरे से या तो छोटी थी या बड़ी। यानी, तीन जातियों के इकट्ठे टोले में भी खाँचाबद्धता थी, ऊंच-नीच के सोपान थे। इस टोले के डोमवास वाले हिस्से के एक भूमिहीन मजदूर परिवार में जन्मा था दरोगवा, जिसकी यह कहानी है। वैसे, निर्धनता और भूमिहीनता का पर्यायवाची था यह समूचा टोला ही। टोले में भी एक प्राइमरी स्कूल के खुल जाने से बच्चों में अब अक्षर-ज्योति फैलने लगी थी। वैसे, सच तो यह भी था कि अधिकांश बच्चे स्कूल की देहरी पर खिचड़ी-लोभ में खिंचकर जाते। सरकार का यह खिचड़ी कार्यक्रम नायाब था। प्राय: हर दिन स्कूल में खिचड़ी और चोखा ही मिलता। हालांकि सप्ताह के हर दिन का मेन्यु स्कूल की दीवार पर छपे चार्ट में अलग-अलग था, संतुलित और पौष्टिक आहार का प्रावधान था। जिस समय खिचड़ी बंटनी होती, खेतों और नदी-तालाब में घोंघा, सितुआ बीनने में लगे, मछली पकड़ने गए और अन्य कामों में फंसे-फसाएं बच्चे भी कतार में आकर बैठ जाते। खिचड़ी अगर बच जाती तो दो चार बड़े बुजुर्ग लोगों की क्षुधापूर्ति भी हो जाती थी जो इसी आस में स्कूल के अहाते में थाली लेकर टकटकी लगाए खड़े रहते। खिचड़ी की क्वालिटी का तो पूछना ही क्या? बिना किसी सावधानी, साफ-सफाई के अन्यमनस्क मन से सिझाई गयी इस खिचड़ी में दो-चार मरे घुन और कीड़े-मकोड़े किसी थाली में तैरते मिल जाएं तो क्या आश्चर्य? किसी ने सब्र-सावधानी से खाया तो ठीक, वरना ये कीड़े भी पेट के अंदर! जैसे घुन लगी जिंदगी में मरे कीड़े और घुन की उपस्थिति भी जरूरी हो! खैर, अब खिचड़ी-पुराण बंद कर, आइए कथानायक दरोगवा के घर चलें!

दरोगवा के माता-पिता मृत जानवरों की खाल उतारने एवं बांस-बेत से पटिया, बेना, डलिया देउरा आदि छोटे-मोटे घरेलू सामान बनाने का काम कर परिवार के तीन पेट पाल रहे थे। कभी-कभार अपने गाँव और आसपास के किसानों के खेतों में उसके पिता को मजदूरी करने को भी मिल जाता। मगर, किसी काम में अगर दबंग ग्वालों का स्वार्थ आड़े आता तो बिना मजूरी के अथवा बिना उचित मजूरी के भी काम करना पड़ता। इस जोर-जबरदस्ती के आगे 'चूं' बोलना भी शेर के मुंह में हाथ डालना होता। धन-बल के तड़का के मणिकांचन संयोग के इस जोर के दर्द को दरोगवा के माता-पिता खूब भोगते-सहते आ रहे थे, बिना चूँ-चपड़ किए। और यही वजह थी कहीं न कहीं कि उसके पिता ने 'दरोगा' नाम रखा उसका। मां-बाप के मन के किसी कोने में बेटे को दारोगा बनाने की साध थी कि सब किसी की ऐंठ पर उनकी मूछों की ऐंठ, बजरिये पुत्र-पराक्रम, तो किसी दिन भारी पड़े!

सो, दरोगा प्यार-मनुहार से सोच-समझकर रखा गया नाम था। गोया कि दरोगा नहीं दारोगा सही शब्द है, यह दरोगवा के माँ-बाप को नहीं वरन स्कूल में नाम लिखने वाले उसके हेडमास्टर को भी मालूम न था। दारोगा नाम से दरोगवा के मां-बाप का सपना भी जुड़ा था, लेकिन इस 'ओजस्वी' नाम की कद्र गांव वालों ने कभी न की। जैसे गरीब की जोरू गांव भर की भौजाई बन जाती है, वैसे ही दारोगा की विपन्नता ने उसके नाम की शुचिता को भी नहीं बख्शा और 'दरोगा' सामूहिक 'बलात्कार' का शिकार होकर 'दरोगवा' के तिर्यक विकारग्रस्त रूप में हर जुबान पर व्याप्त हो गया। हालांकि उसके मां-बाप ने काफी दिनों तक अपने बेटे के 'दरोगा' को अक्षुण्ण रखने का भरसक प्रयत्न किया पर उन्होंने भी एक दिन हार मान ली और समाज-बलत्कृत 'दरोगवा' को बुझे मन से अपना लिया। मन को समझाया कि लोगों ने जब 'दरोगा' की जगह 'दरोगवा' को हैसियत (!) प्रदान कर ही दी है तो हमें भी उसे अपना लेने में क्या हर्ज? हालांकि स्कूल के रजिस्टर एवं घर के कागज-खतियान में 'दरोगा' का अस्तित्व बरकरार रहा। एक समय ऐसा आया कि दरोगा अपना बिगड़ा नाम सुनने का अभ्यस्त हो गया। बिगड़े दरोगवा का असर उसके दिलो-दिमाग पर इस कदर हावी हो गया था कि एक दो मौकों पर तो उसने प्रथम परिचय में अनजान लोगों तक को अपना नाम दरोगवा ही बता डाला था और फिर झेंपते हुए तुरंत अपना नाम सही किया था। बार-बार का थोपा गया झूठ सच का गला दबा उस पर चढ़ बैठता है! सुनने में आता है कि झूठ को सच में तब्दील करने का ऐसा ही हिमायती और कारीगर निरंकुश जर्मन शासक हिटलर का प्रचार मंत्री गोएबल्स भी था। मशहूरियत के शिखर पर विराजमान अलबेले-अकेले अंग्रेजी लेखक शेक्सपीयर कहते हैं, नाम में क्या रखा है? अगर वे भारत की 'दिव्य' भूमि पर अवतरित हुए होते, वह भी एक गरीब दलित कुल में, तो यकीनन उन्हें पता चल जाता कि नाम में क्या नहीं रखा होता है, कि नाम में क्या-क्या रखा होता है!

गांव-देहात में पुलिस-दारोगा का भय एवं असर सिर चढ़कर बोलता है। प्रभु लोगों को भी जब इनकी शरण गहने आना होता है या ये प्रभु वर्ग की सेवा में जाते हैं तो शेर के आगे उनका प्रभुत्व उड़न छू हो जाता है! गोया, ऊंट को खुद के पहाड़ के नीचे आने का पता चल जाता हो! लेकिन दरोगवा का इस ओजवृत्ति से कभी कोई लगाव नहीं दिखा। उस पूत के दारोगा-उदासीन पाँव पालने में ही दिख गए थे। गांव-जवार, पास-पड़ोस के हमउम्र बच्चों एवं स्कूली संगी-साथियों के साथ रार मचाने या टंटा खड़ा करने जैसे उपालंभी कार्यों की कोई गवाही दरोगवा के विरुद्ध नहीं मिलती। उसके मां-बाप को डांट-डपट करने एवं लोगों से शिकायत पाने की एक भी मुराद पूरी न हुई होगी! कहें कि दारोगे के प्रैक्टिल गुण-धर्म को व्यंजित कर सकने वाला कोई फल इस दरोगवा में नहीं मिलता। दरोगवा का मन-झुकाव कहीं और था। वह तो डॉक्टरों की जनसंलग्नता और सेवाभाव का मुरीद था। और, इसी बात को लक्ष्य कर उसने अपने

हास्य व्यंग/शेरो-शायरी/गजलें/कविता

काका हाथरसी

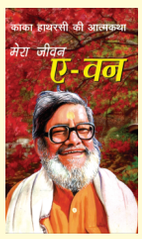

काका हाथरसी
मेरा जीवन ए-वन
150.00

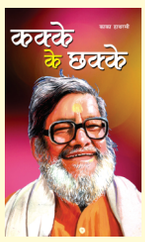

काका हाथरसी
कक्के के छक्के
150.00

प्रेम किशोर'पटाखा'
वाह पटाखा वाह
150.00
DB06164

डॉ. सुनील जोगी
हंसी के अनारदाने
150.00

प्रदीप चौबे
बाप रे बाप
150.00
DB00757

राजकुमार सचान 'होरी'
क्योंकि मैं मुर्गा हूं
150.00
DB03697

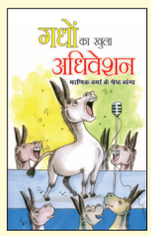

माणिक वर्मा
गधों का खुला अधिवेशन
150.00
DB03309

अशोक चक्रधर

अशोक चक्रधर
डाल पर खिली तितली
150.00
DB00866

अशोक चक्रधर
खिड़कियां
150.00
DB00866

अशोक चक्रधर
हंसो और मर जाओ
150.00
DB00866

अशोक चक्रधर
भोले भाले
150.00
DB00866

अशोक चक्रधर
ए जी सुनिए
150.00
DB00866

अशोक चक्रधर
सब मिलती रहना
150.00
DB03987

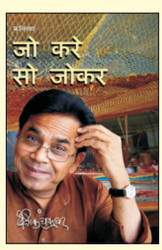

अशोक चक्रधर
जो करे सो जोकर (यंत्रस्थ)
150.00
DB00720

अशोक चक्रधर
बोल गप्पे
150.00
DB00713

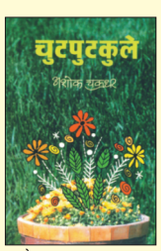

अशोक चक्रधर
चुटपुटकुले
150.00
DB00715

अशोक चक्रधर
जाने क्या टपके
150.00
DB00719

अशोक चक्रधर
इसलिए बोड़म जी इसलिए
150.00
DB00717

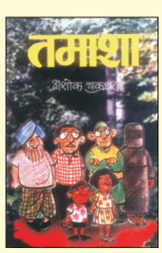

अशोक चक्रधर
तमाशा
150.00
DB00724

अशोक चक्रधर
जब रहा न कोई चारा
150.00
DB00718

अशोक चक्रधर
रंग जमा लो
150.00
DB00722

डॉ. प्रवीण शुक्ल
क्या करेगी हवा
150.00

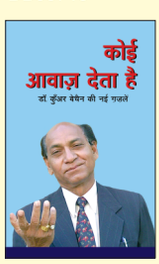

कुंअर बेचैन
कोई आवाज़ देता है
150.00

सुरेन्द्र शर्मा
मानसरोवर के कौवे
150.00
DB00791

महेन्द्र अजनबी
हंसा हंसा के मारूंगा
150.00
DB00752

जैमिनी हरयाणवी
हंसाये जा प्यारे
150.00
DB00726

जैमिनी हरयाणवी
मून पर हनीमून
150.00
DB00728

मंजीत सिंह
मॉडर्न पंचतंत्र
150.00
DB00754

शैल चतुर्वेदी
चल गई
150.00
DB00763

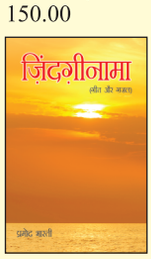

प्रमोद भारती
ज़िंदगीनामा
150.00

प्रवीण शुक्ल
कहां वे कहां ये
150.00
DB03971

ऋषिवंश
गुलदस्ता
150.00
DB00917

वेद प्रकाश वेद
हंसी खेल नहीं
150.00
DB00931

अल्लड़ बीकानेरी
हर हाल में खुश हैं
150.00

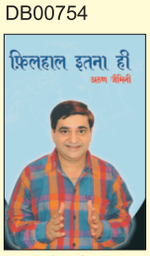

अरुण जैमिनी
फिलहाल इतना ही
150.00
DB00711

कविता

डॉ सुनील जोगी
101 राष्ट्रीय गीत
150.00
DB03568

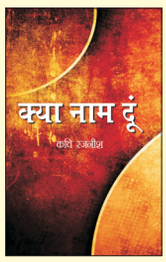

कवि रजनीश
क्या नाम दूँ
150.00 (सजिल्द)
DB05995

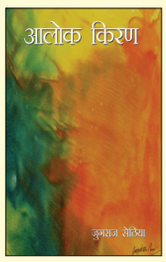

जुगराज सेठिया
आलोक किरण
150.00
DB06161

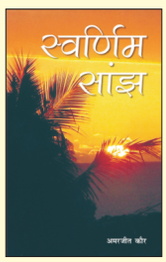

अमरजीत कौर
स्वर्णिम सांझ
200.00 (सजिल्द)
DB00875

बेकल उत्साही
लफ्जों की घटाएं
150.00
DB03687

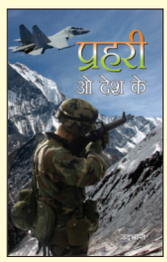

उद्भ्रांत
प्रहरी ओ देश के
150.00
DB00929

दिव्या माथुर
चंदन पानी
200.00 (सजिल्द)
DB00883

मंजु शर्मा
मेरा हरियाणा
150.00
DB04074

मंज़ूर हाशमी
फूलों की कश्तियां
150.00
DB03688

मीनू
लव इन ए टाइम मशीन
150.00
DB03244

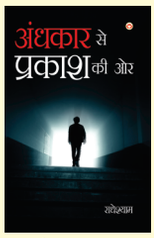

राधेश्याम
अंधकार से प्रकाश
की ओर...150.00

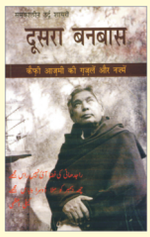

कैफी आजमी
दूसरा बनवास
150.00
DB01012

अमरजीत कौर
उपहार
200.00 (सजिल्द)
DB00876

कन्हैयालाल नन्दन
बंजर धरती पर इन्द्रधनुष
150.00
DB00940

संजय झाला
सुनि-सुनि आवै हांसी
150.00

डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव
आज स्थिर है ज्वार
150.00
DB00922

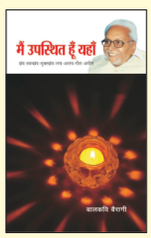

बालकवि बैरागी
मैं उपस्थित हूं यहां
150.00
DB02913

कान्ता गुरसाहनी "किवी"
नजरिया
150.00
DB00893

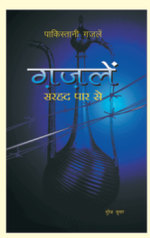

सुरेश कुमार
ग़ज़लें सरहद पार से
(पाकिस्तानी गजलें)..150.00
DB01015

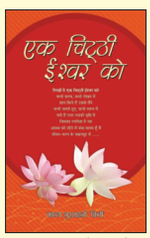

कान्ता गुरसाहनी 'किवी'
एक चिट्ठी ईश्वर को
150.00
DB00890

अंतर जगदीश 'निसार'
ए' हमसुखन
150.00
DB03862

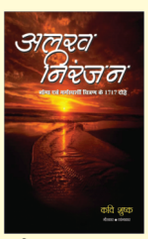

कवि शुष्क
अलख निरंजन
150.00
DB03618

राजकुमार सचान 'होरी'
होरी दोहावली
150.00
DB00913

नरेश शांडिल्य
कुछ पानी कुछ आग
150.00
DB00897

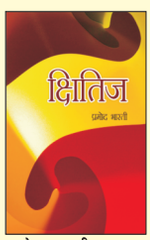

प्रमोद भारती
क्षितिज (कविताएं)
225.00
DB00901

प्रणव गोस्वामी 'निर्मल'
ये पत्थर बोलते हैं....150.00
DB03698

मधुप पांडेय
मीठी मिर्चियाँ....150.00
DB05134

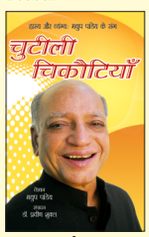

मधुप पांडेय
चुटीली चिकौटियां
150.00

प्रेम निशीथ
मयकदा है मयकदा (कविता)
150.00
DB01296

शशिकांत 'सदैव'
स्त्री: को कुछ अनकहीं
150.00
DB03889

शशिकांत 'सदैव'
तेरे साथ की आदत
150.00

इरफाना अजीज
सितारे टूटते हैं
150.00
DB01004

डॉ सुनील जोगी
हिन्दी के मुक्तक
और रूबाइयां....150.00
DB00926

सुरेश कुमार
कहकशां का सफर
(उर्दू शायरी)....150.00
DB01016

आर.एन.श्रीवास्तव
थाल में बाल
150.00
DB04888

शायरी/उर्दू शायरी/ग़ज़लें

बशीर बद्र
धूप का चेहरा
150.00
DB03578

बशीर बद्र
उजालों की परियां
150.00
DB01026

आलम खुर्शीद
एक दरिया ख़्वाब में
150.00
DB01013

कान्ता गुरसाहनी 'किवी'
एक चिट्ठी ईश्वर को
150.00
DB00890

डॉ. हरिराज सिंह
नील गगन की ओर
150.00

जांनिसार अख़्तर
तनहा सफर की रात
150.00
DB01023

बेकल उत्साही
वतन के तराने
100.00

नरेश शांडिल्य
टुकड़ा-टुकड़ा ये ज़िन्दगी
150.00
DB04227

उद्भ्रान्त
मेरी व्यंग्य कविताएं
150.00
DB03440

बी. एन. झा
एक माटी दो अध्याय
150.00
DB03937

रामदरश मिश्र
51 ग़ज़लें
150.00
DB03059

उमा शर्मा
भाव गंगा
150.00
DB04591

अन्तर जगदीश
रेत की रबाब
150.00

निदा फ़ाज़ली
मौसम आते जाते हैं
150.00
DB01020

गिरिराजशरण अग्रवाल
रोशनी बनकर जिओ
150.00
DB01827

नसीम गोरखपुरी
जज़्बा ए दिल
195.00

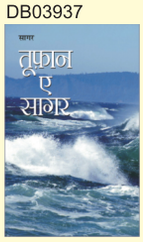

जगदीश गोदरा आगर
तूफान ए सागर
150.00
DB01005

शाहिदा हसन
शाम की बारिशें
150.00

डपेन्द्र कुमार
प्रेम प्रसंग
150.00

सुरेश कुमार
उदासियों से घिरा चांद
(गजलें).... 150.00
DB01024

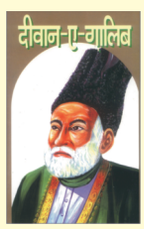

दीवाने गालिब (सम्पूर्ण)
2 रंग में.... 150.00
DB01008

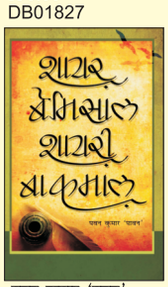

पवन कुमार 'पवन'
शायर बेमिसाल शायरी
बा कमाल 150.00
DB00902

ज्योति
एक पुकार मेरी अवाज़
150.00
DB04887

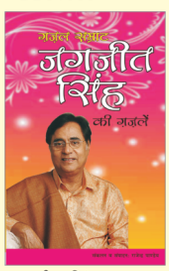

जगजीत सिंह
जगजीत सिंह की ग़ज़लें
150.00

प्रेम निशीथ
हंगामा है क्यों बरपा
150.00

लक्ष्मी अग्रवाल
तलाश रही हूं खुद को
150.00

पं. सुरेश नीरव
पलटीमार....250.00

आशा करण अटल
साहब बाथरूम में हैं
150.00

डॉ. कुमार विश्वास
कोई दीवाना कहता है
150.00 DB06025

नीरज
गीत जो गाये नहीं
150.00
DB00886

नीरज
बादलों से सलाम लेता हूं
150.00
DB00885

नीरज
कुछ दोहे नीरज के
150.00
DB00887

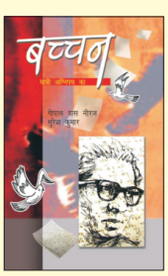

गोपाल दास नीरज
बच्चन यात्री अग्निपथ का
150.00
DB00946

मुज़फ्फर वारसी
दर्द चमकता है
150.00
DB03689

शहरयार
मिलता रहूंगा ख्वाब में
150.00
DB01021

साहित्य व्यंग्य

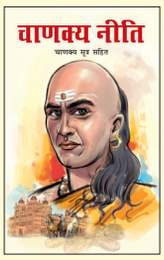

अश्विनी पाराशर
चाणक्य नीति
150.00
DB02354

दयानन्द वर्मा
आने वाले कल
की कहानियां...150.00
DB02853

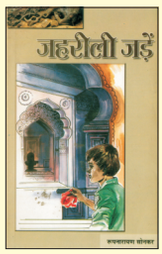

रूपनारायण सोनकर
जहरीली जड़ें
100.00
DB02827

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
टूटा अभिमान
150.00
Db03446

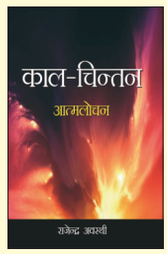

राजेन्द्र अवस्थी
काल चिंतन
6 भागों में
प्रत्येक 150/-

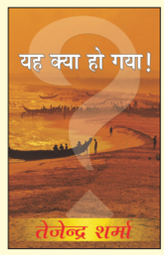

तेजेन्द्र शर्मा
यह क्या हो गया (कहानी)
150.00
DB00978

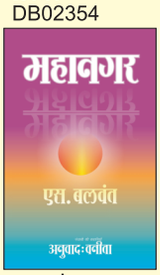

एस. बलवंत
महानगर (कहानियां)
150.00
DB03959

बंगला की श्रेष्ठ कहानियां
वासु भट्टाचार्य
150.00
DB02839

राजेन्द्र अवस्थी
जाने कितनी आंखें
150.00
DB06098

पंकज के. सिंह
समर्थ भारत
400.00

सुनील जोगी
मां ही है भगवान
150.00

तरुण इन्जीनियर
ईश्वर का दूसरा रूप है मां
175.00
DB01449

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
जवाहर चौधरी
175.00
DB00773

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
प्रेम जनमेजय
225.00
DB00782

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
रेखा व्यास
150.00
DB00787

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
महेश चन्द्र द्विवेदी
150.00
DB00774

पं. सुरेश नीरव
मेरी प्रतिनिधि व्यंग्य रचनाएं
175.00

हरीश नवल
51 व्यंग्य रचनाएं
175.00

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
दामोदरदत्त दीक्षित
175.00
DB00766

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
हरि जोशी
150.00
DB00772

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
गजेंद्र तिवारी
225.00
DB00767

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
सरोजनी प्रीतम
225.00
DB03596

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
गोपाल चतुर्वेदी
250.00
DB00771

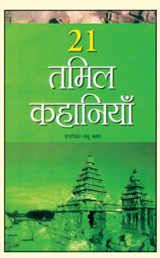

21 तमिल कहानियाँ
मधु धवन
150.00
DB02858

51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं
विनोद शंकर शुक्ल
175.00
DB00793

गीरिश पंकज
मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएं
150.00
DB00777

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
मेरे इक्यावन व्यंग्य
150.00
DB00768

प्रेम निशीथ
हंगामा है क्यों बरपा
150.00
DB00785

तरसेम गुजराल
डंके की चोट पर शराफत
150.00
DB00765

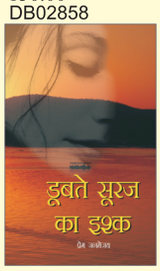

प्रेम जनमेजय
डूबते सूरज का इश्क
150.00
DB00783

मां-बाप की इच्छा-आकांक्षा को रौंदकर अपने गांव के कोई पांच मील दूर स्थित एक शहर, जिला मुख्यालय में आईएससी, जीव विज्ञान में नामांकन करा लिया था। उन्हीं दिनों अपने किसी साथी सहपाठी के कहने पर उसने सरकारी कॉलेज से डिप्लोमा इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए आयोजित राज्य स्तरीय प्रवेश परीक्षा दी जिसमें वह पास भी हो गया। गांव घर वालों की कूपमंडूक बुद्धि के हिसाब से ओवरसीयर बनने का यह बड़ा अवसर था। गांव में अब तक अच्छी कमाई वाली नौकरी किसी की नहीं लगी थी। दरोगवा के लिए तो यह पढ़ाई अच्छी कमाई के साथ-साथ ऊपरी कमाई की छौंक का स्वाद भी चखने का मौका देने वाली थी। गांव में उंगली पर गिनने लायक लोग ही नौकरी वाले थे, उसमें भी मास्टर की नौकरी और उससे भी नीची मानी जाने वाली चपरासी आदि की नौकरियों में। ऐसे में गांव के उसके तमाम हितैषियों ने एक स्वर में उसे पॉलिटेकनिक की पढ़ाई करने की बिन मांगी सलाह दी और उसके पढ़ने की आर्थिक व्यवस्था भी कुछ भलेमने जनों द्वारा कर दी गई। उसे लोगों के दबाव के आगे झुकना पड़ा। उसे डॉक्टर बनने की अपनी चिर संजोई इच्छाएं मन में ही दफन कर देनी पड़ीं। अब गांव को अपना पहलौठा कनीय इंजीनियर मिलने वाला था। मां-बाप ने भी अपने दारोगा के सपने को परिस्थिति के अनुसार अपदस्थ कर इंजीनियर में तब्दील कर दिया था!

दरोगवा भले ही अपने मन का कैरियर नहीं चुन पाया था, अब वह थोपे कैरियर में ही अपनी खुशी तलाशने लगा। कहा भी गया है, आदमी खुशी खोज लेता है। पॉलिटेकनिक कॉलेज के नामांकन टेबल पर पहुंचते-पहुंचते वह काफी रोमांचित था। मन में असंख्य सुखद कल्पनाएं उथल-पुथल मचा रही थीं। नामांकन की प्रक्रिया संपादित हो जाने के बाद क्लास शुरू होने एवं अन्य जानकारी लेने के लिए प्रफुल्लित मन वह पूछताछ काउंटर की ओर ज्यों बढ़ा कि किसी ने उसके कंधे पर बल देकर अपना अनुसरण करने का इशारा किया। माजरा क्या था, यह उसकी समझ से परे था। पर पूछने की हिम्मत भी न थी। संकेत को पकड़कर कॉलेज की बिल्डिंग की छत पर जाना था जिसका उद्देश्य उस समय तक उसे अबूझ लगा था। नामांकन कक्ष से बिल्डिंग के सीढ़ीघर से शुरू होने वाली प्रथम सोपान तक कोई पचास-पचपन कदम उन दोनों को चलना पड़ा था। इन पचास-पचपन कदमों के नापने में गुजरे वक्त ने दरोगवा की एक बड़ी मुश्किल आने से पहले ही खत्म कर दी थी। इसी बीच मरी आवाज में उस आदमी ने फुसफुसाया था- 'अजी बालक, तुम्हारा क्या नाम है?' पहले तो दरोगवा अपना नाम कहते हुए सकुचाया था और झेंपते हुए अपना नाम 'दरोगा' बताया था। अगली बार जो आवाज आई उसमें ठंडापन कम था और आवाज की 'पिच' कुछ तेज थी। स्वर भी आदेशात्मक और कड़ा था- 'अपना पूरा नाम बताओ?' 'दरोगा डोम', सकपकाहट के साथ बताते हुए वह उस आदमी के साथ तीन चार सीढ़ियां लांघ चुका था कि उस आदमी ने उसे वापस लौटने का संकेत किया। दरोगवा को एक एकांत कोने में ले गया और अगल-बगल झांककर यह इतमीनान कर लेने के बाद कि किसी के कान यहां तक नहीं पहुंच सकते, हौले से बताया- 'सुनो दरोगा! मैं भी तुम्हारी बिरादरी से हूं, तुम्हारा सीनियर हूँ, सेकेंड ईयर का स्टूडेंट हूं। जाओ, तुम यहां से फौरन निकल जाओ! जाकर हॉस्टल के कमरा नंबर 4 में जाकर बैठना। कमरा खुला हुआ मिलेगा, केवल बाहर से दरवाजे का हैंडल लगा हुआ होगा।' यह कमरा छात्रावास की तिमंजिली इमारत की निचली मंजिल पर स्थित था जो कॉलेज भवन के करीब दो सौ मीटर उत्तर में स्थित था। दरोगवा को बाद में पता चला कि उस सीनियर की ड्यूटी 'फ्रेशर्स' को नामांकन के तुरंत बाद कॉलेज की छत पर पहुंचाने के लिए गाइड करने की लगी हुई थी जहां सेकेंड ईयर के बहुतेरे छात्र जमा थे और 'इंट्रोडक्शन' के नाम पर फ्रशर्स को बारी-बारी से बुलाकर उलटे-सीधे प्रश्न पूछ एवं आदेश कर काफी परेशान कर रहे थे। उस भलेमानस सीनियर गंगा रावत ने दरोगवा को अपनी चालाकी और हमदर्दी से रैगिंग के विकट तमाशे का हिस्सा बनने से बचा लिया था। यह भाग्य (!) दरोगवा का कि भोला मन एवं नेकदिल हमजात गंगा को कैम्पस रैगिंग प्रक्रिया के शिलान्यास चरण में ही लगा दिया गया था। दरोगवा अपने बैच का अकेला शख्स निकला जो डोम जाति का था और स्वजातीय गंगा की तरफदारी की वजह से रैगिंग से बच गया था। गंगा को समय ने अपनों, अपने जैसों की खातिर बाजीगरी करना सिखा दिया था। इधर, दरोगवा खुद जब रैगिंग लेने की हैसियत में आया तो अपने अविकारी चित्त के बावजूद रैगिंग वाली टीम का सक्रिय हिस्सा ही बनाया गया। रैगिंग-शिलान्यास जैसी 'गैररचनात्मक' भूमिका ग्राउंड फ्लोर के नामांकन के टेबल से फ्रेशर्स को पहुंचाने की किसी और की रही। रैगिंग-स्पॉट पर अन्य बैचमेट के बेहद अश्लील, उटपटांग, अनगढ़ एवं डराऊ-धमकाऊ प्रश्नों से अलग दरोगवा के प्रश्न हर कैंडिडेट के लिए अलग होते थे और वे सवाल रोचक, चतुराई भरे, अभ्यर्थी के ज्ञान और प्रतिभा को मापने वाले थे। और, प्राय: उसके प्रश्नों से ही हर फ्रेशर्स की रैगिंग का अंत होता था जिससे अंतत: रैगिंग का शिकार होने वाले अभ्यर्थी को लौटते-लौटते कुछ राहत और सुखद एहसास भी मिल जाता था। रैगिंग की यह प्रक्रिया हॉस्टल में भी संपन्न होती थी। पर कॉलेज की छत वाले कैंपस रैगिंग और छात्रावास की रैगिंग में कुछ मूलभूत और स्पष्ट अंतर थे। छात्रावास की रैगिंग जहां अपने-अपने जाति-जमात-गुट के सीनियर्स द्वारा ही की जाती वही कैंपस रैगिंग में दलित, पिछड़े, स्वर्ण सभी इकट्ठे मिलकर रैगिंग करते थे। कैंपस की रैगिंग में जाति की शिनाख्त होने पर, जो हो ही जाती थी, विरोधी जाति पक्ष के सीनियर द्वारा अधिक परेशान करने वाले प्रश्न और व्यवहार किए जाते थे, खासकर सवर्णों द्वारा। छात्रावास की रैगिंग में भयावहता कम होती थी और इसमें कहीं अपनापन का पुट भी होता था। अपने गुटीय जूनियर की रैंडम रैगिंग लेने का भी चलन था। यह गुटीय सीनियरों द्वारा आहूत आपात बैठकों में लिए गए निर्णय के तहत होता था ताकि जूनियर्स अपनी सीमा में रहें, सीनियरों के साथ सम्मान का व्यवहार करें। रैंडम रैगिंग का एक ध्येय जूनियर का रणनीतिक प्रशिक्षण एवं सदाचरण की सलाह देना भी होता था। एक जूनियर के साथ हुए रेंडम रैगिंग का प्रसंग काफी रोचक है। रामलाल मोची किसी गांव-देहात से आया था। दसवीं तक देहात के ही स्कूल में पढ़ा था और फर्स्ट ईयर में पढ़ने के समय ही उसकी शादी कर दी गई थी। परंपरा के अनुसार शादी के दो दिन बाद ही उसकी नई-नवेली पत्नी मैके लौट गई थी और रामलाल पढ़ाई करने शहर स्थित कॉलेज में आ गया था। इधर नया पढ़ने की भूख, उधर शादी के बाद कुछ नया पाने की भूख और जरूरत! पढ़ने की भूख पर पाने की भूख भारी पड़ रही थी! मिलन हुआ भी था तो क्षणिक, प्यासे को ओस चाटने को मिलने के माफ्फिक मात्र, और लम्बी लगती जुदाई हो गई थी। इस जुदाई ने उसे बाजार में मुंह मारने को उद्धत कर दिया था, जो कॉलेज की बाजू में ही संयोग से उपलब्ध था।

गर्मी के दिन थे फाइनल ईयर के छात्रों का एक जत्था शहर में 'राम तेरी गंगा मैली' का छह से नौ बजे वाला इवनिंग शो देख कर लौट रहा था। कॉलेज की दीवार से सटे ही कुछ कोठेवालियों के फूस के घर थे। उन घरों की बगल से जी.टी. रोड गुजरती थी। जाहिर है, भाड़े के ट्रक, लॉरी, जीप, रिक्शा, ऑटोरिक्शा आदि के चालक जैसे लम्बी अवधि तक घर-परिवार से दूर रहने वाले जन ही अधिकतर उसके 'स्वाभाविक' एवं नियमित उपभोक्ता रहे होंगे। लेकिन सीनियर के जत्थे ने उस बदनाम गली से एक जानी पहचानी सूरत को इधर-उधर झांकते हुए और हड़बड़ाते-डरते से निकलते देखा। वह कोठे की छाँह से निकल चुका था, उसकी चोरी रंगे हाथ पकड़ी गई थी। छुपने-छुपाने का कोई अवकाश न था। जत्था कॉलेज की फील्ड में आकर रुक गया था और जत्थे से किसी ने रामलाल को पास आने का संकेत किया था। वह डरे-सहमे कदमों से कछुआ गति से आगे बढ़ा। किसी ने डपटा, 'अरे बरगाही भाई, झटक के आता है कि...' वह शेर की मांद की जानिब अपने तेज-तेज चल कर आगे बढ़ा, पर गति अब भी धीमी ही थी, कदम आगे बढ़ने से मना कर रहे थे, फ्रिज से हो जा रहे थे। डांट वाली आवाज़ ही फिर से मुखातिब थी- 'अबे बपचोदी भाई, क्या करने गया था उधर?' आवाज में अधिकारपूर्ण गुस्सा था और आंखों से प्रश्न पूछता इशारा वेश्यालय की तरफ। रामलाल को काटो तो खून नहीं, जुबान से आवाज भी नहीं निकल पा रही थी। वह हकलाते हुए कुछ अस्फुट सा बोल सका, 'जी हम्मे...।' 'अच्छा तो तू रमललबा है रे, चल, चल होस्टल, तुम्हारी सुरसुरी दूर करते हैं', पुन:

वही आवाज़ थी। और, उस आवाज को ताल देता 'हा हा' की समवेत ठहाकाजन्य हंसी लगाने के साथ छात्रजत्था आगे बढ़ चला। रामलाल उनसे पिछड़ता पर हॉस्टल की ओर भारी कदमों से किसी तरह बढ़ सक रहा था। हॉस्टल के बहुजन-सेक्शन में फौरन आपात मीटिंग बुलाई गई। मुजरिम जज की बेंच के सामने हाजिर हुआ। सवाल उलटे सीधे भी हुए मगर दरोगवा ने जो सवाल किए वो रामलाल को राह दिखाने वाले थे, समझाने-बुझाने वाले थे, कतई तंग करने वाले नहीं। मसलन, दरोगवा ने 'मुंहमारी' के नुकसान गिनाए, अंदेशे बताए, पब्बी से वफादारी का वास्ता दिलाया। पब्बी से गाहे-ब-गाहे जाकर मिल आने की सलाह दी। लेकिन एक सीनियर, जो अपने समय में रगड़ा कर रैगिंग खाई थी, उसे कड़ी सजा दिलवाने की जिद रखे हुआ था। उसने रामलाल को केवल अंडरवीयर पर करवा कर दम लिया और बहुजन-गुट के सारे अंतेवासी छात्रों के कमरों में गले में पट्टी बांधकर उसे घुमाया गया। पट्टी पर लिखा था, 'मैं रामलाल हूं। अभी-अभी बगल से मुंह मार कर आया हूं। बड़ा बेशर्म हूं मैं, मेरे मुंह पर जूता मारिए। आगे से यह हरकत न करूँगा।' पीछे को बंधे हाथ, शर्मसार वह यह सब करने को मजबूर था। फिर आगे ऐसी घटना करने की जुर्रत कौन करता?

इंजीनियरी जैसे रचनात्मक पाठ सीखने-सिखाने आए लोगों की ध्वंस-बुद्धि को देख दरोगवा चकित था। जिंदगी का, पढ़ाई-लिखाई का ऐसा भी रंग हो सकता है, उसने सपने में भी नहीं सोचा था। दरोगवा के लिए यह सब देखना सिर मुड़ाते ओले पड़ने की स्थिति में पड़ने जैसा था। ऐसा भी नहीं था कि भेद बुद्धि एवं व्यवहार रखने वालों से पूर्व में उसका सामना न पड़ा हो। उसके अपने गांव के कई लोग तो औरों की ज़ाती ज़िन्दगी में खलल पैदा करने वाली कितनी ही हरकतें किया करते थे जो कथा की पृष्ठभूमि में ऑलरेडी शुरू में ही दर्ज हो चुकी है। मगर कॉलेज में तो उसने जातिभेद का अलग नंगा रूप देखा था। अवर्ण-स्वर्ण के खांचे में नाभिनालबद्ध छात्र और शिक्षक के 'तू डाल-डाल, मैं पात-पात' की स्वाभाविक अथवा थोपी दैनंदिनी (स्थिति अनुसार) देख उसे काफी हैरत होती थी। दुनिया के सात अजूबों के बारे में उसने सुन रखा था, देखा नहीं था। लेकिन यह जाति का दंगल जो उसकी आंखों के सामने हो रहा था, शर्तिया उसके लिए आठवें आश्चर्य से कतई कम न था।

छात्रावास की रीति-नीति-गति से बावस्ता होने पर दरोगवा को कई नायाब तथ्यों के बारे में जानकारी हुई। एक ओर था स्वर्ण छात्र-शिक्षकों का खेमा तो दूसरी तरफ दलित-पिछड़े समाज के छात्र-शिक्षकों का गुट, और इन प्रतिद्वंद्वी खेमाबंदियों के बीच सैंडविच बनते-पिसते अल्पसंख्यक छात्रों का एक गुट उदासीन कोटरा। उस 'युग' में गोया, मुस्लिम जन बहुजन की कोटि में न अटते थे! यह कोटरा दोनों खेमों का विश्वास अर्जित करने में असफल था, क्योंकि उन पर प्रतिपक्षी खेमे के लिए जासूसी करने का, चुगलई करने का आरोप मढ़ा जा सकता था। इस कोटरे के छात्र अजीब डायलेमा में पड़े 'न घर का न घाट का' की असुविधा-असहजता की विकट स्थिति झेलने को अभिशप्त थे।

दरोगवा ने अपनी नंगी आंखों के सामने गोली-बम चलते पहली दफा कॉलेज परिसर में यहां ही देखा था। एक बार अहले सुबह प्रतिद्वंद्वी गुट ने हमला बोलकर बहुजन गुट के 'बॉस' के रूम में घुसकर लात-जूतों एवं डंडों-रॉडों से धुनाई कर दी थी। यह गर्मी की छुट्टियों का समय था जब छात्रावास में कम ही छात्र थे। उनकी इतनी निर्मम गहरी पिटाई हुई थी कि हाथ-पैर की कई हड्डियां चटक गई थीं और उन्हें कई हफ्तों तक अस्पताल में रहना पड़ा था। लेकिन प्रतिक्रिया भी इस क्रिया की खूब हुई थी, न्यूटन के गति नियमों के तीसरे नियम की रक्षा करते हुए! घटना को अंजाम देकर सावधान स्वर्ण तो अधिकतर घटना के समय ही भाग गए थे पर प्रतिक्रिया में उनके बहुत सारे सामान उनके कमरों के ताला तोड़कर आहत पक्ष के छात्रों द्वारा लूट लिए गए थे। गुटबाजी से दूर रहने वाला एक सरल मन स्वर्ण छात्र स्थिति की नजाकत को नहीं भांप पाया, उस निरपराध को पिछड़े गुट के गुस्से की बलि चढ़नी पड़ी। उसको पकड़ कर आवेशित लड़कों ने बेतरह पीटा और उसके दोनों हाथ ईंट से कुचल दिए। लगे हाथ उस पर चोरी-मारपीट करने में शामिल होने का आरोप भी पुलिस में दर्ज़ एफआईआर में मढ़ दिया गया। हालांकि उस पर यह आरोप महज अपने इस नाजायज कृत्य के बचाव में ही किया गया था कि उसे मारने-पीटने की कोई वजह भी तो हो! वैसे, यह तर्क भी कानून के आगे कितना टिकता!

युद्धाक्रमण से द्विज पक्ष कितना भयभीत रहता था, यह हमारे सूत्रों से ज्ञात नहीं है, पिछड़ा गुट पर्याप्त डरा-सहमा रहता था। हमले की आशंका बलवती होने पर मिर्च पाउडर के पैकेट होस्टल के हर कमरे में रखे जाते ताकि हमलावर की आंखों में इसे झोंक कर आत्मरक्षा की जा सके। एक बार में मिर्च की जोरदार खरीदारी होते देख किराना दुकानदार भी चौंक जाता और इस खरीदारी पर प्रश्न करता। खरीदार छात्र को कोई निबटाऊ चलताऊ जवाब देकर पल्ला झाड़ना पड़ता। हालांकि दुकानदार छात्रों के हाव-भाव को देखकर माजरे का अनुमान कर लेता। नलकटुआ, रिवॉल्वर, पिस्टल जैसे संजीदा और संभाल कर रखे जाने वाले गुह्य धन हमारे विशेषज्ञ हाथों के हवाले रहते। चाकू-छुरी-कटारी, रॉड, लौहदण्ड (छड़), छड़ी-लाठी वगैरह का भी इंतजाम रहता कि पता नहीं कब इन वैकल्पिक शस्त्रों को भी सेवा करने का अवसर मिल जाए! ये अवैध उस इलाके में चोरी छुपे ही सही मगर सब्जी भाजी की तरह उपलब्ध थे!

इन तकनीकी संस्थान में जो गुटबंदी व्याप्त थी उसका अपना समाजशास्त्र था, अलग समाजशास्त्र था। इस समाजशास्त्र को जानने के लिए कुछ डेटाबेस की जरूरत होगी। कॉलेज के इन गुटों को अपने-अपने बाहरी हित समूह से भी अवलंब मिलता था। इलाके में चतुर्दिक 'भू' धातु का वर्चस्व था। इस प्रभाव में छात्रों के स्वर्ण गुट में भूमिहार लीड रोल में थे। पिछड़े गुट की नकेल शहर व आसपास के इलाके में प्रभावकारी दखल रखने वाले पासवान (दुसाध) छात्रों के हाथों में थी। दरोगवा का आकलन था और यह सही आकलन था कि संगठित आक्रामक और मनबढ़ू स्वर्ण गुट के बरअक्स बहुजन खेमा काफी कमजोर था और बिखरा-बिखरा भी। और इसका एक बड़ा कारण स्वर्ण-अवर्ण छात्रों की परिवेशगत और आर्थिक पृष्ठभूमि में बड़ी खाई होना भी था। बहुजन गुट महज सवर्णों के आक्रामक रवैया के प्रतिक्रिया स्वरूप आत्मरक्षार्थ उभरा था। बहुजन गुट के जो इने-गिने शिक्षक-कर्मचारी थे वे गुटीय सहानुभूति रखने के बावजूद किसी पचड़े में नहीं पड़ना चाहते थे, खुलकर सामने आने से डरते थे। दलित प्राध्यापक और कर्मचारी तो खैर, वहां कोई था ही नहीं। स्वर्ण शिक्षक एवं कर्मियों तथा स्थानीय बदमाशों की शह पाकर स्वर्ण गुट का बेजा वर्चस्व था वहां। ये लोग दलित-पिछड़े तबके के छात्रों पर हमेशा रौब गांठने और नीचा दिखाने की ताक में रहते थे।

'फूट डालो और राज करो' के शासन तंत्र को अंग्रेजों की आमद कौन कहता है? धर्म और जाति भेद के गंदे परनाले में गहरे धंसे हमारे सामंती ब्राह्मणवादी मानस समाज का प्रभुत्वशाली तबका तो हज़ारों वर्षों से हमें बांटता आया है। विगत और वर्तमान के हमारे सारे देवी-देवता, धर्मपुरुष-महापुरुष, बुद्धिजीवी-मनीषी जनों के लिए भी इस चुनौती से पार पाना संभव नहीं हुआ। अभी हमारे बिहारी समाज में स्वर्ण वर्ग, खासकर 'भू' तत्व इस नीति आयोजन में सर्वाधिक सफल हैं। दरोगवा को इस कूटनीति का सबसे बड़ा पहला प्रत्यक्ष नजारा कॉलेज के पहले दिन के पहले पीरियड में ही मिल गया। कॉलेज के पहले दिन क्लास करने का हर छात्र की तरह उसे भी बेसब्री से इंतजार था। उत्साहित-उल्लसित दरोगवा जब कक्षा के अंदर दाखिल हुआ तो ब्लैक बोर्ड पर कुछ मोटे-मोटे हर्फ स्वागत करते मिले - 'आगे की बेंच पर केवल एफसी. ही बैठेगा। कोई बी.सी. नहीं बैठेगा। जो इस बात का उल्लंघन करेगा उसके साथ बुरा होगा।' जाति प्रपंच या जाति दंश से दूर रहने के अभ्यासी (!) पाठक गण यह जान लें कि एफसी. मतलब फॉरवर्ड कास्ट होता है और बी.सी. माने बैकवर्ड कास्ट। ये शब्द कैंपस में इतने चलते थे जितने कि बिजी रोड पर गाड़ी-घोड़े! कथित विद्या देवी, सरस्वती के 'साक्षात' मंदिर के गर्भ-गृह में यह अलबेला चेतावनी-आदेश पढ़कर एक क्षण को दरोगवा भकुआ गया। उसे लगा कि वह एकलव्य है और उसका अंगूठा काटने की तैयारी चल रही है। उसे लगा कि कोई गर्म शीशा पिघलाकर उसके कर्ण-छिद्रों को भरा जा रहा है। ऐसे ही कई विचार उसके दिमाग को झंकृत कर रहे थे कि तभी किसी ने पीछे से उसे धक्का दिया तो उसकी तंद्रा टूटी। धक्के की तरफ सिर मोड़ कर ताका। धक्का मारने वाला उसकी बगल में बैठा था, उसने कंधे से धक्का दिया था, और, दरोगवा की ओर देख कर खीं खीं कर

हंसते हुए मुंडी और, कड़क आंखों के इशारे से पीछे जा कर बैठने का इशारा किया था। जबकि वह तो ब्लैकबोर्ड पर लिखी इबारत पढ़कर पीछे की बेंच पर बैठने जाने वाला ही था, धक्के ने उसे सेटबैक देने के साथ उसके कदमों को बैक बेंच की तरफ खींचने में कैटेलिस्ट का काम किया था। दरोगवा ने फौरन अंतिम बेंच की राह पकड़ी। कुछ देर पहले जो रोमांच, जो उत्साहातिरेक उसको आंदोलित कर रहा था वह अब तक काफूर हो चुका था। अंतिम बेंच पर जा बैठने के बाद भी उसके हाथ-पांव थरथरा रहे थे। यह श्याम पट पर दर्ज़ किया गया 'मानीखेज़' आलेख शायद जांच भी था, बहुजन वर्ग के छात्रों की औकात की। घटनाक्रम के बीच, एक औसत से भी काफी कम, कोई पौने पांच फीट का श्यामपटवर्णी छात्र, जो कसरती बदन का था और सफारी सूट में था, कमरे में दाखिल हुआ था। वह श्यामपट्ट पर लिखे उन चेतावनी के शब्दों पर नज़र डालते हुए प्रथम बेंच के बीचोंबीच में खैनी मलते हुए जा बैठा। उसने सरसरी निगाह से अगल बगल बैठे छात्रों को देखा और बैठने के मिनट के भीतर ही उठकर सधे कदमों से सैनिक की भांति ब्लैकबोर्ड की तरफ बढ़ चला। इस बीच उसने खैनी की तालें ठोंक कर और उसे मुंह से फूंक कर गर्दा रहित कर अपने निचले ओंठ और दंतपंक्ति के बीच दाब लिया था। दरोगवा को लगा कि वे कदम सीताराम पासवान के न होकर मिथकीय अंगद के पांव हैं। जिनकी यह पहली घण्टी थी उन प्राध्यापक महोदय का पधारना अभी बाक़ी था। प्रोफेसर की टेबल पर रखी खल्ली और डस्टर को सीताराम ने उठाया और एक गहरी, हर चेहरे को पढ़ती निगाहें क्लास में उपस्थित सारे छात्रों की ओर डालते हुए ब्लैकबोर्ड की तरफ़ मुखातिब हुआ और चेतावनी की लोकतंत्रमर्दक इबारत को मिटाकर उसकी जगह खूब बड़े-बड़े हर्फों में लिख डाला- 'अगली बेंच पर बी.सी. भी बैठेगा, जो आगे आएगा वह बैठेगा। है कोई माई का लाल जो रोक सके?' दरोगवा का चेहरा अब फिर से हरा हो गया था। उसे नई इबारत लिखने वाले सीताराम के खल्ली-डस्टर थामे हाथ राम कथा के बाहुबली पात्र हनुमान की गदा से प्रतीत हुए। कुछ पल को क्लास में पिन ड्रॉप शांति व्याप्त रही। एकदम मरघट सा निःशब्द-स्तब्ध था क्लास कि प्रोफेसर की एंट्री हुई। इस आगमन से शांत झील में पड़े पत्थर का प्रभाव हुआ। शिक्षक ने भावशून्य रहकर ब्लैकबोर्ड पर लिखी इबारत मिटा दी। कोई पूछताछ भी न की इस बाबत। उसकी नजरों में शायद, कुछ भी अस्वाभाविक नहीं हुआ था। और इस तरह से फ़र्स्ट ईयर के फ़र्स्ट पीरियड में ही एस्टीमेटिंग के इस क्लास से जैसे कॉलेज के पूत के पांव पालने में दिखने का एक अच्छा-खासा एस्टीमेट हमारे कथानायक दरोगवा को मिल गया था!

अंतिम घंटी के बाद प्रतिपक्षी धड़े का एक छात्र परिचित सा मुस्कान बिखेरने की कोशिश करता हुआ सीताराम से मिला था, अकेले में। उसने दोस्ती का हाथ भी बढ़ाया था आगे, पर ऐन वक्त पर दाहिने हाथ से अपना कान खुजाने लगा था सीताराम। उसके कानों को फुसफुसाया मिली थी, 'सीताराम भाई, हमारा-तुम्हारा भला क्या बैर? तुम चाहे जहां बैठो, बस, हमारा आदमी बन कर रहो। इसमें तुम्हारा भी फायदा है और हमारा भी।' उसके दाहिने कंधे पर अपना बायां हाथ रखते हुए उसने अपना कहना जारी रखा था, 'तुमसे बस, एक विनती है कि आगे और कौन-कौन बैठेगा, उसकी फिक्र तुम मत करो। तय करना हमारे जिम्मे रहने दो। हां, अगर, तुम्हारा कोई एकाध और दोस्त आगे बैठना चाहे तो भी कोई दिक़्क़त नहीं।' सीताराम ने अपने कंधे को झटक उसके हाथ से पीछा छुड़ा लिया था। सीताराम अपने हस्ताक्षरों से सरेआम दर्ज बुलन्द इबारत पर कोई समझौता करने को तैयार नहीं हुआ। वैसे भी, सीताराम की इबारत में एक प्रजातांत्रिक स्पेस था- 'अगली बेंच पर बी.सी. भी बैठेंगे...।'

सीताराम पासवान ने कॉलेज में तो जीत का झंडा गाड़ दिया, पर चित्त-पक्ष तो जीतने का आदी था, हार को देर तक अपने घर टिकने देने की परम्परा नहीं थी उसके यहां; साम-दाम-दण्ड-भेद से विजय पाने की परंपरा थी यह। पहले दांव में पटखनी पाया यह पक्ष अब आगे की रणनीति और व्यूहरचना पर काम कर रहा था। वह पछाड़ खाने को हरगिज तैयार न था। अपने सीनियर्स और 'अपने' शिक्षकों के अनुभवों से लाभ लेने का सुलभ विकल्प अभी बाकी था। मंथनोपरांत कक्षा में टंटा पसारने, वर्चस्व साबित करने का विचार आक्रमणकारी पक्ष ने तत्काल भले ही त्याग दिया था लेकिन, वर्चस्व स्थापित करने के उसके पास अन्य विकल्प मौजूद थे जो उनके सीनियरों के अनुभव-प्रसूत थे और नए शिकार के ऊपर आजमाए जाने शेष थे। वो कहते हैं न, कुत्ते की दुम कभी सीधी नहीं होती।

और, एक दिन इन बिगड़ैल स्वर्णों का कहर दरोगवा पर ही बरप गया। अपनी कमीनगी का 'आदर्श' नमूना पेश करते हुए इन उद्दण्ड छात्रों के एक झुंड ने बेबात ही इस निहायत सुशील छात्र, दरोगवा को अकेले पाकर कैंपस में ही लप्पड़-थप्पड़ और जूतमपैजार कर दुर्गत बना दी। इस क्रम में उसकी पैंट-शर्ट के चीथड़े-चिथड़े कर डाले थे जालिमों ने। स्वर्ण-इल्जाम के शब्द थे, 'अबे डोमवा, तूने हमें आते देखा तो रास्ता क्यों नहीं छोड़ा? अपनी हरिजनी औकात कैसे भूल गए तुम? खैर' तुम्हारी इस गलती और दुस्साहस की हम इतनी ही सजा दे रहे हैं आज; आइंदा, होश में रहना और संभल कर चलना, नहीं तो बेटे तेरी खैर नहीं।' इस बीच मां-बहन की मनभर गालियों से दरोगवा के समस्त कुल-खानदान को उन्होंने ताड़ दिया था सो अलग। एक लात पेट में जड़ते हुए एक की टिप्पणी आई, 'मादरचो..., देखो तो, नाम क्या है इस गीदड़ का, दरोगा! हुंह! बाप चमार बेटा दिलीप कुमार!' चप्पल सूंघाते हुए दूसरे को रचनात्मक व्यंग्योक्ति सूझी- 'अरे, ई सढ़वा ते डोम हउ न! तनिक कहवतबा के ठीक करके अइसे बोल, 'बाप डोमार अउर बेटा दिलीप कुमार!' और, वर्ण-विषैले ठहाकों से वातावरण गूंज उठा था। संभव है, दरोगवा पक्ष के भी दूसरे किसी ने इस घटना को देखा-सुना हो, पर हाथ जलाने कौन आता!

दरोगवा जब रोते-कराहते उसी नुचे-फटे कपड़ों में प्रिंसिपल के पास अपनी फरियाद लेकर पहुंचा तो उसके साथ क्या कुछ घटा था, उसकी मलिन-मर्दित देह-दशा ही साफ बता रही थी।

प्रिंसिपल 'भू' धातु का बना था। पास के ही एक कुख्यात भू-धातु बहुल गांव का बाशिंदा था वह। उसके एक सहोदर भाई का बाहुबली ठेकेदार होने का इलाके में डंका बजता था। प्रिंसिपल भी उसका सुयोग्य भाई होने की हैसियत और योग्यता रखता था। उसने पहले तो दरोगवा का पूरा बायोडेटा मन-ही-मन स्मरण किया। फिर कोई सहानुभूति दिखाने की बजाय जमकर उसे कोसा और डांट पिलाई। उस एकलव्य को अपना द्रोणाचार्यीय गुरु धर्म निभाते हुए प्रिंसिपल ने कुछ यूँ बेइज्जती वाली प्रशंसा करते हुए समझाया, 'अरे दरोगवा, तू तो बड़ा सुधुआ लड़का था रे, और पढ़ने में तेज भी। लेकिन एकबैक नमरी बदमाश कैसे बन गया तू? बड़ा भितरघुन्ना निकला रे तू! सुनते हैं, आजकल सबसे मारपीट किये चलते हो? अभी कुछ लड़के आए थे मेरे पास, तुम्हारा सारा किस्सा बता गये हैं।' प्रिंसिपल का उपदेश जारी था, 'कहां तो तुम्हारे गरीब मां-बाप अपना पेट काटकर तुम्हें लिखने-पढ़ने भेजते हैं और तुम लोग हो कि झगड़ा-फसाद बेसाहते चलते हो।' 'देख डोमवा, अपन औकाते में रह। बेसी लबरधोधो में मत रह, न ते बर्बाद हो जएबे। सहकर रहना सीख। सहकर रहबे ते पढ़-लिख सकबे अउर अप्पन गवार मां-बाप अउर सड़ल-गलल खानदान के उद्धार करबे!', उपदेश के अंतिम चरण पर लोकल हिंदी भाषा के प्रभाव में सन गये और साधुमन हो गए प्रिंसिपल का खास जोर था, 'और हां, सुन दरोगवा! उ लरिका सबसे उलझे के बेवकूफी आगे भी मते करिहे! ऊ सब आग है आग! लपट-लपेट में पड़बे ते झुलस जैबे!' 'ई भी याद रख बुरचोंथू, सीसा हो के पत्थर से टकराए के जुर्रत करबे ते चूर-चूर हो जएबे।', सच्चाई उगलते-उगलते प्रिंसिपल की भाषा कुछ अधिक ही ओजपूर्ण और 'लोकल' हो गई थी। दिल की बात जुबान पर लाते हुए कई बार यह लोकल टच बेसाख्ता आ भी जाता है!

दरोगवा की याचनामय आंसू से भीगी आंखें अभी भी किसी चामत्कारिक 'वर' पाने की आशा में प्रिंसिपल की ओर टंगी थीं। गुरु पद में विश्वास बचा था गोया! इधर, प्रिंसिपल के अंदर का खूंखार ब्राह्मणवाद अपने नाखून और दांतों को और धारदार बना रहा था। वह अपना सारा गुस्सा, नफ़रत और तिरस्कार भाव संचित कर चीख पड़ा- 'अबे बेहूदा बकलंड डोमवा! टुकुर-टुकुर मुंह क्या ताकता है मेरा और ई घड़ियाली आंसू काहे बहाता है। हरामजादा, भागता है यहां से या दूं खींच के?'

अगले वर्ष से दरोगवा का एक बड़ा आर्थिक सहारा, कॉलेज से मिलने वाला वजीफा भी रुक गया था।

एक गंगा है मां के अंदर

प्रभा कुमारी, रांची

सूरज का गोला जब माथे पर आकर अटक जाता। आम, अमरूद, कटहल के पत्तों की परछाइयां जब धूप से चमकती ओसारे को चित्रांकन से भर देते, हवाएं सरसराती कानों में सरगोशियां करती तब सांवली, सलोनी छवि पसीने से तर-बतर, गेट पर लटककर अपनी बड़ी बहन सोनम का इंतजार करती। अंगूठा चूसने से आगे के उपरी दो दांत थोड़ा बाहर निकल गए थे। घुंघराली काली लटें माथे से चिपकी रहती, छोटी-छोटी बातों पर आंखों से आंसू ऐसे ढलकते जैसे आंच के तपिश से पिघलकर मोम, खिलखिलाती तो घर आंगन फूलों से भर जाता। बहुत घुमक्कड़, दिन भर नाव की तरह इस कमरे से उस कमरे में डोलती रहती, डगर-मगर, डगर-मगर। रोज दोपहर अपनी बहन का स्कूल से आने का इंतजार करती, आने के बाद दोनों बहनों के शोर से पूरा बंगला चिड़ियों का घोंसला बन जाता।

गर्मी की छुट्टी शुरू होने पर छवि की मम्मी सबको हरिद्वार ले जाने की उद्घोषणा की। यह सुनने पर छवि के तो पर खुल गए। दोनों की यह पहली बड़ी रेल यात्रा थी और वे बेसब्री से आने वाले पल का इन्तजार कर रही थीं। मां सभी की जरूरत की चीजों की पैंकिंग करने में व्यस्त थी, सोनम-छवि उनकी मदद करने में।

जाने वाले दिन मां, सोनम, छवि, नाना-नानी सभी प्लेटफार्म के भीड़-भाड़ को पार करते ट्रेन में बैठे, फिर तो दोनों बहनों के सामने एक नई ही दुनिया खुल गयी। छुक-छुक, छुक-छुक करती भागती ट्रेन, छुक-छुक, छुक-छुक पों...। चारों तरफ लोग ही लोग बैठे, लेटे, खड़े, पढ़ते, बाहर ताकते, बातें करते, खाते-पीते, ट्रेन की कंपन पर हिलते-डोलते। बाहर का नजारा तो और आश्चर्यजनक। कभी बकरियों का झुण्ड नजर आता, पल में फिर गायब। गांव, लड़की, नहर, किनारा, बकरी, घोड़ा, गाय, बैल, बड़ी इमारतें, खेत-खलिहान, आम का बगीचा सभी उलटी दिशा में भाग रहे हैं। 'मम्मी, देखो दूल्हा-दुल्हन। दुल्हन क्यों घूंघट की है, दूल्हा क्यों नहीं? मम्मी यह इतना बड़ा दाढ़ी क्यों रखे हैं? कैसा भयानक लगता है। इस औरत ने काला बुरका क्यों ओढ़ रखा है? इसे गर्मी नहीं लगती?' छवि पूछे जा रही थी।

बुरके के अन्दर से गोल-गोल घूमती आंखों को दोनों बड़ी कौतूहल से देखती, काले पानी में तैरती दो मछलियां। मां अपनी भोली बेटियों को कैसे समझाए कि कामुक निगाहों वाले शख्स को दोजख में गिरने से बचाने के लिए सारी औरतों की कमनीय काया को काले आवरण से ढक कर रखने का हुक्म अल्लाहताला के रहनुमाओं ने सुनाया है। औरतों को यह सवाल करने का भी हक नहीं कि सजा कामुक मर्दों को मिलनी चाहिए, जिनकी कामुक निगाहों से उनके कपड़े ही नहीं आत्मा भी तार-तार है, या बेगुनाह औरतों को? 'पर-पुरुषों के गठीले तन को देख बुरके के अंदर से झांकती मछलियां विचलित हो जाएं तो?' सोनम-छवि के पास जिज्ञासाओं का खजाना था, जिसमें से एक-एक कर वे निकालती जातीं और मम्मी को थमाते जाती। कुछ के उत्तर मिलते, कुछ अनुत्तरित रह जाते।

दौड़ती-भागती हिचकोलें खाती ट्रेन इतनी जिन्दगियों को ढोती आखिरी पड़ाव पर आकर थम गई। जैसे दौड़ती-भागती जिन्दगी की आंखे मुंद रहीं हों। मिनटों में ट्रेन खाली। एक सन्नाटा, शायद हर जिंदगी अपने पीछे एक रिक्तियां छोड़ जाती है। मम्मी सबको लेकर होटल पहुंची। सूरज के साथ हीं वे सब भी थक गए थे। उधर सूरज के चेहरे पर रात ने काली चादर डाली, इधर नींदिया ने उन सब पर।

सुबह दोनों बहनें उछलती-कूदती सबके साथ हर की पौड़ी पहुंची। गंगा को देखकर दोनों अचंभित। 'इतना पानी गंगा में कहां से आया?' घाट पर बैठकर छप-छप देर तक दोनों खेलती रहीं, बोली, 'गंगा कितनी ठंडी, कितनी भली है न मां।'

छोटे-बड़े, काले-गोरे, लुले-लंगड़े सभी उसमें गोते लगा रहे थे। पंडितों का समूह पूजा के लिए यजमान खोजने में व्यस्त था। छोटे-छोटे ढेर सारे मंदिर। शिवजी की विशाल मूर्ति, जटाजूट सर्प और चर्म से सुशोभित। मां ने सबको साथ ले जाकर गंगा पूजा की। स्वेत प्रस्तर की प्रतिमा, वात्सल्य और ममता से आप्लावित, बिल्कुल की तरह शांत, स्निग्ध।

दूसरे दिन नगर भ्रमण। सूरज अपनी प्रखर रश्मियों से सब को जला रहा था। पसीने और प्यास से सबका बुरा हाल। बस हिचकोलें खाती, हाफती-कांपती सबको मंदिर-मंदिर देवताओं के दर्शन कराती जा रही थी। एक भव्य मंदिर के सामने बस आकर रुक गयी। मंदिर था या श्वेत संगमरमर का महल, अनगिनत देवी-देवताओं की प्रस्तर प्रतिमाओं से सुशोभित छवि विस्फाटित नजरों से सबको निहारे जा रही थी। विचित्र मुखाकृति देहयष्टि असंख्य बेशकीमती आभूषणों और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित। 'भला भगवान तो जो चाहे वो कर सकते हैं। दादी कहती हैं कि उनकी इच्छा के बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता, फिर उनकी इच्छा के बिना दुष्टता कहां से आ जाती है, और उनको नाश करने के लिए उन्हें शस्त्रों की जरूरत क्यों पड़ती है? क्या बिना दुष्ट को नाश किए दुष्टता का नाश नहीं कर सकते?' छवि की समझ में कुछ भी नहीं आता वह तो चित्रलिखित सी निहारे जा रही थी सभी को। किसी देवता के तीन सर, किसी के कई हाथ, किसी का सूंढ़ निकला, कोई जीभ निकाले, कोई शेर पर सवार, कोई चूहा तो कोई नाग पर लेटा, फिर कहां रुकने वाली छवि, हाथ छुड़ा नदारद। एक-एक मूर्ति को निरखती-परखती जब मन भर गया तो पीछे देखी मां नहीं, नाना-नानी कोई नहीं। कहां गए सब? आंखों से आंसू-ढलकने लगे। जहां भी निगाहें जाती, आदमी-औरत बच्चे

और भगवान नजर आते। तरह-तरह के रंग-बिरंगे पोशाकों में। मम्मी का गोल लाल बिंदी वाला चेहरा कहीं नजर नहीं आता। घबराकर छवि इस द्वार से उस द्वार चक्कर लगाने लगी। 'हे मां वैष्णव मेरी मां को मिला दो।' मम्मी का कहा याद था, कभी घबराओ तो मां का नाम लेना। सबकी माता है। स्कूल में भी जब वह थक जाती। मां और घर की याद आती। तब भी मन हीं मन मां वैष्णव को याद करती। हाथ में मां वैष्णव का लॉकेट और मन में लाल-लाल बिन्दी वाला मां का चेहरा। यहां भी पुकार रही थी, 'मां'।

भूख-प्यास, डर और थकान से अधमरू हो चली थी। सुबकते-सुबकते सुन्दर लाल कपोल पर काले धब्बे उभर आये, पपोटे फूल गए, आंखें लाल हो गई, झालर वाला फ्रॉक मटमैला हो गया था। एक आदमी का ध्यान उस पर गया, गोद में लेकर चिल्लाया- ''किसकी बच्ची है?'' भीड़ का ध्यान एक बारगी उधर गया, फिर भीड़, भीड़ बन गई। शोरगुल और हर-हर गंगे की ध्वनि में मशगूल। एक बार पूरा चक्कर लगाकर वह उसे ले भीड़ से परे बैठ गया। उकडू बैठी सशंकित निगाहों से एक-एक को देखे जा रही थी। वस्तु, व्यक्ति भगवान सब एक लग रहे थे। उसकी दयनीय स्थिति से अनभिज्ञ, अनजान। तभी उसके नाना ढूंढते-ढूंढते वहां पहुंच गए। देखकर छवि हुमककर उनके गोद में दुबक गयी। उस सहृदय इंसान को कृतज्ञता और आशीषों से सराबोर कर नाना उसे मम्मी के पास ले आये। गोरैया के बच्चों की तरह छवि मम्मी की गोद में दुबक गयी। मां उसे दुलारती, पुचकारती छाती से चिपकाये रो रही थी। मां की आंखों में इतना पानी? क्या गंगा, मां में भी समाई हुई है? आंसू और मां

का परस्पर का रिश्ता है। उस समय भी वह कितना रोई थी जब किसी ने उसे निपुत्राहा कहा था। मन तो किया था उसका मुंह नोच लें, लिलबंदर। बड़ी होकर हजारों बेटा रोबोट बनाकर मां को दे दूंगी। विज्ञान में तो बहुत शक्ति है, देखो न एक दिन में इतनी लंबी दूरी पार कर गंगा मैया के पास आ गयी। रात में हजारों प्रज्वलित बल्बों से दिन सा उजाला रहता है। तपती गर्मी में भी वातानुकूलित कमरे में जाड़े सी ठंडक रहती है। इस राजमणि को भला विज्ञान की शक्ति क्या पता। खाली बेटा-बेटा करती रहती है। पति भी मारता है, बेटा भी, फिर भी कहती है, बेटा जनमाने से औरत एक बिश्रा ऊंची हो जाती है। दो-दो बेटा जनमाने के बाद भी मां से छोटी ही है। सुबह-सुबह आती है, आने के साथ उसका पति चालीसा शुरू हो जाता है। आठ-नौ बजे आएगी तो भी भूखे ही आएगी। उसके खाने से पूरा भात जूठा हो जाता है। फिर उसका पति खाने को छूता नहीं और दिल का भड़ास गाली, मार से निकालता है। इस कथा वाचन की श्रोता बनने के बाद मां उसका भोजन निर्विघ्न प्रतिदिन हमारे यहां करवाती है। कुछ दिन उसका पति पिछवाड़े के बागान में काम किया था। मां उसे थाली में सजाकर खाना भिजवाती। उससे तो बिना दूसरों को खिलाये खाया हीं नहीं जाता पर वह लौटा दिया। बाद में राजमणि बड़े दर्प से बोली कि वे लोग कुर्मी महतो हैं, छोटी जात द्वारा दिया खाना नहीं खाते। उसी दिन छवि को यह नई बात पता चली कि दया, प्रेम, संवेदना, सहानुभूति सभी गुण ऊंची जातियां के यहां गिरवी हैं, और छोटी जाति खासकर शुद्रों को इन गुणों के प्रदर्शन का अधिकार भी नहीं।

उस समय भी छवि देखी थी मां के अंदर गंगा को घुमड़ते हुए अब उसे गंगा में अथाह पानी का राज भी पता चल गया है। आखिर गंगा भी तो औरत हीं है न।

दूसरे दिन भी हर की पौड़ी में उतनी ही भीड़ थी दूर तक विस्तृत नीली गंगा, स्थिर बहती, बड़ी-छोटी नावें, आदमी और असबाब से लदी डोगियां। सूरज सातवें आसमान पर। धूप की बारिश से आप्लावित गंगा पिघले सोने सी प्रतीत हो रही थी। लहरे छवि को आकर बार-बार आलोड़ रही थी। ठंडा-ठंडा पानी हु-हु-हु। छवि की मां 'आरती' अंजलि में पानी ले घूम रही थी। हर एक परिक्रमा के बाद पानी को गंगा में अर्पित करती फिर जल ले घूमती।

छवि सोच रही थी, पानी को पानी क्यों दे रही है मां?

आरती फिर पत्तल के दोने में जलता दीया फल-फूल डालकर गंगा की धारा में प्रवाहित कर दी। पत्तल का दोना दूर तक लहरों पर डोलता-तैरता रहा, फिर दूर जाकर डूब गया।

'गंगा की कौन जाति है? यह तुम्हारे हाथ का छुआ खा ली?' छवि पूछी।

कुछ दिन पहले की तो बात है। उस दिन देर से आई थी छवि। आते ही लिपट गई थी। मां से पूछी 'मां जाति क्या है? हमसे पूछा गया था, जो शेडयुल कास्ट और सेडयुल ट्राइब हैं, वो खड़े हो जाएं। मुझे नहीं पता था मैं वो क्या हूं तो नहीं खड़ी हुई पर सर बोले छवि तुम खड़ी हो तुम सेडयूल कास्ट हो। मैं खड़ी हो गयी, सब मुझे घूर-घूर कर देख रहे थे। सर भी मुझे कैसे देख रहे थे, उस तरह से तो बिल्कुल नहीं जैसे और सबको देखते हैं क्लास की सारी दोस्त मुझे छोड़ कर चली गईं।'

उस दिन छवि अकेले ही घर लौटी। डर भी लग रहा था। सहेलिया जा रही थीं आगे-आगे, चाहती तो लम्बे डग भर साथ हो लेती पर जो छोड़ गईं उनके क्या साथ होना। उसकी गति धीमी हो तो गई। दोस्त ओझल हो गए। छवि आराम से धीरे-धीरे चल रही थी। गाय, कुत्ता सभी से डरती एक-एक दुकान, घर पहचानती चली जा रही थी। मोड़ पर आकर भूल गई। इस मोड़ से मुड़ना है या अगले मोड़ से, पहले वाली मोड़ से मुड़ी पर रास्ता जाना पहचाना नहीं लगा, छवि का दिल धक-धक करने लगा। एक किराने का दुकान दिखा, आगे काउंटर पर चौकलेटों, टोफियों और नमकीनों के डब्बे तरतीब से सजे हुए थे। दुकान के आगे तख्ती टंगी थी। अटक-अटक कर पढ़ी, नारायण किराना की दुकान। इस नाम का दुकान तो रास्ते में नहीं, छवि सोंची, लौटी, फिर दूसरी मोड़ से मुड़ी। मोड़ के बाद कई छोटी-छोटी दुकाने थीं यही तो रोड है, छवि की जान में जान आई। इन दुकानों का जहां क्रम खत्म हो रहा था, वहां एक पोल था चारों तरफ से तारों से घिरा। आगे बड़ा सा कूड़े का ढेर। फटे जूते, प्लास्टिक के डिब्बे, पॉलिथीन की थैलियां, चीथेड़े, पंक्चर टायर, सड़े खाद्य पदार्थों का अम्बार और उन पर भिनभिनाती मक्खियां। अब घर यहां से दूर नहीं। रास्ता फिर दायें तरफ मुड़ा। मोड़ पर एक पान की दुकान थी। जिसके दोनों तरफ नीचे में लाल कथई पान की पीक का दागी जमीन पर बन गया था। पान खाने वाले धरती को क्यों पान खिलाते हैं। खरीदारों से घिरा पानवाला सब की फरमाईश पूरी करने में जुटा रहता। कोई जर्दा मांगता होता, कोई मगही पान कोई मसाला। उसके हाथ फुर्ती से चलते रहते। जितने भी खरीदने वाले सभी मर्द, क्यों नहीं पान खाती? छवि अक्सर सोचती। यहां से बिल्कुल सीधे चला गया था रास्ता। बीच में था शम्भु चाचा का किराना की दुकान। वहां खूब भीड़ रहती थी, छवि भी अक्सर वहां आती थी समान लेने। शम्भु चाचा की दुकान से पहले था एक कपड़े धोने वाले का घर, जिसके दरवाजे के दोनों तरफदो-तीन गधे बंधे रहते। कभी-कभी जब वो स्कूल जा रही होती तो गधे को कपड़े लादकर कहीं जाते देखती। उसका मालिक उनके बगल में उन्हें हिकु-हिकु करते जाता रहता। उसका घर छोटा था पर दरवाजे से अंदर के कपड़ों का जखीरा झांकते रहता, रंग-बिरंगे कोई सलमा सितारे लगे, कोई गोटे लगा, छोटे-बड़े, नये पुराने। दरवाजे से पीछे का आंगन और मिट्टी का बना घर भी झांकते रहता, बाहरी दुनिया से तालमेल बिठाने में असफल, शर्मिन्दा।

दादी जब एकादशी करती तो छवि को ले जाती साथ में, एक नदी जो अधिकतर समय सूखी रहती। वहां रेत पर पसारे हुए होते ढेर सारे कपड़े। कपड़े धोने वाले के देह का बदरंग कपड़ा वैसा हीं लगता जैसे उसका घर उस महल्ले के और सब घरों से।

'दादी वो इतना फट्या-पुराना कपड़ा क्यों पहने हैं?' छवि पूछती।

'वो गरीब है,' दादी का जबाब होता।

'क्यों तुम बोलती हो जो मेहनत करता है वह गरीब नहीं रहता।'

दादी के पास इसका जबाब नहीं होता।

एक दुकान के बाद दुर्गेश बाबू का घर आता बड़ा और शानदार। आगे बारादरी थी जो सफेद खम्बों से घिरी थी। ये घर अर्धचन्द्राकार में था। दिन में तो सन्नाटा रहता था। पर रात में वहां से तबलों और घंघरूओं की आवाज आती रहती। छवि के महल्ले का कोई भी बच्चा चौराहे के दुकान से कुछ खरीदने आता तो दरवाजे के पल्लों की झिर्री से झाकना नहीं भूलता। कुछ पतली लावण्यमयी छोटी सी काया किसी संगीत शिक्षक के निर्देशानुसार नाचती रहती। ता थई-थई तत घुंघरूओं से बंधे पांव कार्पेट पे ले लय से थिरकते रहते। बहुत कोशिश करने पर भी लड़की और कार्पेट के सिवा कुछ दिखता नहीं था। मंत्रमुग्ध से सारे बच्चे देखते रहते। जब घर का ध्यान कोई दिलाता तो भाग खड़े होते

एक दिन छवि मां को लाड़ जताती बोली 'मैं भी डांस सिखूंगी।'

मां- 'यहां कोई इसके लिए तैयार नहीं होगा।'

छवि- 'दुर्गेश बाबू की बेटी तो सीखती है।'

मां- 'वो ऊंची जाति की है।'

छवि- 'तो डांस ऊंची जाति के लोग सीखते हैं? तो आप लोग क्यों ऊंची जाति के हो?'

मां के पास इसका कोई जबाब नहीं होता।

दुर्गेश बाबू के बाद दो घर और फिर छवि के घर की गली। गली की शुरुआत में एक विशाल बरगद का पेड़।

छवि को देखते हीं कई बगुले फड़फड़ाकर उड़ गए।

बारिश के दिनों में जब खूब बारिश होती उस पेड़ के नीचे ढेर सारी, छोटी-छोटी मछलियां गिरी होती। गली के सारे बच्चे उन्हें चुनने के लिए टूट पड़ते। उजली, काली, भूरी, छोटी, कुछ थोड़ी बड़ी मछलियां। वे सब चुन-चुनकर लाते। उलट-पुलट कर देखते शायद किसी में जान बची हो, पर बगुले के चोंच से गिरी मछलियों में से किसी में जीवन के कोई लक्षण कभी नहीं मिले।

आज तो बहुत गर्मी थी। पसीने से लथपथ छवि घर पहुंची। आते ही मां से लिपट गईं।

'मां हम लोग कौन जाति के सेडयूल कास्ट हैं? क्यों? हमको नहीं रहना सेडयूल कास्ट में। मेरी दोस्त छोड़कर चली गई। मैं रास्ता भूल गई थी। मां मेरी जाति बदल दो। जिसमें मेरी दोस्त हों। मुझे नहीं रहना इस जाति में।'

हिंदी पुस्तकालय

जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली

वित्त प्रभाग से फाइल अनुमोदित होकर आयी तो उसे देखते ही अग्निहोत्री की आँखों में चमक आ गयी। उन्होंने हर्षित नेत्रों से फाइल को देखा और संतोष की साँस ली। अग्निहोत्री को संतोष मिलता भी क्यों नहीं, इस फाइल को स्वीकृत करने में वित्त प्रभाग ने उनको अच्छी ख़ासी मानसिक कसरत करवा दी थी। सचिव के स्तर से प्रस्ताव को अनुमोदन दिए जाने के पश्चात भी वित्त प्रभाग महीनों से फाइल को आगे-पीछे कर रहा था। नई-नई आपत्तियाँ लगाकर कई बार वे फाइल को लौटा चुके थे। किंतु अग्निहोत्री ने भी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक आपत्ति का जवाब देकर वह फाइल वित्त प्रभाग को भेजते रहे। जब भी वित्त प्रभाग द्वारा कोई आपत्ति लगाकर फाइल वापस लौटायी जाती, अग्निहोत्री सब काम छोड़कर उसका जवाब तैयार करने में जुट जाते थे। वित्त प्रभाग की आपत्तियों का जवाब देने में अग्निहोत्री ने जितनी मेहनत की और जितना दिमाग़ लगाया, उतना उनको आवंटित सरकारी कामों को करने में उन्होंने शायद ही कभी किया हो। वरिष्ठ अधिकारी से कोई फाइल किसी आपत्ति, स्पष्टीकरण या व्याख्या के साथ, बल्कि यहाँ तक कि 'चर्चा करें' की टिप्पणी के साथ भी लौटकर आती थी तो अग्निहोत्री कभी उस अधिकारी को वह फाइल फिर से नहीं भेजते थे और न अधिकारी के पास चर्चा करने के लिए जाते थे। जैसा कि सरकारी कार्यालयों में प्राय: होता है, अधिकारी वर्ग का हिंदी के प्रति उपेक्षा भाव था। हिंदी की फाइलों को पढ़ना उनके लिए महत्त्वहीन और फालतू का काम जैसा होता था। इसलिए उनको हिंदी की किसी फाइल की कोई याद नहीं रहती थी। अग्निहोत्री हिंदी के प्रति अधिकारियों के इस उपेक्षा भाव को अच्छी तरह समझता था और इसका लाभ उठाते हुए फाइल को दबाकर बैठ जाता था तथा कुछ माह की समयावधि अथवा उस अधिकारी के स्थानांतरण के पश्चात उस विषय की नई फाइल खोलकर प्रस्तुत करता था। किंतु, उन्होंने इस फाइल को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए यथोचित जवाब के साथ वित्त प्रभाग को भिजवाने में कभी कोई देरी नहीं की थी। यह इस बात का सूचक था कि वह फाइल अग्निहोत्री के लिए विशेष महत्त्व रखती थी।

फाइल का अनुमोदित हो जाना अग्निहोत्री के लिए किसी बड़ी उपलब्धि से कम नहीं था। उसे लेकर उनके मन में कुछ इस तरह का भाव था जैसे उन्होंने कोई क़िला फतह कर लिया हो। इसके काफी दिन बाद तक वह अपनी सेवा के कुछ दोस्तों से बहुत गर्व के साथ यह कहते पाए जाते थे, 'फाइनेंस वाले अपने आप को बहुत समझते हैं और ऐसी-ऐसी आपत्तियाँ लगायीं कि पूछो मत। कोई और होता तो हथियार डाल देता। लेकिन मैंने हथियार नहीं डाले और ऐसा ठोककर लिखा कि फाइनेंस वालों के पास उसकी कोई काट नहीं थी। उन्होंने अंग्रेज़ी में आपत्ति लगाकर भेजी तो मैंने भी ठाँस कर अंग्रेज़ी में ही जवाब दिया। उनको अनुमोदन देना ही पड़ा।'

वित्त प्रभाग से पुस्तक ख़रीद के प्रस्ताव का अनुमोदन प्राप्त होते ही अग्निहोत्री ने अपने परिचित प्रकाशक रामनाथ पांडेय को फोन किया, 'पांडेय जी, कहाँ हैं आप?'

'नमस्ते अग्निहोत्री जी, कैसे हैं आप? बहुत दिन बाद याद किया है आपने। मैं अपने ऑफिस में ही हूँ। कहिए क्या सेवा कर सकता हूँ आपकी?'

'हाँ, कुछ काम है आपके लिए। मिल लीजिए समय निकालकर।'

'ठीक है अग्निहोत्री जी। ज़रूर मिलूँगा। लेकिन थोड़ा संकेत दे देंगे काम का तो बहुत अच्छा होगा। मैं उस हिसाब से तैयारी के साथ आ जाऊँगा।'

'हमें अपने विभाग के लिए हिंदी की पुस्तकें ख़रीदनी हैं।'

'कितना बजट है?'

'बजट अच्छा ख़ासा है। पाँच लाख रुपए की किताबें ख़रीदनी हैं इसी वित्तीय वर्ष के अंदर। इसलिए थोड़ी जल्दी करना, जितना भी जल्दी हो सके।'

'ऐसी बात है तो कल सुबह ही मैं आपके दर्शन करने आ जाता हूँ।'

'ठीक है। कल सुबह साढ़े दस-ग्यारह बजे तक आ जाइए ऑफिस में।'

'आजकल कहाँ पर हैं आप? मेरा मतलब है कौन से ऑफिस में हैं?'

'मैं वाणिज्य मंत्रालय में हूँ...भूल गए आप। बताया तो था आपको जब पिछली बार मिले थे भारती सदन में।'

'हाँ, बताया था आपने। यह तो याद है। लेकिन आप लोगों के ट्रांसफर होते रहते हैं ना, तो इसलिए पूछा कि कहीं किसी दूसरे विभाग में चले गए हों आप।'

'हाँ, ट्रांसफर तो होते हैं, लेकिन मैं अभी यहीं पर हूँ। आइए कल मिलते हैं।'

'ठीक है। मैं पहुँचता हूँ। कल सुबह आपके ऑफिस में।'

अगले दिन ठीक साढ़े दस बजे रामनाथ पांडेय माधव अग्निहोत्री के ऑफिस में था। रामनाथ पांडेय व्यावहारिक व्यक्ति था। कभी भी किसी भी ऑफिसर से मिलने जाता था तो ख़ाली हाथ बिलकुल भी नहीं जाता था। ऑफिसर के पद और व्यावसायिक काम की मात्रा के अनुसार शिष्टाचार-स्वरूप उनको भेंट करने के लिए डायरी, कलेंडर, पेन से लेकर किसी देवी-देवता की मूर्ति, टाई, वोयलेट, घड़ी आदि कुछ न कुछ अवश्य लेकर जाता था। यदि कभी समय की कमी अथवा किसी अन्य कारण से कोई तोहफा नहीं ख़रीद पाता था तो भी मिठाई का डिब्बा तो अवश्य ही लेकर जाता था। वह जानता था कि ब्राह्मण को मिठाई बहुत पसंद होती है। इसलिए माधव अग्निहोत्री को भेंट करने के लिए वह रास्ते में अग्रवाल स्वीट्स से एक किलो काजू कतली ले गया था।

माधव अग्निहोत्री के कमरे में प्रवेश करते ही वह मिठाई का डिब्बा उनकी ओर बढ़ाते हुए बोला, 'यह लीजिए पंडित जी।'

'अरे यह क्या?' रामनाथ पांडेय से मिठाई का डिब्बा अपने हाथों में पकड़ते हुए वह बोला।

'कुछ ख़ास नहीं। मिठाई है।'

'इसकी क्या ज़रूरत थी।' मिठाई के डिब्बे को अपने बायीं ओर हिफाजत से रखकर कुर्सी पर बैठते हुए अग्निहोत्री बोला।

'ज़रूरत की कोई बात नहीं है। बस, आ रहा था। रास्ते में अग्रवाल स्वीट्स की दुकान देखी तो लेता

आया। यह तो एक सामाजिकता होती है। कुछ काम मिल रहा है तो क्यों न मुँह मीठा करके ही शुरुआत की जाए। आप समझते ही हैं सब।'

'हाँ, वह तो है.. आप बड़े व्यावहारिक आदमी हैं पांडेय जी।' कहते हुए अग्निहोत्री ने इस औपचारिकता का अंत किया। तथा चपरासी को चाय लाने का आदेश देकर वह पांडेय की ओर देखते हुए बोला, 'हाँ, तो निकालकर, क्या लेकर आए हैं आप।'

रामनाथ पांडेय ने अपने थैले से सात-आठ प्रकाशकों की पुस्तक सूचियाँ निकालीं और अग्निहोत्री की ओर बढ़ाते हुए बोला, 'यह लीजिए।'

अग्निहोत्री ने उन सूचियों को हाथ में लेकर उलट-पुलटकर देखा और उनमें से एक सूची को रामनाथ पांडेय को दिखाते हुए बोला, 'यह कौन सा प्रकाशक है? पहली बार नाम पढ़ रहा हूँ इसका तो। कोई नया प्रकाशक लगता है।'

'कोई दूसरा नहीं है, अपना ही प्रकाशन है जी यह भी। अभी जल्दी में ही शुरू किया है, इसलिए आपको इसके बारे में पता नहीं होगा।'

'अच्छा, तो यह भी आपका प्रकाशन है।' अग्निहोत्री ने सुखद आश्चर्य से रामनाथ पांडेय की ओर देखा।

'जी हाँ, यह भी अपना ही है। आपके हाथों में जितनी भी पुस्तक सूचियाँ हैं, ये सब प्रकाशन अपने ही हैं। किसी दूसरे प्रकाशक की सूची इनमें नहीं है। आप इनमें से किसी भी सूची में से पुस्तकें चुन सकते हैं।'

'ठीक है। आप ये सूचियां छोड़ दीजिए। हम इनमें से पुस्तकों का चयन कर आपको सूचित कर देंगे। लेकिन यह देख लीजिए, इन सूचियों में शामिल सभी पुस्तकें आपके स्टॉक में उपलब्ध तो है ना। यदि कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं हो तो पहले ही बता दीजिए, हम उन पुस्तकों का चयन ही नहीं करेंगे।'

'आप कितनी-कितनी प्रतियाँ ख़रीदेंगे एक पुस्तक की?'

'पुस्तकें विभाग की लाइब्रेरी में ही रखी जाएँगी, इसलिए अधिक प्रतियाँ ख़रीदने की गुंजाइश नहीं है। प्रत्येक पुस्तक की केवल दो प्रतियाँ ही ख़रीदी जा सकेंगी।'

'तब कोई दिक़्क़त नहीं है। प्रत्येक पुस्तक की थोड़ी-थोड़ी प्रतियाँ हम अपने स्टॉक में अवश्य रखते हैं, ताकि कहीं से कोई माँग आए तो सप्लाई की जा सके। आप निश्चिन्त होकर पुस्तकों का चयन कर लें, पुस्तकें सप्लाई कर दी जाएँगी।'

'ठीक है। हम एक-दो दिन में ही आपको इन सूचियों में पुस्तकों पर निशान लगाकर सूचित कर देंगे। मार्च का महीना है, आप सप्लाई जल्दी कर दीजिएगा ताकि 30 नवंबर तक बिल बन जाए। 30 नवंबर के प्रेशर में इस तरह के काम जल्दी हो जाते हैं। बाद में चीज़ें लटक जाती हैं।'

'आप चिंता मत करो अग्निहोत्री साहब। पहले भी जब कभी आपने आदेश दिया है, हमने तुरंत सप्लाई की है। इस बार भी वैसा ही होगा। आप हमें निशान लगाकर सूचियाँ दीजिए, हम दो दिन के अंदर सप्लाई कर देंगे। आखिर हम भी तो चाहेंगे कि जल्दी से भुगतान हो जाए। आपकी सेवा पानी भी तो करनी है।'

'तो क्या हमें तब तक इंतज़ार कराने का इरादा है आपका? आपके पास क्या कमी है? मुझे पहले ही दे दीजिए मेरा तीस प्रतिशत।'

'पच्चीस प्रतिशत चलता है, और वह हम पहले की तरह आपको ख़ुशी से देंगे। तीस प्रतिशत की नयी बात मत कीजिए, कोई नयी डीलिंग नहीं हो रही है आपसे।'

'देखिए पहले ऑर्डर छोटे होते थे, लेकिन इस बार ऑर्डर बड़ा है। आप भी जानते हैं और हम भी जानते हैं, पुस्तकों पर छपे मूल्य का लगभग दस प्रतिशत ख़र्चा आता है पुस्तकों के मुद्रण पर। बाक़ी सारा मुनाफ़ा है आपका।'

'अजी इतना कहाँ...आजकल महंगाई बढ़ गयी है ना तो काग़ज़ से लेकर टाइपिंग, छपाई, बाइंडिंग आदि सब महँगा हो गया है। लेखक भी रॉयल्टी माँगते हैं।'

'हमको यह पहाड़ा मत पढ़ाइए पांडेय जी। सब जानते हैं हम भी। महँगाई बढ़ गयी है तो आपने भी तो पुस्तकों के मूल्य बढ़ा दिए हैं। औसत तो वही रहा ना। बल्कि महँगाई की तुलना में आप लोगों ने पुस्तकों के दाम ज़्यादा बढ़ा दिए हैं। इसमें आपका मुनाफा बढ़ा ही है। इसलिए तीस प्रतिशत आपसे बहुत मुनासिब ही कहा है मैंने, नहीं तो पैंतीस-चालीस प्रतिशत तक चल रहा है आजकल। हमें भी सब पता चलता रहता है।'

'अजी, इतना रेट कहाँ है, इतना कहीं नहीं है। लेकिन ख़ैर, आपसे पुराने सम्बन्ध हैं, आपसे क्या सोदेबाज़ी करना। आप नहीं मानते हैं तो ठीक है, तीस प्रतिशत दे देंगे आपको। आप एक काम कीजिए, पुस्तक सूचियों में निशान लगाने का कष्ट आप मत कीजिए। मैं खुद कर लूँगा यह काम और आपको किताबें सप्लाई कर दूँगा। आप बस भुगतान जल्दी से करवा दीजिएगा।'

'पुराने सम्बन्ध हैं तभी तो किसी और को न देकर आपको ही ऑर्डर दे रहे हैं हम। हम भी तो इस बात का ध्यान रखते हैं कि दो पैसे का फ़ायदा हो तो अपने आदमी को ही हो। भुगतान की ओर से आप बेफिक्र रहें। आप पुस्तकें सप्लाई करके बिल दीजिए। एक महीने के अंदर भुगतान हो जाएगा आपको।'

'तो ठीक है, मुझे इजाज़त दीजिए। मैं चलकर आपके काम पर जुटता हूँ।' कहकर रामनाथ पांडेय उठ खड़ा हुआ। अग्निहोत्री भी अपनी कुर्सी से खड़ा हो गया। दोनों ने गर्मजोशी से हाथ मिलाया और उसके ऑफिस से बाहर हो गया। विदा ली।

रामनाथ पांडेय के जाते ही माधव अग्निहोत्री को इस बात का ख़याल आया कि पुस्तकें तो आ जाएँगी लेकिन उन्हें रखा कहाँ जाएगा। पुस्तकें विभाग के पुस्तकालय से अलग हिंदी पुस्तकालय के लिए ख़रीदी गयी थी। हालाँकि हिंदी पुस्तकालय की स्थापना का कोई प्रशासनिक निर्णय या आदेश नहीं था। न उसके लिए कोई स्टाफ या स्थान था। किंतु अग्निहोत्री ने हिंदी पुस्तकालय के लिए पुस्तकों की ख़रीद कर ली थी। इन पुस्तकों की ख़रीद का आधार संसदीय राजभाषा समिति की सिफारिश पर राष्ट्रपति का यह आदेश था कि पुस्तकालय के कुल बजट का पचास प्रतिशत हिंदी पुस्तकों की ख़रीद पर ख़र्च किया जाए। संसदीय समिति जिस कार्यालय में भी सरकार की राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की स्थिति का निरीक्षण करने के लिए जाती थी, वहाँ पर अन्य बातों के साथ-साथ, इस बारे में भी अवश्य पूछती थी कि हिंदी पुस्तकों की ख़रीद नियमानुसार है अथवा नहीं है। जिन कार्यालयों में इसमें कमी पायी जाती थी समिति के सदस्य उस कार्यालय के अध्यक्ष अथवा उच्च अधिकारियों से इस कमी के बारे में जवाब तलब करते थे और उनसे आश्वासन लेते थे कि

जल्दी से जल्दी वे निर्धारित अनुपात में हिंदी पुस्तकों की ख़रीद कर समिति को सूचित कर देंगे। यह अवधि अधिकतम छः माह की थी। वरिष्ठ अधिकारी, अपने अधीनस्थ कार्मिकों के सामने संसदीय समिति के सदस्यों की तल्ख़ टिप्पणियों से स्वयं को अपमानित महसूस करते थे। इसलिए वे हिंदी के कार्यान्वयन से सम्बंधित फाइलों को प्रायः बिना किसी अधिक पूछताछ या अवरोध के, अनुमोदित कर देते थे। राघवेंद्र अग्निहोत्री ने भी संसदीय राजभाषा समिति के आदेशों के पालन की अनिवार्यता का उल्लेख करते हुए ही पाँच लाख रुपए मूल्य की हिंदी पुस्तकों की ख़रीद के प्रस्ताव को अनुमोदित करवा लिया था।

जिन किताबों की कहीं कोई माँग नहीं थी या बहुत कम माँग थी और लम्बे समय से स्टॉक में रखी धूल खा रही थी, दूसरे शब्दों में जो पुस्तकें उसके लिए कूड़ा थीं, रामनाथ पांडेय ने ऐसी सब पुस्तकों की पाँच-पाँच प्रतियाँ निकलवायीं और अग्निहोत्री का आदेश पूरा कर दिया। दो दिन के अंदर उसने किताबें सप्लाई करके बिल अग्निहोत्री के हाथों में थमा दिया। अग्निहोत्री ने बिना कोई देर किए बिल को भुगतान के लिए वित्त अनुभाग को भिजवा दिया था।

रामनाथ पांडेय से पुस्तक सप्लाई की बात हो जाने के पश्चात अग्निहोत्री ने इन पुस्तकों को पुस्तकालय में रखने के लिए पुस्तकालय को नोट लिखकर भेजा था, किंतु उन्होंने पुस्तकों को लेने से इंकार कर दिया। पुस्तकालयाध्यक्ष सोमेंद्र शुक्ला अग्निहोत्री से इस बात के लिए बहुत खफा था कि उसने पुस्तकें स्वयं क्यों ख़रीदीं। पुस्तकों की ख़रीद और उनका रख-रखाव करना पुस्तकालय का काम है। अग्निहोत्री ने स्वयं पुस्तकें ख़रीदकर पुस्तकालय के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप किया था। एक दिन व्यक्तिगत बातचीत के दौरान उसने अग्निहोत्री से यह बात कह भी दी थी, 'जब पुस्तकें आपने ख़रीदी हैं तो उनका रख-रखाव भी आप करें। हम हमारे द्वारा ख़रीदी गयी पुस्तकों का ही हिसाब रखते हैं। उनके प्रति ही हमारी ज़िम्मेदारी है। आपके द्वारा ख़रीदी गयी पुस्तकों के प्रति हमारी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है।'

'पुस्तकें हमने किसी और उद्देश्य से नहीं, अपितु केवल इस कारण से ख़रीदी हैं क्योंकि सारी पुस्तकें हिंदी की हैं। तथा कार्मिकों द्वारा माँग की गयी पुस्तकें नहीं हैं। इनमें हिंदी में लिखी गयी विभिन्न विषयों की पुस्तकें हैं। आप लोगों को हिंदी की पुस्तकों का चयन करने में दिक़्क़त हो सकती थी। एक तरह से देखो तो हमने आपकी सहायता ही की है, हिंदी की पुस्तकें स्वयं ख़रीदकर।'

'लेकिन हमने तो नहीं कहा था आपसे कि हमें कोई दिक़्क़त आएगी, आप हमारी सहायता कीजिए। हमें हिंदी अच्छी तरह पढ़नी-लिखनी आती है। हिंदी साहित्य की जानकारी हमें भी है। हाँ, यह अवश्य हो सकता है कि आपको थोड़ा ज़्यादा ज्ञान होगा, हमें कुछ कम होगा। पुस्तकों की ख़रीद करना और उनका रख-रखाव करना हमारा काम है और हमें अपना काम करने में कभी कोई दिक़्क़त नहीं है। हमें कोई दिक़्क़त होती भी तो हम आपसे सहायता माँग लेते, लेकिन आपने तो हमारा अधिकार ही अपने हाथ में ले लिया।'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मेरे कहने का यह मतलब नहीं था। दरअसल बात यह है कि संसदीय राजभाषा समिति का एक आश्वासन लम्बित है काफी दिन से, हिंदी पुस्तकों की ख़रीद को लेकर। आश्वासन को पूरा करने की तारीख़ नज़दीक थी। समिति कभी भी विभाग का निरीक्षण करने के लिए आ सकती है। इसलिए यह एक बड़ा दबाव था हम पर कि जल्दी से जल्दी हिंदी की पुस्तकों की ख़रीद करके समिति को आश्वासन पूर्ति की रिपोर्ट भिजवायी जाए।'

'संसदीय समिति का दबाव होगा आप पर। हम कहाँ इंकार कर रहे हैं इससे। लेकिन हमने कब इंकार किया हिंदी की पुस्तकें ख़रीदने से। आपने हमसे कहा तो होता। आपने हमको नोट दिया होता इस सम्बंध में, हम आगे कार्रवाई करते उस पर। पुस्तकें ख़रीदने का प्रस्ताव स्वीकृत करवा भी लिया था तो उसे हमको भेज देते। हम पुस्तकें ख़रीदकर आपको सूचित कर देते और आप समिति को अपनी रिपोर्ट भेज सकते थे। लेकिन आपने तो हमें कुछ समझा ही नहीं और हमें इग्नोर करके ख़ुद ही पुस्तकें ख़रीद डाली और वह भी पूरे पाँच लाख की। यह मज़ा तो आपने मार लिया और अब किताबों को रखने की ज़िम्मेदारी की बात आयी है तो हमसे कह रहे हैं। सब कुछ तो आपके पास है, हम किस आधार पर अपने स्टॉक में लें उनको? अडिट को क्या दिखाएँगे हम?'

'हम ख़रीदी गयी पुस्तकों की सूची, बिल और सब काग़ज़ात आपको देंगे। आपको किसी तरह की कोई दिक़्क़त ही नहीं होगी।'

'नहीं जी, आपने ख़रीद की क्या प्रक्रिया अपनायी है, इतनी बड़ी ख़रीद की है टेंडर निकालकर फर्म का चयन किया है या वैसे ही किसी प्रकाशक से सम्पर्क कर उससे पुस्तकें मँगवा ली हैं आपने, हमें क्या पता। आपसे पुस्तकें लेकर यह सिर दर्द हम नहीं ले सकते। वैसे भी हमें तो पता चला है कि आपने विभाग में अलग से हिंदी पुस्तकालय खोलने का प्रस्ताव चलाया हुआ है और ये पुस्तकें भी उसी हिंदी पुस्तकालय के लिए ख़रीदी गयी हैं।'

'हां, कोशिश तो यही थी। संसदीय समिति भी चाहती है कि प्रत्येक कार्यालय में हिंदी की पुस्तकों की अधिकता हो ताकि लोग हिंदी में पुस्तकें पढ़ें और हिंदी का माहौल बने। सरकारी आदेश भी यही हैं। विभागों के पुस्तकालयों के लिए अपने बजट का पचास प्रतिशत हिंदी पुस्तकों की ख़रीद पर ख़र्च करना सम्भव नहीं हो रहा है। अपने यहाँ भी तो यही हाल है। आप कितनी कोशिश करते हैं लेकिन दस-पंद्रह प्रतिशत से अधिक आप भी कहाँ ख़र्च कर पाते हैं हिंदी पुस्तकों पर। यही सब देखकर अलग से हिंदी पुस्तकालय की स्थापना के लिए कोशिश की थी। इससे आपकी जवाबदेही भी कम हो जाती।'

'हमारी क्या जवाबदेही कम होगी? हम अपनी ओर से कुछ ख़रीदते ही नहीं हैं। हमारे पास तो विभिन्न अधिकारियों और अनुभागों से जिन पुस्तकों की माँग आती है उनकी ही ख़रीद करते हैं। हिंदी की पुस्तकें कम हैं या अधिक इसकी कोई जवाबदेही नहीं है हमारी।'

'चलो, मान लेते हैं आपकी बात, आप ऐसा कह रहे हैं तो। लेकिन विभाग की जवाबदेही तो है ही ना। और हम सब विभाग में हैं तो इस बारे में सोचना और कार्रवाई करना तो हमारी ज़िम्मेदारी बनती ही है।'

'यह बात प्रशासन को समझाइए न आप। संयुक्त सचिव के साथ तो आपकी अच्छी पटरी बैठती है और वह आपकी बात मानते भी हैं।'

'उनसे बात करके ही तो हिंदी पुस्तकालय की स्थापना का प्रस्ताव दिया था।'

'तब तो अच्छा है। कीजिए हिंदी पुस्तकालय की स्थापना। क्या दिक़्क़त है। हमसे क्यों चाहते हैं आप कि हिंदी पुस्तकालय की पुस्तकों को हम अपने पुस्तकालय में रखें?'

'क्योंकि प्रशासन में संयुक्त सचिव ही नहीं हैं, अन्य अधिकारी भी हैं। पता नहीं किन-किन नियम क़ायदों का हवाला देकर वे जब उलटी-पुलटी नोटिंग फाइल पर लिख देते हैं तो संयुक्त सचिव के भी तो हाथ बंध जाते हैं न। यही इस मामले में भी हो रहा है। संयुक्त सचिव तो सहमत हैं कि हिंदी पुस्तकालय स्थापित हो जाए। लेकिन नीचे के लोगों ने ऐसी अडंगी लगा दी है कि सारा मामला ही खटाई में पड़ गया है। इसीलिए आपसे अनुरोध कर रहे हैं कि आप इन पुस्तकों को अपने पुस्तकालय में रखवा लें। स्टॉक रजिस्टर में प्रविष्टि आदि के काम में सहायता के लिए मैं अपने स्टाफ़ में से आदमी दे दूँगा।'

'नहीं जी, आपने ये पुस्तकें ख़रीदी हैं। इनकी ज़िम्मेदारी आप ही सम्भालें और जवाबदेही भी आप ही लें। हम इन पुस्तकों को लाइब्रेरी में नहीं रख सकते।'

माधव अग्निहोत्री ने सोमेंद्र शुक्ला के साथ बैठकें और बातचीत करके तथा लिखित में अनुरोध भेजकर भी काफी कोशिश की, किंतु सोमेंद्र शुक्ला पुस्तकों को लेने के लिए सहमत नहीं हुआ। पुस्तकालय को पुस्तकें देने के अपने प्रयास में सफल नहीं होने पर अग्निहोत्री ने हिंदी अनुभाग में ही एक रजिस्टर बनवाया तथा एक कार्मिक को इस काम पर लगाया कि वह उन पुस्तकों का विवरण उस रजिस्टर में प्रविष्ट करे तथा उसे सुरक्षित रखे। हिंदी अनुभाग में कार्मिकों पर अनुवाद कार्य का वैसे ही बहुत बोझ था, अग्निहोत्री द्वारा एक कार्मिक को पुस्तकों के रख-रखाव का काम सौंप दिए जाने के कारण अन्य कार्मिकों पर कार्य का बोझ और अधिक बढ़ गया था और उनको कार्यालय समय

के पश्चात देर तक बैठकर काम करना पड़ता था। हिंदी अनुभाग के कार्मिकों ने अग्निहोत्री के समक्ष कई बार अपनी समस्या व्यक्त की और अनुरोध किया कि वह एक अतिरिक्त कार्मिक की व्यवस्था कराएँ। कार्मिक जब भी अग्निहोत्री से अपनी समस्या बताते वह हर बार कार्मिकों को चाय समोसा खिलाता और यह कहकर उनको शांत कर देता, 'मैं आप लोगों की समस्या समझता हूं। लेकिन याद रखिए कि आप लोग हिंदी के प्रति समर्पित हिंदी के सिपाही हैं। आप लोग दूसरे लोगों की तरह सरकारी नौकरी नहीं करते हैं, आप लोग सेवा करते हैं। आप लोग मिशनरी हैं। मिशनरी भावना से ही काम करो। आपको हिंदी सेवा के बहाने देश सेवा का एक शानदार अवसर मिला है, इस पर गर्व करो। सेवा भावना कष्ट नहीं देखती। वह त्याग और समर्पण के लिए प्रेरित करती है। आप लोग इस भावना से भरकर ही काम करें।' एक लम्बा देशभक्तिपूर्ण भाषण सा देने के पश्चात अंत में वह धीरे से कहता, 'मैं अतिरिक्त कार्मिक के लिए कोशिश कर रहा हूँ। जब तक नहीं आता है तब तक मिल-जुलकर काम को चलाते रहिए।'

रामनाथ पांडेय ने पुस्तकों को गत्ते के बक्सों में भरकर भिजवाया था। पुस्तकालय द्वारा इंकार कर दिए जाने के पश्चात अग्निहोत्री के पास इस बात के सिवाय कोई विकल्प नहीं था कि वह पुस्तकों को रखने की स्वयं ही कोई व्यवस्था करे। हिंदी अनुभाग या उनके अपने कक्ष में कहीं पर भी इतना स्थान नहीं था कि उन पुस्तकों को वहाँ पर रखवा सकते। अत: उन्होंने पुस्तकों से भरे उन बक्सों को अपने कमरे के बाहर कोरिडोर में रखवा लिया था। बिना किसी ताले-चाबी के खुले में रखे वे बक्से दो-चार दिन तक सुरक्षित रखे रहे। उसके पश्चात उन बक्सों में से पुस्तकें ग़ायब होने लगीं। फटे बक्सों में से पुस्तकें बाहर झाँकती दिखायी देती थी तथा कोरिडोर में से गुज़रने वाले पुस्तक प्रेमियों को अपनी ओर आकृष्ट करती थीं। ना कोई पूछताछ, ना कोई रोकटोक, जिसका मन करता वह बक्सों में से किताब उठाकर चलता बनता।

अग्निहोत्री यह बात अच्छी तरह समझता था कि कम से कम ऑडिट होने तक पुस्तकों और उनके रिकोर्ड का सुरक्षित रहना बहुत आवश्यक था। इसलिए पुस्तकों की सुरक्षा का प्रश्न उसके मस्तिष्क में रहता था। उसने भी जब किताबें ग़ायब होते देखीं तो उनको पुस्तकों की सुरक्षा की चिंता हुई। पुस्तकों की सुरक्षा के साथ रखने के लिए उन्होंने लोहे की पाँच सेल्फ़ ख़रीदने का प्रस्ताव प्रशासन को प्रस्तुत किया। संयुक्त सचिव उदार व्यक्ति थे और उनके साथ अग्निहोत्री के अच्छे सम्बन्ध थे। उन्होंने सेल्फ़ ख़रीदने के प्रस्ताव को अनुमोदित कर दिया। सेल्फ आ गयीं तो बक्सों में रखी पुस्तकों को उन सेल्फ़ के अंदर रखवाकर कोरिडोर में बक्सों के स्थान पर रखवा दिया गया। इन सभी सेल्फ़ की चाबी उन्होंने अपने-अपने निजी सहायक के पास रखवा दी थी। और उसे यह हिदायत भी दे दी थी कि कभी-कभी वह सेल्फ़ को चैक भी करता रहे। यदा-कदा वह सेल्फ को चैक कर लिया करता था।

किंतु इसके उपरांत कुछ दिन पश्चात सेल्फ़ से भी पुस्तकें ग़ायब होनी शुरू हो गयी। कई सेल्फ़ के ताले टूट गए थे। पुस्तकों की सुरक्षा किसी बंद कमरे में रखकर ही हो सकती थी। अग्निहोत्री ने प्रशासन से हिंदी पुस्तकालय के लिए एक कमरे की माँग की, किंतु प्रशासन द्वारा उसके अनुरोध को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया गया कि एक विभाग के अंदर दो पुस्तकालय नहीं हो सकते, और अलग से हिंदी पुस्तकालय खोलने का कोई सरकारी प्रावधान नहीं है। अग्निहोत्री के समक्ष यह एक बड़ा प्रश्न था कि पुस्तकों की सुरक्षा कैसे की जाए। पुस्तकों की सुरक्षा के लिए अग्निहोत्री द्वारा फिर से नया प्रस्ताव, बुक सेल्फ़ में लोहे की चेन और ताला लगाने का प्रशासन को दिया गया। प्रशासन के अधिकारी अग्निहोत्री द्वारा एक ही कार्य के लिए बार-बार नए प्रस्ताव देने से तंग आ गए थे। पुस्तकालय के बजाए हिंदी प्रभाग द्वारा पुस्तकों की ख़रीद से वे सहमत नहीं थे, किंतु एक तो अग्निहोत्री प्रस्ताव की नोटिंग इस तरह से करता था कि प्रस्ताव स्वीकृत नहीं होने अथवा स्वीकृति में विलम्ब के कारण होने वाली किसी क्षति का दायित्व प्रशासन पर आता था, न कि अग्निहोत्री पर। दूसरे, अग्निहोत्री के प्रति संयुक्त सचिव के नरम रुख को देखते हुए भी वे उसके प्रस्तावों को शीघ्रता से आगे बढ़ा देते थे। इसी दबाव में पुस्तकों की सभी सेल्फ में लोहे की मोटी चेन और ताले ख़रीदने के प्रस्ताव को भी बिना किसी बाधा के स्वीकृति मिल गयी थी।

ख़रीदी गयी हिंदी पुस्तकों को लेकर जब भी किसी तरह की कोई टिप्पणी होती अग्निहोत्री अत्यंत मासूमियत के साथ कहते, 'हिंदी के प्रति लोगों का यह रवैया ही हिंदी के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। देखो, यहाँ तो इतनी मेहनत करके हिंदी पुस्तकालय की स्थापना के लिए काम किया। पुस्तकें ख़रीदवाईं, और प्रशासन में बैठे हिंदी विरोधी लोग हिंदी पुस्तकालय के लिए जगह नहीं दे रहे हैं। जहाँ इस बात पर गर्व होना चाहिए था कि हमने हिंदी को बढ़ावा देने की दिशा में इतनी बड़ी पहल की है, वहाँ आलोचना हो रही है कि हमने पुस्तकें कैसे ख़रीदीं? क्यों ख़रीदीं। बताइए, क्या किया जाए ऐसे लोगों का? ऐसे नकारात्मक माहौल के कारण ही बहुत से लोग चाहते हुए भी हिंदी के प्रसार के लिए कोई पहल नहीं कर पाते हैं। हिंदी का प्रचार-प्रसार हमारा संवैधानिक और राष्ट्रीय दायित्व है। हिंदी के बल पर हमने स्वाधीनता प्राप्त की, हिंदी हम भारतीयों की राष्ट्रीय अस्मिता और गरिमा की प्रतीक है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने हिंदी के इस महत्त्व को समझा था। इसी के आधार पर भारतीय संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा बनाया था। राष्ट्र में यह हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। लेकिन अंग्रेजीदां क़िस्म लोगों को हिंदी के नाम से ही एलर्जी है। वे यह भूल रहे हैं कि हम हैं क्योंकि हिंदी थी। हिंदी की पुस्तकें यहाँ कोरिडोर में पड़ी हैं और वे एक कमरा तक नहीं दे रहे हैं। यह है हिंदी के नाम पर आज़ाद देश में हिंदी के प्रति प्रशासन में बैठे लोगों का प्रेम और दायित्व बोध।'

वह इतने प्रभावी ढंग से बोलता था कि लोग उसकी बात सुनते थे और उससे प्रभावित होते थे। हिंदी अधिकारी के साथ-साथ विभाग में उनकी छवि हिंदी के प्रेमी और पक्षधर के रूप में थी। हिंदी के प्रति सकारात्मक और उसमें रुचि रखने वाले बहुत से कार्मिकों की दृष्टि में वह एक हिंदी संत थे, जो हिंदी के प्रति समर्पित और उसके लिए जीता था और हिंदी का प्रसार जिसके जीवन का ध्येय और मिशन था।

पुस्तकों की ख़रीद को कई वर्ष हो गए थे। अब तक आधी पुस्तकें ग़ायब हो चुकी थीं। इस दौरान विभाग का ऑडिट हुआ तो ऑडिट टीम द्वारा पुस्तकों की ख़रीद की प्रक्रिया को ग़लत पाया गया। साथ ही भौतिक सत्यापन में पुस्तकें भी ख़रीद से कम पायी गयी। ऑडिट अधिकारी द्वारा इस सम्बंध में स्पष्टीकरण माँगा गया। अपने स्पष्टीकरण में अग्निहोत्री ने कहा कि पुस्तकों को रखने के लिए कमरा उपलब्ध नहीं होने के कारण कोरिडोर में रखना मजबूरी थी और वहाँ से पुस्तकें चोरी हुई। किंतु अग्निहोत्री द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण से ऑडिट अधिकारी संतुष्ट नहीं हुआ और उसने अपनी रिपोर्ट में इसका एक पैरा बनाया। तब से ऑडिट द्वारा कार्यालय का कई बार ऑडिट हुआ। प्रत्येक बार हिंदी पुस्तकों की ख़रीद में अनियमितता का बिंदु सामने आया। विभाग के पास अपने पूर्व में दिए गए जवाब को ही दोहराने के अलावा कुछ नहीं था।

सभी सेल्फ में लोहे की चेन और ताले लगा दिए गए। कई वर्षों तक सेल्फ़ में बंद वे हिंदी पुस्तकें वहीं कोरिडोर में पड़ी रहीं। नए मंत्री द्वारा कार्यालय का मुआयना किए जाने के कारण विभाग में हड़कम्प मचा और समस्त कार्यालय में स्वच्छता अभियान चला तो अन्य सामान के साथ-साथ कोरिडोर में रखी सभी अलमारियाँ और सेल्फ़ भी वहाँ से हटवाया गया। इस अभियान में हिंदी पुस्तकों से भरे बुक सेल्फ़ को भी कोरिडोर से उठाकर स्टोर रूम में रखवा दिया गया। इस बीच संयुक्त सचिव का स्थानांतरण हो गया। अग्निहोत्री भी सेवानिवृत्त हो गया। वर्षों तक सेल्फ़ में बंद वे पुस्तकें स्टोर में पड़ी रहीं। लेकिन वहाँ भी आखिर कब तक रहतीं। स्टोर में जब सामान का अंबार लग गया और नए और उपयोगी सामान को रखने के लिए भी जगह कम पड़ने लगी तो सामान्य नियम और प्रक्रिया के अनुसार पुराने और अनुपयोगी सामान को स्टोर से निकालकर कबाड़ी को बेचा गया। जंक लग चुकी लोहे, सेल्फ और उनमें भरी हिंदी पुस्तकालय की किताबें भी इस कबाड़ में शामिल थीं।

नियति का अभिशाप

यशोदा कुमारी, (उ.प्र.)

अतीत की स्मृतियों में खोई हुई नियति आज अपने वजूद के साथ बेहद खुश है। वह जानती है कि सही वक्त पर पिए गए कड़वे घूँट अक्सर ज़िंदगी का जायका मिठास में बदल दिया करते हैं। उसको अपने होने पर गर्व है। साथ ही वह इस बात से खुश है कि वह जो भी है इस स्वार्थी दुनिया से बहुत अलग है...।

बैठी-बैठी वह सोच रही है कि....वे भी क्या दिन थे... माँ के घर में सिर्फ प्रेम ही प्रेम था। यदि

वहाँ उसे कोई कुछ कहता भी था तो माँ हर बार उसी का पक्ष लिया करती थी। कभी-कभी उसके भाई कहा भी करते थे कि- 'जाए इतनों चौ पढ़ा रही हैं और इतनों पढ़ाके कहाँ भैजनों है जाए, करनौ तो चूल्हा-चौका ही है जाकू...।'

पर नियति की माँ उनको जवाब में अक्सर यही कहा करती कि-

'जब बाकौ मन है पढ़वै में तो चौ नहीं पढ़ाऊँ जाकू और वैसे भी कोई ग़लत काम तो न कर रही वो पढ़ ही तो रही है।'

इसके साथ ही साथ नियति के रिश्तेदारों को भी जैसे उसकी 'चिंता' होने लगी। वे जब उसके घर आते तो उसकी माँ को अक्सर कहते कि-

'लड़की जात है इतनौ पढ़ा रही है कहाँ भेजनी है और तू तो जाने ही कितनौ भी पढ़ा ले करनौ इनको चौंका बर्तन ही है, और हमारी बिरादरी की तो तू सब जाने ही फिर भी तू न मान रही। जायै पढ़ाके इतिहास रचवै की सोच रही है का?'

पर इन सब बातों का कोई भी प्रभाव उसकी माँ पर नहीं पड़ता। वहीं कुछ लोग उसके घर आकर नियति की माँ को बधाई देते और बधाई का पात्र मानकर कहते-

'बहुत अच्छी बात है अगर इसका मन है पढ़ने का और पढ़ाई-लिखाई में अच्छी है तो पढ़ाओ इसे देखना एक दिन कुछ करके दिखाएगी, नाम हो जाएगा आप लोगों का अपनी बिरादरी में।'

मगर इन सब बातों को सुनते हुए भी वह निश्चिंत होकर अपना कर्तव्य निभा रही थी। बस वह नियति को समय-समय पर यह बात जरूर समझाया करती कि-

'बेटा तोये सब ते ऊपर रखो है बस तू हमाई नीची मत करा दियो कबहूँ।'

वह नियति को इसलिए और पढ़ाना-लिखाना चाहती थी क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि हमारी बिरादरी की जो महिलाएँ अपना और बच्चों का पेट पालने के लिए जो काम करती आईं हैं या हमारे जैसे कुछ मध्यमवर्गीय परिवार की महिलाएँ जो चार दीवारी तक सीमित होकर रह जाया करती हैं उनमें से एक नाम नियति का न हो। वह तो यह चाहती है कि नियति का नाम सर्वश्रेष्ठ महिलाओं की श्रेणी में आए। लोग उसको जब भी देखें सम्मान की नजरों से देखें। उसको अपना आदर्श मानें। उसकी तरह ही वे अपनी बेटियों को भी पढ़ाएँ जिससे समाज में फैली कुरीतियाँ और महिलाओं पर हो रहे अत्याचार कम हो सकें। क्योंकि जब तक इनको शिक्षित नहीं करेंगे ये शोषण का शिकार तो होंगी ही साथ ही बिना शिक्षा के इसी तरह इनके अधिकारों का हनन होता रहेगा। इसलिए वह नियति के खिलाफ सबकी बातें सुनकर भी अपने और उसके मन के भाव समझकर वही करती हैं जो एक माँ को करना चाहिए। नियति एक बहुत समझदार लड़की है। उसको अपनी हर जिम्मेदारी का बखूबी ख्याल है। इस ख्याल के बदले नियति ने भी कभी कोई ग़लत कदम नहीं उठाया था और न ही कभी कोई बात कहने के लिए झूठ का सहारा लिया। उसकी ज़िंदगी के दिन की शुरुआत जैसे खुशियों से शुरू होकर खुश होने में ही खत्म होती थी। पर अफ़सोस वक्त भी एक वक्त के बाद करवट बदलता है। गुजरते वक्त के साथ नियति बड़ी होती चली गई और कॉलेज जाने लगी। पढ़ाई करते-करते नियति अपनी दृष्टि और सोच के दायरे को बहुत विकसित कर लेती है। कहाँ क्या कहना है, क्या करना है, इसकी अच्छी समझ नियति ने वक्त और हालात दोनों से बेहतर तरीके से सीख ली थी। उसे न केवल सच बोलना पसंद था बल्कि वह सही का सामना भी निडरता से करती थी। एक बार एक लड़का उसका जबरदस्ती हाथ पकड़ लेता है तो वह न केवल उसको जवाब देती है बल्कि उसकी प्रिंसिपल से शिकायत करती है।

इसी बीच उसकी मुलाकात निशांत से हो जाती है जो किसी शोध कार्य के लिए उसके कॉलेज में आया हुआ है। कॉलेज की लाइब्रेरी में ही उन दोनों का पहली बार मिलना हुआ। निशांत को कुछ पुस्तकें चाहिए होती हैं और नियति का भी वहाँ आना होता है। इसी बीच एक-दूसरे का परिचय विस्तार लेता है और उनके बीच पढ़ाई के साथ-साथ और भी बातचीत होती रहती है। चूँकि पढ़ने में दोनों ही होशियार थे और समय-समय पर एक-दूसरे की मदद भी किया करते थे। जहाँ निशांत नियति के साहस और निडरता से प्रभावित था वहीं नियति उसके बात करने और कहने के अंदाज़ से। इसी तरह उन दोनों को एक-दूसरे का साथ अच्छा लगता था। इस तरह उनके बीच बहुत अच्छी दोस्ती हो गई और उनकी इस दोस्ती में कब प्रेम के पुष्प खिलने लगे उनको स्वयं ही पता नहीं चला। यहाँ तक कि इतवार की छुट्टी का दिन भी उन पर बहुत भारी पड़ता। कुछ समय बाद निशांत जिस उद्देश्य से यहाँ आया था उसका वह उद्देश्य पूरा हो जाता है और उसे नियति को छोड़ कर जाना पड़ता है। उन दोनों को एक-दूसरे की कमी महसूस होने लगती है तो दोनों अपने बीच की दूरियों को कम करने का प्रयास करते हैं।

निशांत अपने परिवार में नियति के बारे में बताता है साथ ही उससे विवाह करने की बात भी कहता

है तो उसके परिवार ने निशांत पर पहला प्रश्न जो दागा वह यह था कि लड़की की जाति क्या है? क्योंकि निशांत का परिवार गाँव में रहता है और गाँव के लोगों के लिए जाति सबसे पहले आती है। गाँव में जाति पूछे बिना किसी का पानी भी नहीं उठता, यहां तो रिश्ता जोड़ने वाली बात थी। निशांत भी एक समय जातिवाद से ग्रस्त था परंतु समय और परिस्थितियों ने उसको इस सोच के दायरे से ऊपर उठा दिया था। इसलिए नियति की जाति क्या है उसके लिए कोई मायने नहीं रखती है परंतु उसके परिवार वालों के लिए बहुत मायने रखती हैं जाति-बिरादरी आदि-आदि। इससे पहले निशांत और नियति को अपनी जाति का तो एहसास था अगर नहीं था तो परिणाम का। वे तो बस यह सोचकर अपने आगामी सफर पर बेपरवाह चले जा रहे थे कि उनकी मंजिल एक है और जल्द ही वे अपने मुकाम पर पहुँच भी जाएँगे। इसी सोच को जिंदा रखे हुए वे दोनों अपनी ज़िंदगी जीने की हर संभव कोशिश कर रहे थे, पर बात जब घर तक आई तब उन दोनों को एहसास हुआ कि निशांत एक ब्राह्मण है और नियति एक दलित।

दरअसल नियति को इससे पहले कभी ये पता ही नहीं था कि उसके घर-परिवेश और उसके पूर्वज क्या काम करते थे, क्योंकि उसका परिवार इन सब बातों से बहुत ऊपर उठ चुका था और नियति का कभी इन बातों से वास्ता ही नहीं पड़ा था। वैसे भी उसने हमेशा खुद को जाति, धर्म जैसी चीजों से ऊपर एक बेहतर इंसान बनने का सोचा और वह अपनी इस सोच में कामयाब भी थी। पर अब जिसे सहज रूप से यह समाज स्वीकार नहीं कर रहा था, वह थी उसकी जाति। जिसके मायने उसे अब समझ आए, क्योंकि निशांत के परिवार के ऊपर जैसे कोई विपत्ति रूपी पहाड़ टूट पड़ा हो- यह सुनकर कि निशांत एक लड़की से प्रेम करता है और वो भी दलित लड़की से। उन्होंने निशांत को ये बात समझाई कि-

'तोये जा पूरी दुनिया में कोऊ और छोरी न मिली... ? अरे जै लोग हमाई झूठन उठावें आवै हैं और वायै खावै हैं, हमायै खेत-खलिहान में काम करै, कैसे-कैसे रह तै, इनकौ रहन-सहन और हमारौ रहन-सहन वो का जान पावैगी कैसे में रही होगी, तू इनकी छोरी लावैगौ... ? अरे इनकी संस्कृति और सभ्यता का हमाई संस्कृति और सभ्यता तै कोऊ मैल नाए, हम ब्राह्मण हैं और वो एक भंगी.....देख तू जो कर सकै कर लै पर हमाई इतनी सी बात सुन ले जै भंगी की छोरी हमारै घर न आवैगी।'

वहीं निशांत कहता है कि-

'अगर भंगी है तो क्या हुआ इंसान नहीं है?... अरे उससे मिले बिना, उसको देखे बिना आप लोगों ने ये कैसे तय कर लिया कि वो कैसी है और उसमें क्या-क्या अवगुण हैं? ये भी तो हो सकता है कि वो इसके बिल्कुल विपरीत हो!' पर निशांत का परिवार उसकी एक सुनने को तैयार नहीं है बल्कि वह तो दलितों को आज तक जिस दृष्टि से देखते आए हैं अब तो और भी हेय दृष्टि से देखने के पक्षपाती हो जाते हैं।

चूँकि निशांत का परिवार गाँव में रहता है और गाँव में ये सब स्वीकार करने का मतलब खुद को गाँव के लोगों से अलग कर लेना या उनके द्वारा बहिष्कृत हो जाना था। निशांत हर संभव प्रयास करता रहता है। इस बीच उसे लगता है कि घर वाले किसी ना किसी तरह से मान जाएं इसलिए वह इस तरह की भी बातें करता है कि- 'नियति बहुत ही संस्कारी लड़की है। वह मेरा बहुत ख्याल रखती है और जब वह घर में आ जाएगी तो आप सबका मुझसे भी ज्यादा ध्यान रखेगी। आपकी सारी बातें मानेंगी, जैसा आप कहोगे वो वैसे ही करेगी' (जबकि नियति उसके बिल्कुल विपरीत सही को सही और ग़लत को ग़लत कहने में विश्वास रखती है) लेकिन उसके परिवार ने उसकी एक न सुनी और उसको अपनी शान-शौकत का हवाला देते रहे। साथ ही उससे कहते रहे कि-

'का कमी रहन दई हमनै तोकू जो तू ऐसो करै है और का कमी है हमारै पास। वा तै भी अच्छी छौरी ढूँढ़ कर लांगै तौकू, और वैसे तौये एक बात और बता दें कि तेरे लै खूब बढ़िया-बढ़िया रिश्ते आ रहै हैं जिनमें तै कितैक छोरीन की तौ सरकारी नौकरी भी है तेई तरह। तू एक बार हाँ तो कर.... फिर तू देखिए ऐसौ ब्याह करवांगे तेरौ कि हमायै गाम में तो छोड़ आस-पास के दस गाम में ऐसौ ब्याह न भयौ होगौ काऊ कौ।'

पर निशांत ये सब स्वीकार नहीं कर पा रहा था, पर करें भी तो क्या करें। इसी दुविधा में फँसे हुए उसे कई महीने बीत गए और उसने अपने घर आना छोड़ दिया। उसका स्वास्थ्य गिरने लगा क्योंकि निशांत ने नियति से मोहब्बत उसकी जाति देखकर नहीं बल्कि एक अच्छी इंसान से की थी। मगर उसके घर वाले उसकी किसी बात को मानने के लिए कतई तैयार नहीं थे। अंततः निशांत ने उनसे यह भी कहा कि मैं खुद ही उससे शादी कर लूँगा। इस बात पर तो जैसे घर वाले बौखला ही गए और कहा-

'देख बेटा हमने अपयै सब खास रिश्तेदारन तै खूब बात कर लई जा मामले में कोई तैयार नायै और अगर हमन्नै ऐसौ कर भी दयौ न हम बिरादरी में कौन-कौन नै अपनों मोह दिखाएंगे... ? बस तू इतनौ याद रख तू जो चाहे कर लै पर अगर बाकै बाद में हम दोनों में तै अगर काउऐ कछु है गयौ न तो बाकौ जिम्मेदार तू और बस तू ही होगौ, तोये जो करनौ है कर लै। साथ ही तोतै हमारे सब रिश्ते-नाते खतम।'

अब निशांत करे भी तो क्या करें क्योंकि वह न तो नियति को खोना चाहता है और न ही अपने परिवार को। नियति का परिवार इतना समृद्ध नहीं है कि जितना निशांत के परिवार वाले चाहते हैं ऐसी शादी कर सकें और न ही नियति निशांत से जबरन कोई काम करवाना चाहती है। नियति दुनिया की नजर में भले ही दलित है पर उसके भाव कभी दूसरों के सम्मान को ठेस पहुँचाने के नहीं हैं। बाबजूद इसके वह निशांत से अलग होना नहीं चाहती। एक बार निशांत नियति से कहता है कि-

'हम खुद ही शादी कर लेते हैं।'

तो नियति कहती है कि-

'निशांत मैं अपने घरवालों को अपनी शादी के लिए राजी कर सकती हूँ और वो मान भी जाएँगे लेकिन उनसे बिना बात किए उनको धोखा देने जैसा होगा और अगर मैंने घरवालों के बिना पूछे ऐसा कर भी लिया तो कोई माँ भविष्य में अपनी लड़की पर भरोसा नहीं करेगी। यहाँ बहुत लोग मेरा उदाहरण देकर अपनी लड़कियों को पढ़ा-लिखा रहें हैं तो किसी लड़की की पढ़ाई मेरी वजह से रुक जाए मैं कभी नहीं चाहूँगी, इसलिए निशांत तुम लगातार कोशिश करते रहो, एक न एक दिन सफलता जरूर मिलेगी।'

परंतु अब निशांत अपने परिवार के खिलाफ भी जाना नहीं चाहता। इसलिए अब नियति को उसने साफ शब्दों में कह दिया है कि वह अपने परिवार के खिलाफ किसी कीमत पर नहीं जाएगा। पर वह नियति को भी खोना नहीं चाहता क्योंकि उसने नियति के साथ जो रिश्ता जिया है उसको वह हमेशा संजोकर रखना चाहता है और सब जैसा चल रहा है वैसा ही चलने को कहता है। पर इस सबमें नियति का क्या कसूर, उसे किस बात की सजा मिल रही थी। क्योंकि जो निशांत कल तक उस पर अपनी जान छिड़कता था, आज अचानक से परिवार की दुहाई देने लग गया। माना उसने कभी शादी जैसा वादा नहीं किया था, उसका परिवार मुझे स्वीकार कर लेगा, ऐसा कोई दावा नहीं किया था पर अब नियति क्या करे, जिसके बार-बार मना करने पर भी निशांत ने उससे दूरियाँ नहीं बनाईं और न बनाना चाहता है और न ही उसे अपनाना चाहता है। इन्हीं हालात के चलते नियति निशांत से पूछती है कि-

'तुम्हें मुझसे शादी करने में क्या परेशानी है?'

उसके बाद निशांत अपने परिवार के सब कर्तव्यों और दायित्वों का बोध नियति को करवाने लगता है और यह भी कि उसके घर वाले पूरे मन और धूमधाम से उसका विवाह करना चाहते हैं वह भी अपनी बिरादरी की लड़की से। यह सब निशांत ने नियति को स्वार्थ से लिबड़ी शब्दावली के साथ कहा तो जैसे नियति को उसके हर शब्द से लालच की बू आ रही थी, और वह मन ही मन सोच भी रही थी कि मुझे पहले ही समझ जाना चाहिए था कि आखिर निशांत है तो एक ब्राह्मण ही न, और इनकी तो नीयत और सोच जन्म से ही लेन-देन और तथाकथित शुचितावादी होती है। इनका स्वभाव बिल्कुल उस बिच्छू की भाँति होता है जो अपनों को भी डंक मारने से नहीं चूकते। फिर नियति तो उनकी नजर में एक दलित है। पहली बार नियति को निशांत पर यकीन नहीं हो रहा था कि वह उससे ऐसी बात कर रहा है। क्योंकि न जाने क्यों उसकी इन बातों से नियति को एहसास हुआ कि कहीं न कहीं अब निशांत को भी लगने लगा है कि उसकी शादी एक अच्छे खानदान में और धूमधाम से हो। नियति ने उससे कुछ नहीं कहा। वह तो बस अब उससे दूर रहने के बहाने तलाशने लगी और शाँत और उदास रहने लगी। उसके इस तरह से रहने का आभास उसकी माँ को भी हो गया था तो उन्होंने एक दिन पूछा-

'का बात नियति कोई परेशानी है का...?'

तो उसने मना कर दिया। पर माँ तो माँ होती है उससे कुछ कैसे छिप सकता है। उन्होंने नियति से विश्वास के साथ पूछा तो उसने माँ को पूरी बात बता दी और बताते-बताते वह फफक कर रोने लगी। चूँकि उसकी माँ हर हाल में नियति को खुश देखना चाहती हैं इसलिए वह उसको समझाती हैं कि-

'देख बेटा जै स्वर्ण लोग जो होंत हैं न, जै खुद को भगवान मान लेत हैं इसलिए इनके पीछे मत पड़ क्योंकि जै तोये कबहूँ नहीं अपनागें और बाकै बारे में जितनौ सोचैगी उतनी परेशान रहेगी। बेहतर जै ही है कि भूल जा वायै।' अब निशांत से बातों का जो सिलसिला था वह धीरे-धीरे थम-सा रहा था और निशांत समझ नहीं पा रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है। एक दिन उसने जोर देकर नियति से पूछा-

'क्यों कर रही हो तुम मेरे साथ ऐसा?'

तो नियति ने सहज भाव से कहा-

'मैं जो भी कर रही हूँ ठीक कर रही हूँ।'

'क्या ठीक कर रही हो मुझे भी तो पता चले?'

इतना सुनकर नियति की आँखों से आँसू बहने लगे और वह कहने लगी कि निशांत अब तुम्हारे बिना नहीं रहा जाता पर...'

'पर क्या?'

'पर अफसोस...रहना पड़ रहा है।'

तो निशांत बोला कि-

'बताओं मैं क्या करूँ तुम्हारे लिए?'

तो नियति सिसकते हुए कहती है कि-

'शादी कर लो मुझसे...'

जो निशांत नियति की आँखों में एक आँसू भी बर्दाश्त नहीं कर सकता था, बाबजूद इसके वह नियति से कहता है कि-

'मान लो यदि मैं अपने घरवालों के खिलाफ जाकर तुमसे शादी कर भी लूँ और यदि उनकी कभी मुझे याद आई या कभी उनकी कमी महसूस हुई तो जिस चेहरे से आज मुझे मोहब्बत है कहीं ऐसा न हो कि उसी को ज़िंदगी भर कोसूँ...?'

निशांत की यह बात सुनकर जैसे नियति के पैरों तले की जमीन खिसक गई। वह तो इतना भी नहीं सोच पा रही थी कि क्या यह वही निशांत है जो रात-रात भर मेरे लिए जागता था। मेरे दूर होने भर के ख्याल से फूट-फूटकर रोता था।...नहीं! शायद नहीं, यह वह निशांत नहीं हो सकता...पर कर भी क्या सकती थी सिवाय ऐसा सोचने भर के। बस बार-बार उसको यही बात कचोट रही थी कि इस सबमें उसका दोष क्या और कहाँ था? निशांत के परिवार ने जाति की आड़ में मुझे दुत्कारा और अपने परिवार की आड़ में निशांत ने मुझे दहेज के लिए...।

निशांत के इस व्यवहार से नियति लगभग टूट-सी चुकी है... उसे अपनी 'नियति' भी समझ आ गई। मगर अचानक जैसे उसे अपने होने का अहसास हो उठा हो... वह मन ही मन कह उठती है-

'थूकती हूँ मैं इस तथाकथित सभ्य, शुचितावादी और उत्तर आधुनिक समाज और इसकी सड़ी-गली सोच पर जहाँ आज भी दलित होना एक अभिशाप है।' और नियति को लगा जैसे वह एक विशालकाय-फौलादी-प्रतीक बनकर उभर रही है- जाति-धर्म, नस्लों से ऊपर सिर्फ और सिर्फ इंसानियत से लबरेज़ एक सेकुलर प्रतीक। और उसके मानस पटल पर किसी चलचित्र की भाँति बाबासाहब भीमराव अंबेडकर के अनेकानेक विचार तैरने लगते हैं!

मुक्ति जंग

अजमेर सिंह काजल, दिल्ली

अब दौर बदलने लगा था. गांधी, नेहरू के बाद अम्बेडकर की प्रतिमाएं भी महानगरों और बड़े शहरों में लगाई जाने लगी थीं। कही-कहीं विश्विद्यालयों के नाम भी रखे जाने लगे थे. संसद महिलाओं के लिए तैंतीस प्रतिशत आरक्षण के मुद्दे पर बार-बार बहस कर चुकी थी लेकिन इसे लटका कर रखा गया था। अम्बेडकर की जय-जयकार करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही थी लेकिन उनके विचारों से अधिकतर कन्नी काटते हुए सरेआम देखे जा रहे थे। सामाजिक न्याय के नाम पर बने दल भी इस बदलाव की बुनियाद से भटकते जा रहे थे। जन प्रतिनिधि जैसे आज़ादी के वक्त बड़े-बड़े जमींदार, साहूकार और पूंजीपति थे अब भी ठीक वैसे ही थे। उनकी सोच में मिली-जुली संस्कृति या भारतीयता के बोध का लोप निरंतर बढ़ता जा रहा था। उनका मकसद सामाजिक बदलाव नहीं बल्कि स्थापित ढांचे की लिपाई-पुताई तक सीमित हो गया था। पर वोट हासिल करने की लड़ाई को जीतने के लिए वे नये-नये खेल रचते रहते थे। राजनीति में धर्म का एलिमेंट बढ़ता जा रहा था। लोकतंत्र के लोक को नयी तरह से गुमराह करने और धोखा देने की चालाकियां करते हुए पकड़े जाने के बावजूद वे बाज़ नहीं आ रहे थे।

इतिहास एक नहीं, परत दर परतों में लिपटा होता है। इतिहास में भी इतिहास होता है जिसको समझने के लिए सामाजिक धाराओं की समझ जरूरी है। ऐसी घटनाओं से इतिहास भरा पड़ा है। सत्ता उग्र आंदोलन को निपटाने में अधिक कुशल होती है। उसने पुलिस-फौज इसीलिए बनाकर रखी है। वह अपना नेरेटिव फिक्स करती है और सिपहसालार हुआं-हुआं करते हैं, जनता को फंसाते हैं। पर अहिंसक आंदोलन ही अपने लक्ष्य को चूम पाते हैं। सरकार सत्ता के अहंकार (पॉवर) से चलती है और समाज भावनाओं से। यही भावनाएं संस्कृति का गठन करती हैं। पर चतुर-चालाक किस्म के लोग जनता को इन्हीं भावनाओं की घुट्टी पिला-पिलाकर अपनी दुकानें चलाते हैं। इनके लिए संस्कृति महज़ वर्चस्व बनाए रखने और मौज-मस्ती का स्रोत है। इतना सब कुछ होने के बावजूद इसी मिट्टी से नई तरंगें और उमंगें पैदा होती हैं जो इतिहास की धारा को करवट देकर सांस्कृतिक खलबली मचा देती हैं।

नेताओं का संबोधन जारी। संसद ही नहीं, संसद के बाहर भी सवाल और बहस। जलसे-जुलूस का दौर। अधिकतर जन प्रतिनिधि गुमराह थे और समाज को भी गुमराह कर रहे थे। बुद्धि विकास के रास्तों पर पहाड़ों का कब्जा। बीचों-बीच नेहरू विराजमान...अम्बेडकर इन पहाड़ों के बीच से आगे बढ़ना चाहते थे। कानून से पहाड़ों के बीच से रास्ता निकलना चाहते थे, पर पहाड़ कोई भी रास्ता देने को राजी नहीं थे। सत्ता अपनों से ही घिर गई थी। राजनीति में जगह-जगह पानी भरना पड़ता है। नेहरु कुछ ठहरे तो अम्बेडकर आगे बढ़ गए। उनका संबोधन जारी था... 'आज़ाद मुल्क की औरतें क्या चाहती हैं? और देश उन्हें क्या देना चाहता है? मुझे लगता है आधी आबादी को जब तक बराबरी नहीं मिलेगी तब तक देश और समाज आगे नहीं बढ़ पाएगा। क्या गांव क्या शहर. औरतों के लिए घर और समाज में सम्मान अर्जित करना मुश्किल भरा काम जरूर है, पर नामुमकिन नहीं। सामाजिक ढांचे की रद्दोबदल आगे बढ़ने के रास्ते खोलेगी। इसलिए जरूरत इस बात की है कि इसके लिए सभी अस्सर्ट करें। यह महज आधी आबादी की नहीं, सौ फीसद समाज इस बीमारी से जूझ रहा है। बीमार को बीमारी बताई जाए तो वह इलाज की कोशिश करता है लेकिन यहां तो बीमारी छुपाई जा रही है। आप हम तो चले जाएंगे, पर कीमत आने वाली पीढ़ियों को चुकानी पड़ेगी। मुझे मालूम है उनके लिए आगे बढ़ना इतना आसान नहीं है। चप्पा-चप्पा बैरी है। जिस माहौल में हमारा पालन-पोषण होता है वही हमारी सोच पर पहरे बैठाता है। सदियों से जारी इस खेल का काम तमाम करने के लिए ऐसी सोच और इस सूरत-ए-हाल का बदलना जरूरी है। कुछ देर माइक को हाथ लगाकर वे बोले- 'हमें बहन-बेटियों के प्रति सोच बदलनी होगी और इसके लिए हिंदू कोड बिल का पास होना बेहद जरूरी है. यही हम सबके लिए फायदेमंद भी होगा। सामाजिक ढांचे का उपयोग लोकहित और न्याय परस्ती में किए बगैर न ढांचे की हिंसक सोच बदलेगी, न लोक और लोकतंत्र।'

वे सरकार का पक्ष देश को बता रहे थे। 'औरतों की आज़ादी के बिना देश की आज़ादी अधूरी है। ये बैकवर्ड हैं नहीं, इन्हें बैकवर्ड बनाया गया है। जिनके अवसर छीन लिए जाएं उनका पिछड़ना लाज़िमी है। दुनिया के समाजों में भी असमानताएं हैं पर हमारी गंभीरत्तम हैं। पानी की दो घूंट भरकर बात को आगे बढ़ाते हुए बोले- 'यह धार्मिक मान्यताओं के मानने या न मानने का नहीं, बल्कि मनुष्य होने का अधिकार है जिस पर कोई भी धर्म या संस्कृति रोक नहीं लगा सकती। महिलाएं अपना आंदोलन चला रही हैं और हम गौर करें तो वे क्या मांग रही हैं? आधी आबादी के प्रति जिस तरह के जालिमाना आचरण हो रहे हैं। यह हम सब के लिए डूब मरने की बात है। आंखे खोलने वाले आंकड़ों के बावजूद दकियानूसी सोच हैरत में डालने वाली थी...निश्चित रूप से हमें कुछ करना है और खुलकर करना है। मेरी स्पष्ट मान्यता है कि धर्म की रवायतें और लोक रूढ़ियां मनुष्य से बढ़कर नहीं हो सकतीं। स्वतंत्रता से जीना और अपने हक़ों के लिए लड़ना एक ऐसा अधिकार है जिसे कोई भी सत्ता छीन नहीं सकती। हमारा फर्ज है मुक्ति का बिगुल बजाएं और खुलकर बजाएं।'

'आखिरकार अम्बेडकर को क्या पड़ी है यह सब करने की, ये इतनी पक्षधरता क्यों ले रहे हैं? क्या इन्हें नहीं मालूम कि यह हमारा धार्मिक मामला है।' कहते हुए एक खद्दरधारी बड़बड़ाए। उनके मुखारबिंद से लग रहा था जैसे वे पुजारी हों। लंबा और यू आकार का तिलक, सिर के पीछे लटकता बालों का लंबा-सा गुच्छा, जिसे वे बुजुर्गों की विरासत के नाम पर सत्तर सालों से संभाले हुए थे। साथ बैठे एक दूसरे नेता जिनका स्पेशलाइजेशन इसी फील्ड में था, उनकी प्रतिक्रिया से सचेत हो बैठे और मन ही मन अपने मंसूबों को पूरा करने की योजना पर केन्द्रित हो गए। उनकी नज़र में धर्म के मामलों में गैर-ब्राह्मणों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। आखिरकार मन में घुमड़ रहे शब्द जुबां पर आ ही गए। सवालों की गर्मी के बावजूद वे संयम धरकर बतियाने लगे- 'जिसका जो स्पेशलाइजेशन पुरखों ने निर्धारित कर दिया उसका पालन करने से ही सामाजिक शांति रह सकती है। हद तो तब हो गई जब वे लोग भी सिर उठा रहे हैं जो कुछ जानते ही नहीं। इस संविधान ने यह गड़बड़ मचा दी है। मुझे डर है जिस तरह से सवाल उठ रहे हैं कहीं ये हमारे सांस्कृतिक एकाधिकार के लिए खतरा न बन जाएं?'

समाज की छाया संसद पर। रुढ़िवाद का फैलता दायरा और नतमस्तक हुकमरान। महिला अधिकारों से जुड़े संगठन वास्तविक आज़ादी के मुद्दों पर चर्चा चाहे कर रहे थे पर इनका आधार अभी शहरों में ही था। गांव शिक्षा और स्वाभिमान की बातों से दूर थे पर धर्म रक्षा की कसमें उठाई जाने लगीं थी। शोषण में कुलबुलाती आवाज़ की बोली लगाने वाले जगह-जगह दुकान सजाकर बैठे थे। वो जानते थे कि यदि यह मुद्दा एक-एक लड़की तक चला गया तो वो गले में लिपटी इन बेड़ियों को तोड़कर नये सपने देखने लगेंगी। और जिस दिन उनमें इन सपनों की चमक पैदा होगी वही इनकी आज़ादी का घोषणा पत्र बनेगा। जैसे बुझी हुई आग में कोई अंगारी दबी रहती है और हवा का एक झोंका उसे लपटों में तबदील कर देता है। खतरा इसका था कि अंदर की यह आवाज़ कहीं आग न बन जाए?

लाल किले के पीछे वाले मैदान में एक सभा चल रही थी। इस मंच से मांग उठी थी कि औरतों की आज़ादी पर धर्म का यह पहरा किसलिए लगाया गया है? जब पुरुष आज़ाद है तो हम क्यों नहीं? हम ही अपनी ज़िंदगी के मालिक हैं। हमें भी सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक हिस्सेदारी चाहिए और ये हमारी आज़ादी का घोषणा पत्र बनेगा।' कहते हुए नीरजा ने अपनी बात को आगे बढ़ाया। 'आज़ाद मुल्क में हमारी आज़ादी तार-तार क्यों है? यह सवाल उठाते हुए आह्वान किया कि ज़ज्बातों को ज़ाहिर किए बिना कुछ हासिल होने वाला नहीं है। मुझे लगता है वह वक्त आ गया है जब हमें खुलकर एक मनुष्य के रूप में अपनी गरिमा की रक्षा करते

हुए करोड़ों वंचित शोषित बहनों के पक्ष में खड़ा होना ही होगा। सत्ताएं आएंगी और जाएंगी, पर हमारे सवाल तब तक हल नहीं हो जाते यह अभियान जारी रहेगा। उनकी बातों का सीधा असर हो रहा था और उन्होंने हाथ घुमाते हुए नारे लगाए।

'गैर बराबरी हम नहीं सहेंगे' एकता ज़ाहिर करने की प्रतिक्रिया में सभी के हाथ उठे और जोरदार आवाज़ आई।

'नहीं सहेंगे! नहीं सहेंगे!' मंच के सामने मौजूद महिलाओं ने जैसे अपनी हाजिरी दी।

फिर एक दूसरा नारा लगा, 'आधी आबादी अब जाग रही है।' सामूहिक आवाज़ को सत्ता के दरवाज़ों तक पहुंचाने की कोशिश जैसे सफल रही। मंच के सामने बैठी जनशक्ति ने पुरज़ोर ताल ठोंकी। एक के बाद एक स्लोगन हवा में उछाले जाने लगे और जनजागृति का संदेश पूरे इलाके में फैल गया।

'हक़ अपने वो मांग रही है।'
'हक़ तुमको वो देने होंगे!'
'पितृसत्ता हो बर्बाद।'
'हो बर्बाद! हो बर्बाद!'
'तलाक को कानून बनाओ!'
'कानून बनाओ! कानून बनाओ!'
'भरण पोषण का हक़ भी चाहिए!'
'हक़ भी चाहिए! हक़ भी चाहिए!'
'कानून मंत्री जिंदाबाद!'
'जिंदाबाद! जिंदाबाद!'
'जब लड़का लड़की एक समान!'
'फिर लड़की का क्यों अपमान!'
'पिता की संपति हमारी भी है!'
'हमारी भी है! हमारी भी है!'
'सबको शिक्षा सबको काम!'
'वरना होगी नींद हराम!'
'सांप्रदायिकता और जातिवाद!'
'हो बर्बाद! हो बर्बाद!'
'अंधभक्ति और पाखंडवाद!'
'जल्दी हों ये सब बर्बाद!'
'पढ़-लिखकर हम आगे जाएं'
फिर अच्छे से देश चलाएं!'

अबकी बार लंबा और जोशीला नारा लगा। 'रुढ़िवादियों के आगे झुकना बंद करो'

प्रतिक्रिया भी उतनी ही तेज थी। 'बंद करो! बंद करो!'

एक से बढ़कर एक नारे लग रहे थे। जलसा अपने आप में अभूतपूर्व। चारों और मौजूद सांस्कृतिक फाटकों को खोलने और तोड़ने की भावनाएं जैसे सभा में नाच रही थीं।

घोड़ेलाल बाबा और रमली संयासिन के गुरु महंत पालकी लाल अपना अधिकतर वक्त गर्भ गृह की पालकी में ही बिताते थे और जिसे भी इनसे धार्मिक या राजनीतिक सवालों पर मिलना हो, कभी भी अपॉइंटमेंट लेकर मिल सकता था। चौबीस घंटे दरवाज़े खुले रखते थे। मर्द हो या औरत किसी पर कोई रोक नहीं थी। यहां रमली संयासिन सभी व्यवस्थाएं संभालती। वह गुरु के बताए रास्ते पर निसंकोच आगे बढ़ती जा रही थी। रमली घोड़ेलाल से पहले चेली बनी थी। शिष्यों में वह गुरु के सबसे निकट थी। इसी निकटता के कारण श्रद्धालु भक्त और आश्रम से जुड़े लोग उसे ही गद्दी की वारिस मानने लगे थे। पर महंत पालकी लाल ने जीते जी किसी को अपना वारिस नहीं बनाया। हां, मन की इच्छा यदा-कदा ज़ाहिर करते रहते थे कि महंत की विरासत को बचाकर और बनाकर रखना आज कितना मुश्किल है। नैतिक बल के बिना इसे बनाकर रख पाना नामुमकिन है। पर हाथी दो दांतों का मालिक होता है।

महंत ने गद्दी वारिस का नाम लिखकर तहखाने में बंद करवा दिया था और सख्त हिदायत दी कि मेरी मुक्ति के बाद ही इसे खोला जाए। व्यक्ति के ऊपर प्रेम का बहुत असर रहता है। इसी के चलते वह लोक को चौंका भी देता है पर ऐसे लोग लड्डू में काली मिर्च से भी कम होते हैं। अनेक बार लोक रीति के चक्कर में संबंधों के साथ अन्याय भी होता है। प्रेम और लोक मर्यादा में जन्मजात बैर है। यह बीच में आकर अरमानों को छितरा देती है। जिस फैक्ट्री से महंत पककर निकले थे उससे कुछ-कुछ अंदाज़ा तो लग ही सकता था। परंतु युद्ध और प्रेम में व्यक्ति कुछ भी कर सकता है यह कहावत भी यों ही नहीं बनी। महंत अब बीमार रहने लगे थे और जिंदगी के आखिरी पड़ाव पर थे। दिन गुजरे तो बात रात पर अटक जाती थी। खैर, अमावस्या की काली रात में महंत ने अंतिम सांसे लीं। साधु समाज की परंपरा के अनुसार महंत को समाधी देने की प्रक्रिया शुरू हुई। सुबह होते-होते साधु-संयासियों-महंतों के दल दूर-दूर से अंतिम दर्शन के लिए आ पहुंचे थे। जो रह-रह कर कभी महंत के संस्मरण सुनाते तो कभी उनके अंतरंग जीवन की झांकियां पेश करते। कुछ ऐसे भी थे जो उनके धर्म और संस्कृति की रक्षा में किए कार्यों को गाते हुए कुप्पा हुए जा रहे थे। एक तरफ बड़प्पन के किस्से बघारे जा रहे थे तो साथ ही गाजे-बाजे के साथ पुष्प वर्षा करते हुए उन्हें समाधी दे दी गई।

लगभग एक माह बाद आमंत्रित साधु समाज की मौजूदगी में तहखाने का दरवाज़ा खोला गया। सभी ओर सन्नाटा पसरा था। एक पत्ता भी गिरे तो मालूम पड़ जाए। महंत पालकी लाल के गुरुभाई बुज़ुर्ग महंत ने अलमारी का दरवाज़ा खोला, लाल कपड़े में लिपटी फाइल को उठाया, पीछे मुड़कर हाथ ऊपर करके सबको दिखाया और धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए वापस चले। शांत-सौम्य अंदाज़ से पंडाल में दाखिल हुए। साधु-संयासियों का पूरा दल भी उनके पीछे-पीछे पंडाल की तरफबढ़ने लगा। सभी मौज़िज़ लोगों की हाजिरी में गुरुभाई महंत ने फाइल खोली। सभी लोगों में उत्सुकता का ज्वार उफान पर था। पढ़ने के लिए जिल्द पलटी। मौजूद लोग दो-दो कदम और खिसक आए। गुरुभाई महंत के बगल में एक तरफ घोड़ेलाल बाबा तो दूसरी तरफ रमली संयासिन ख़ामोश चित्त जरूर बैठे थे, पर उनके मन-मस्तिष्क में जबरदस्त उमड़-घुमड़ मची हुई थी। सागर हिलोरें मारे जा रहा था।

'मेरा ही नाम निकलेगा इससे। महंत गुरु की इतनी सेवा की है मैंने। कोई ऐसा कर ही नहीं सकता था। गुरु मुझे बहुत अच्छी तरह जानते-समझते ही नहीं, अच्छी तरह बतियाते और ख्याल रखते थे और मैं उनका। आश्रम का ही नहीं, अपना हाल भी बेझिझक मुझे बताते थे। मुझसे नजदीक कौन हो सकता है? मेरे ही नाम की घोषणा होने वाली है। यहां के रख-रखाव को भी बड़ी होशियारी से किया है मैंने। गुरुजी तभी तो मुझे बहुत मानते थे। अब तो नतीजे का वक्त है। फिर मन के कोने में संदेह की हल्की-सी किरण फूटती दिखाई दी, अगर मेरा नाम नहीं हुआ तो!' अपने आप को संतोषी बनाने का बोध लेकर फिर से आंखे बंद कर लीं। दुनिया जानती है आश्रम स्वामी होने का क्या मतलब होता है।

बाबा धोड़ेलाल भी शांत चित्त दिख जरूर रहे थे, पर थे नहीं। उन्हें भी गुरु भक्ति से ही कुछ प्राप्ति की आशा थी। अपनी स्वामी भक्ति का बार-बार प्रदर्शन भी करते थे। 'जब से महंत जी बुढ़ापे की वजह से कुछ लाचार हुए थे, तब से उनका बाहरी काम में ही तो संभाल रहा हूं। और वैसे भी आश्रम का रख-रखाव मुझसे बेहतर कौन कर सकता है? धर्म के मामलों में भी धर्म से भी बड़ा काम जाति करती है। लगभग सभी जगह महंत होने में जातीय जुड़ाव को अधिक महत्त्व दिया जाता है। मेरे लिए तो यह गद्दी पाने में फायदे की चीज बन गई है। मैंने वे ही दांव पेंच आजमाए हैं जिन्हें गुरु अपनाकर महंत बने थे। मुझे परास्त करना आसान नहीं होगा रमली!' उनके मन में स्वामी बनने की खुशी के लड्डू फूटने लगे। फिर सहसा दूसरा सवाल उभरा 'कहीं उसका नाम हुआ तो!' मन ने खुद ही उत्तर तलाशा और उसे पेश करते हुए बुदबुदाए- 'महंत और औरत...हमारी संस्कृति और लोक परंपरा इसकी इज़ाज़त नहीं देती...!'

महंत ने दस्तावेज़ पढ़ना शुरू किया। पंडाल में मौजूद चेहरों पर गज़ब का आवेश और सनसनाहट थी। मंद-मंद हवा भी अपनी उपस्थिति ज़ाहिर कर रही थी। 'मेरे बाद इस आश्रम के महंत होंगे'...तभी महंत गुरुभाई के गले में कुछ खरखराहट हुई और उन्होंने पानी के लिए इशारा किया। रमली संयासिन ने बगल में रखा पानी का गिलास झट से उठाया और महंत गुरुभाऊ को देते हुए उनके चेहरे को पढ़ने का प्रयास किया। शायद वे उनके मन को ताड़ना चाहती थीं। कहते हैं चेहरे पर मन के भाव रह-रह कर आ ही जाते हैं। कुशल चितेरे ही इसे छुपा पाते हैं। ख़ामोशी में गर्दन हिलाते हुए अध्यक्षता कर रहे गुरुभाई महंत ने फिर से दस्तावेज़ पढ़ना शुरू किया। 'मेरे बाद इस आश्रम के महंत...कुछ रुककर...महंत होंगे...घोड़ेलाल बाबा! महंत पालकी लाल' इस दस्तावेज़ को सभी उपस्थित लोगों ने देखा। महंत के ही दस्तख़त थे।

रमली संयासिन के पैरों के नीचे की ज़मीन जैसे एक ही झटके में खिसक गई। काटो तो खून नहीं। कुछ वक्त वह सदमे में चली गयी। फिर उसने गर्दन

उठाकर देखा तो घोड़ेलाल गुरुभाई महंत के पैरों में झुके हुए थे और गुरुभाई महंत उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे। रमली जो कर रही थी अब उसका वक्त बीत गया। वह अब इतिहास बन गयीं और वर्तमान वो जिसको वह इतिहास मानकर चल रही थीं। उसके उद्‌गार फूटे, होंठ बुदबुदाए- 'समय-समय का फेर है कल तक यही घोड़ेलाल मेरी ही मार्फत महंत जी तक गया था और आज इसने मुझे ही पलटी दे मारी। उसके मन में यह प्रश्न भी साथ ही उभरा, कहीं इसके पीछे कोई निजी कुशलता का खेल तो नहीं है। अगर यह नहीं तो फिर और क्या हो सकता है? फिर उसके मन में यह बात हूक की तरह उठी। अब उसकी आंखों के आगे केवल घोड़ेलाल ही नहीं थे। वे भी थे जिन्हें वो अपना मानती थी और इसी गलतफहमी में मारी गई।

घोड़ेलाल बाबा ने महंत बनते ही दो चार दिन में ही रंग दिखाना शुरू कर दिया था। जैसा कि यह एक सहज मानवीय कला है। उपदेश दूसरों के लिए होते हैं। जिन बातों के लिए हम दूसरों पर कटाक्ष करते हैं मौका मिलते ही सब भूल जाते हैं। फिर वैसा ही रौब गांठने लगते हैं जैसा पहले अन्य लोगों से पाकर रहीम के दोहे सुनाया करते थे। अब घोड़ेलाल की चाल-ढाल बदल गई थी। उसने आश्रम के रोज़ मर्रा के कामों और संपति पर अपना नियंत्रण करने की तरकीबें निकाल ली थीं। ये बातें कहने की नहीं दिखाने की होती हैं। उनके हाव-भाव और आचरण इसकी गवाही देने लगा था।

मंच सजा हुआ। धार्मिक संस्थाओं के प्रतिनिधि भाषण देने को आतुर। जोश लबालब। भुजाओं में फड़क। जुबां पर कंट्रोल होना जैसे नामुमकिन। इन्हें लगता है संस्कृति को बचाने का यही अवसर है। भाषण शुरू करने से पहले वक्ता धर्म की रक्षा में जीवन लगा देने की कसम उठाता और फिर क्या से क्या नहीं कहता? बाबाओं का जमघट। मंच संचालक ने मुख्य अतिथि के नाम का ऐलान किया और उन्हें आमंत्रित करते हुए कई नारे लगवाए। महंत बाबा घोड़े लाल जय जयकार से कुप्पा थे. उनकी खूबी यह थी कि वे घोड़े की तरह कटाकट चलते थे। तेज स्वभाव और खड़ापन उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। उनके आश्रम का नाम भी घोड़ेलाल आश्रम पड़ गया था। शुरुवात में इन्होंने अपनी सवारी के लिए एक घोड़ा रखा था। जिस पर ये दूर दराज़ के इलाके में दौरा करते और सत्संग में भाग लिया करते थे। जनमानस में इनके अनेक किस्से आज भी सुने और सुनाये जाते हैं। महंत घोड़ेलाल का भाषण जारी था। वे धर्म संस्कृति की रक्षा का बीड़ा उठाये हुए थे। 'हमें तो समझ नहीं आता कि ये लोग इन अनजान सवालों में फंसते ही क्यों हैं? मोटी सी बात है जब धर्म हमारा तो इसमें सरकार का क्या लेना-देना? हमारे धर्म की महिलाएं, उन्हें हम संभाल लेंगे। अब तो हम सरकार को कोई माफी देने वाले नहीं हैं। विचार परंपराओं पर हमला बर्दास्त कैसे हो सकता है? हम चेतावनी देते हैं कि सरकार इसमें ना फंसे और न ही जनता की भावनाओं से खिलवाड़ की हिमाक़त करे।'

आज करोलबाग के चौराहे पर महिला संगठनों की बैठक तय थी। जिसमें अनेक वकील, सामाजिक चिंतक और महिला कार्यकर्ता शामिल हुई थीं। बाबा साहेब को पक्ष रखने के लिए आमंत्रित किया गया था। गांव की भोली-भाली जनता की तो छोड़िए शहर के पढ़े-लिखे लोगों को भी कुछ पता नहीं था। उन्हें केवल इतना ही बताया गया था कि वो लड़कियों में जमीन-जायदाद बांटना चाहते हैं। जहां जमीन के लिए भाई-भाई की गर्दन काट देता हो, वहां लड़कियों की क्या औकात? एक तरफ छलावे की राजनीति गोलबंद हो रही थी, तो दूसरी ओर सामाजिक बदलाव की ताकतें इसके समर्थन में खड़ी हो रही थीं। संसद हंगामा देख चुकी थी पर आगे अभी बहुत कुछ देखना बाकी था। नारों से पटा मंच। सभा में जितना जोश उतना ही होश। 'मेरा सवाल है सामाजिक सम्मान और संपति में हिस्सेदारी को लेकर औरतों को संघर्ष क्यों करना पड़ रहा है? गंभीर तरह के भेदभाव और वंचनाओं को संस्कृति के झंडों पर क्यों लहरा रहे हैं? इस बोझ से मुक्ति पाना किसी महानता के मुलम्मे में पेश किया जाता है। ये हिस्सेदारी है और हिस्सेदारी इसलिए चाहिए कि औरतें भी पुरुष की तरह इंसान हैं। उनकी भी जरूरतें हैं। वे भी उसी तरह से दुनिया की मालिक हैं जिस तरह से मर्द। हमारी लड़ाई हक़मारी के लिए फैलाए गए झूठ के खिलाफ है।'

संबोधन जारी था- 'कर्म सिद्धांत का दुष्चक्र सामाजिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। बुद्ध ने तो कहा है व्यक्ति वही बनता है जो वह सोचता है। बराबरी की शिक्षा मिलेगी तो बराबरी से उसका विकास होगा। औरतों को तरक्की के समान अवसर दिए बिना मुल्क कभी भी ताकतवर और आत्मनिर्भर नहीं बन सकता। यह मैं नहीं, दुनिया का इतिहास बताता है... इसलिए किसी भी समाज की उन्नति महिलाओं की उन्नत्ति और स्वतंत्रता से ही जांची जा सकती है....मैं पूछना चाहता हूं उन मठाधीशों से....जो...जो...धर्म और संस्कृति की रक्षा के नाम पर तलाक, उत्तराधिकार, गोद लेने, गुजारा भत्ते और पैतृक संपति में हिस्सेदारी जैसे बढ़िया कानून के खिलाफ़ सड़कों पर खड़े हैं...क्या

के धार्मिक मामलों में न तो हस्तक्षेप है और न ही खिलाफ। जैसा कुछ संगठन और नेता बार-बार अलाप रहे हैं। जबकि असल सवाल महज़ इतना बाकी है कि औरतों के साथ नागरिकों जैसा व्यवहार क्यों नहीं हो रहा है? ये बुरे व्यवहार इंसानी हैसियत के खिलाफ़हैं...बीच में बीच में नारे लगते रहे- 'महिला अधिकारों के रक्षक जिंदाबाद!' प्रतिध्वनि भी ज़ोरदार थी। वे फिर से अपने मन की बात कहने लगे। 'बड़ी हैरत होती है जब शोषण को किसी के पास मेरे सवालों का जवाब है? किसी धर्म ग्रंथ में इन सवालों का जवाब है? तभी तो मैंने महिलाओं के अधिकारों की हत्यारी मनुस्मृति को सरेआम आग लगाई थी। आपके अधिकारों की यह लड़ाई हमारी जिंदगी से भी बड़ी है और इसे जीते बगैर रुकने वाले नहीं है।'

बाबा घोड़ेलाल अब महंत के रूप में अपना एकाधिकार जमा चुके थे। यह अहसास संयासिन को भी हो चला था। अब उसे जो थोड़ा बहुत

मान-सम्मान बचा था, उसकी ही फिक्र अधिक थी। आश्रम के जिस हिस्से में वह पहले रहती थी अभी भी वह उसके नियंत्रण में जरूर था लेकिन उसे कभी भी खाली करवाया जा सकता था। अब वह पहले जैसी निश्चिंत नहीं थी। उसका दिल बीच-बीच में किसी अज्ञात चिंता में धड़कने लगता था। पर वह यों ही दिन पर दिन बिताए जा रही थी। चालिस पार कर चुकी थी। हिम्मत भी थी लेकिन गुरु भक्ति का मनोवांछित परिणाम न मिलने से

निराश रहने लगी थी। आशा और निराशा जिंदगी के फूल हैं। कौन किसको मिल जाए कहना बड़ा मुश्किल है। वैसे भी व्यक्ति के हाथ में हो तो वह निराशा को कभी पास फटकने ही न दे।

अमावस्या की घुप्प अंधेरी रात। ठंड ने अपने किले मजबूत कर लिए थे। इसके आगे झुके बिना कोई आगे नहीं बढ़ सकता था। दूर-दूर से उठती सायं-सायं की आवाजें। आश्रम में कोई हलचल नहीं। हां, कई मन उधेड़बुन में लगे थे। आश्रम के बगीचे में दिन भर पक्षियों की जो चहल-पहल रहती थी, वह कब की दूसरी दुनिया में तबदील हो चुकी थी। बीच-बीच में उनके पंख फड़फड़ाने की ध्वनि से रात की ख़ामोशी जाग जाती थी। रात जवानी की राह पर बढ़ी जा रही थी। वक्त कोई बारह बजे का रहा होगा। संयासिन के दरवाज़े पर कोई हल्की-सी आहट हुई। उसने करवट लीं। बिस्तर ने प्रतिरोध किया। दरवाज़े पर अभी भी ज़रा-ज़रा सी आवाजें। उन्हें दरकिनार कर संयासिन फिर से नींद के आगोश में और जल्द ही ख़ाबों की दुनिया में खो गई। नये मुकाम हासिल करती हुई वह एक चिरपरिचित पथ पर दौड़ी चली जा रही थी। उसकी सैर में कई ठहराव और ठिकाने आए पर वह बेपरवाह थी। जैसे मंजिल हासिल हो गई हो। वह जागने की कोशिश कर रहीं थी, पर जाग नहीं पा रहीं थी। उस पर एक जकड़न हावी थी। तन-मन उसके काबू में नहीं था। वह हड़बड़ाहट, बड़बड़ाहट से गुजरते हुए जकड़न से मुक्ति की कसमसाहट कर रही थी उसे लगा जैसे कोई मुंह दबाए था, वह जोर-जोर से चिल्लाने की कोशिश कर रही थी, पर कोई उसे मुक्त करवाने के लिए आगे नहीं आ रहा था। उसकी आवाजें बढ़ती जा रही थीं। जोर ज़ोर से...और ज़ोर से! उसे लगने लगा कल तक मेरी एक ज़रा-सी आवाज़ पर यहां कितने ही साधु और कारिंदे उमड़ पड़ते थे, पर आज ये सब कुछ कैसे बदल गया? कोई भी तो नहीं है कहां चले गए सब के सब! घोड़ेलाल उसे कह रहे थे 'रमली यह सब कुछ तुम्हारा ही है। ठीक वैसे ही, जैसे पहले यह तुम्हारा था। तुम चिंता ना करो सब कुछ तुम्हारा ही है। और मैं भी!'. रमली उसकी बातों को सुनकर प्रतिक्रिया देना चाहती थी, पर जैसे दरिया में डूबती जा रही थी। समय का फेर।

सुबह के वक्त महंत घोड़े लाल आश्रम का दरबार जमा चुके थे। अनेक साधु-संयासी ही नहीं भक्त लोग भी जमा थे। जितने लोग उतनी फरियाद। कोई सत्संग की तारीख निकलवा रहा था तो कोई घर का मुहूर्त पक्का करवा रहा था तो कोई भोजन के लिए आमंत्रित करने के लिए करबद्ध खड़ा था। महंत सबकी सुन रहे थे। उन्हें धर्म-कर्म के तौर-तरीके बता रहे थे। भक्त भक्तिभाव से झुक-झुक कर आ-जा रहे थे। तभी अचानक रमली ने महंत के कमरे में प्रवेश किया। उसके चेहरे पर आक्रोश तैर रहा था। वह तेजी के साथ महंत के आसन के पास पहुंची। उसके पास वहां आए लोगों के चेहरे पढ़ने और समझने का वक्त नहीं था। महंत जब तक समझते तब तक वह काम निबटा चुकी थी। उसने बिना कोई सवाल किए घोड़ेलाल के चेहरे पर तड़ातड़ दो चांटे रसीद कर दिए। कमरे में भगदड़ का दृश्य। संयासिन किसी के रोके रुक नहीं रही थी। उसके मन में जो सपना मौजूद था वह यथार्थ में तबदील हो चुका था।

जीवन मनोभावों और चित्रों का प्रतिफ्लन मात्र है। उसे कहीं गिरवी रखने की नहीं, खुलकर जीने और पंख लगाने की जरूरत है। उसके मन में विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी। वह कह रही थी -'सारा जीवन जिसकी प्राप्ति में लगा दिया आखिरकार कुछ हासिल नहीं हुआ। यह भयंकर संकट का दौर है जिसमें औरत एक मूर्ति है उसका दुख-दर्द किसी को दिखाई नहीं देता। वह न तीन में है न तेरह में। लेकिन मैं इस धारणा को तोड़ डालूंगी। खुद से प्रेम न करना और दूसरों के लिए प्रेम की झमाझम बारिश कर देने से आखिर मुझे क्या हासिल हुआ? मैं दूसरों के लिए क्यों जी रही थी? चारों तरफ झूठ का आभामंडल छाया है। जंजाल है। और खुद की बनाई हुई मोहमाया है। जो सामने है उसे परखा जाना चाहिए। नैतिकता का पाखंड कभी भी व्यक्ति का भला नहीं कर सकता...वह कब तक यों ही अतृप्ति की तलाश में भटकता रहेगा। जिसकी तलाश में वह मारा-मारा फिर रहा है वह उसके पास ही है....ये जो बड़े-बड़े महंत बनकर घूम रहे हैं सभी अंदर से खोखले हैं! खल्लास हैं! मुझसे ज्यादा इन्हें कौन समझ सकता है!'

रमली के मन में रह-रह कर अतीत उमड़ने-घुमड़ने लगा। उसे अपना बालपन याद आने लगा। वह महज़ दस साल की उम्र से ही महंत गुरु की सेवा में थी। एक बार महंत ने बताया था कि तुम्हारे माता पिता एक रेल दुर्घटना में मारे गये थे और तुम्हें मैं आश्रम ले आया था तब तुम केवल पांच साल की थी। जब तुम्हें लेने कोई नहीं आया, तब मैंने तुम्हें अपनी चेली बना लिया था। रमली को मालूम ही नहीं कि पिता का साया क्या होता है? और मां की ममता कैसे बरसती है? उसे तो इतना भर मालूम था कि महंत ही उनके सब कुछ है। उनकी चॉइस की पूर्ति ही रोज़मर्रा की जिंदगी का मकसद। जैसे-जैसे बड़ी होती गईं काम और सेवा के तरीके बदलते ग। लेकिन मेरी कोई चॉइस नहीं, सब कुछ जैसे पूर्वनियोजित। उनके नहाने, खाने, मालिश करने, पैर धोने से लेकर सोने तक का हर पल मेरी दासता का गवाह था। क्या मजाल जरा भी आंखों से ओझल हो जाऊं! मैं उस वाकये को कैसे भूल सकती हूं जब मेरे साथ वह हादसा हुआ था। जो एक बार शुरू क्या हुआ? उससे मुक्ति महंत की मौत के बाद ही मिली। क्या अब इस आश्रम का इतिहास अपने आप को दोहरायेगा नहीं? क्या यह खेल देशभर के आश्रमों में नहीं चल रहा है? क्या हम सिर्फ देह हैं? क्या इस लोकतंत्र में हमारे इरादे, अरमान, चॉइस का कोई मूल्य है? उसे एहसास होने लगा औरतों को दासता से मुक्ति तभी मिलेगी जब मुक्ति के दरवाज़ों पर पसरी तथाकथित मर्यादाओं की मोटी चादर को उघेड़ा जाएगा। औरत के प्रति ऐसा नजरिया आखिर क्यों है? मुक्ति द्वारों पर जो काबिज़ हैं चाहे वो सत्ता के षड्यंत्र हों या समाज या व्यक्ति के, उनकी बेदखली मेरी जिंदगी है.। यह समय की मांग भी है और समय से जंग भ।

औरतों के हक़ों की खिलाफत में जलसों की भरमार। अंधेरे के नायक रंग बदलते गिरगिट। बहुत बार ऐसा भी होता है जब कोई मामला खुलता है तो खुलता ही जाता है उसे रोक पाना किसी के बूते की बात नहीं रहती। रमली आश्रम में औरतों के अधिकारों के मुद्दे को सड़क तक ले आई थीं। हलचल ही नहीं, बिगुल बज चुका था। आज अचानक एक परिचित, अपने आप को संस्कृति का

रक्षक मानने वाले तिलक झंडेधारी महंत से मुलाकात हो गयी। फिर निकल पड़ा बातचीत का सिलसिला। कई बार विरोधी पक्ष को ताड़ने के लिए उसे जान-बूझकर महत्त्व दिया जाता है ताकि अनदेखी के आरोप न लगें लेकिन निर्णय ठीक उलट आते हैं।

'औरतों को नेतृत्व देने से आपको यानी आपकी संस्कृति को क्या खतरा है?' बड़ी हिम्मत से रमली ने यह सवाल उठाया था। क्योंकि अभी कुछ दिन पहले तक वह इसी संस्कृति के गीत गा-गाकर भक्तों को मोहने का खेल रचती थी।

'दे सकते हैं या नहीं यह सवाल ही गलत है। यह तो धर्म का मामला है जिस पर आप और हम कोई सवाल नहीं उठा सकते!' झंडेधारी ने कहा। इस दौरान रमली के साथ हुए व्यवहार की एक झांकी उसकी आंखों के आगे नाचने लगी।

'तुमसे या मुझसे जो काम लेना है वह वही लिया जाएगा जो बताया गया है।' उसने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा।

'इसका मतलब तो ये हुआ कि हम कभी भी शीर्ष को नहीं पा सकते?' रमली ने उत्तर देते हुए कहा।

'देखिए! सोचने के लिए आप स्वतंत्र हैं। लेकिन जब आप संयासी बन सकती हैं तो यह धर्म का बड़प्पन ही तो है। काबिल होना चाहिए जो चाहे बन जाओ! बिना काबिलियत महंत कैसे बनाया जा सकता है? तुम्हें यह समझना चाहिए।'

'आपमें कौनसी काबिलियत है महंत जी?'

'मैं शुद्ध आर्य ब्राह्मण हूं, यह मेरी पहली काबिलियत है।'

'जब सभी मनुष्य समान हैं...तो आपकी शुद्धता किस खेत की मूली है।' उसके अंदाज़ में तल्खी उभर आई थी।

'हम जिस खेत की मूली हैं, तुम लोग उस खेत की मूली कभी नहीं बन सकते!' और सुनों! ये कानून-वानून हमारे महान धर्म पर लागू नहीं होते। यहां वही होगा जो हम चाहेंगे।'

'और आगे सुनो! शुद्ध वो होता है जो सभी जगह घूम फिर आए, कुछ भी खा-पी आए, लेकिन अपनी जड़ों से ना डिगे। उसमें दूसरों से आगे निकलने की क्षमता होनी चाहिए। साधन चाहे जैसे भी हों, लक्ष्य हासिल होना चाहिए. खाली झंडेधारी का ज़माना अब रहा नहीं। '

'जिस धर्म में मानव-मानव, औरत-मर्द और जाति-जाति में भेद किया गया हो, वह भी महान!'

रमली की बातों को दरकिनार करने के लिए झंडेधारी ने सवालों को बदला। 'सामाजिक मूर्खता का प्रचार-प्रसार हमारे धंधे के लिए हीरे मोती से कम नहीं!' तुम लोग क्या समझते हो हम बस यों ही बैठे हैं? हमारी जड़ें बहुत गहरी हैं। क्रेन की ताकत से उखाड़ना भी चाहेंगे तो उखाड़ नहीं सकते।' हमारा नाम और काम यों ही फलता-फूलता रहे। यह हमारे लिए, हमारी संस्कृति के लिए बहुत बढ़िया रहेगा और तुम्हारे लिए भी अच्छा ही रहेगा कि तुम इसमें ना उलझो...सभी हमारे हिसाब से ही जी रहे हैं। यदि चैन से जीना है तो आदत डाल लो, खुद को ढाल लो। ये हमारा धर्म है रमली...कोई खाला का घर नहीं। यहां के नियम पक्के हैं, हमारी चॉइस के बिना इन्हें बदलना किसी के बूते की बात नहीं। चाहे सरकार हो या संसद या कोई और!'

'मैं यह सब नहीं मान सकती। चाहे जो कहते रहो।'

पर दूसरी काबिलियत?...'

'कई पीढ़ियों से धर्म का काम-धंधा कहें या मानवता की सेवा...मेरे परिवार की विरासत है।'

'और तीसरी... ?'

'तीसरी ये कि महंतों में भी कुछ न कुछ राजनीतिक बातचीत रहती है। जो हमारे दल-बल के लोग हैं, जो हमारे कहने से दान-दक्षिणा का कुछ हिस्सा इलेक्शन फंडिंग में लगाते हैं। जो अपने आश्रम के संसाधनों, चेले-चपाटों और भक्तों को गुप्त चुनाव प्रचार में लगाते हैं। उन्हें विशेष हक़ हासिल हैं समझी...।'

'अब समझी! आप क्यों, जब देखो महंतपन का दिखावा करते हुए अपनी जात-बिरादरी में ही घुसे रहते हो और दूसरों को जातिवादी कहते हो।

'बात मात्र इतनी नहीं है!'

'तो कितनी है?'

'असल मामला तो ये है कि इस घंधे में इतना माल-मताल है जो अपने पैसों से कभी भी नहीं खरीदा जा सकता और ना ही हमारी इतनी हैसियत। जब इतनी सुख-सुविधाएं मुफ्त में मिल रही हों तो क्या मूर्ख से मूर्ख आदमी भी इससे दूर जाने की सोच सकता है...इसलिए इस काम को सबसे अधिक तवज्जो देते हैं। यहां लोग सीधे पैरों में जाते हैं और सामाजिक सम्मान मुफ्त में देते है...पर मुझे उस दिन का डर है जिस दिन ये वर्चस्व टूट जाएगा। ये सब डगमग हो जाएगा। क्या होगा तब हमारा?' झंडेधारी के मुखमंडल पर पसीने की बूंदें उभर आई थीं। चेहरे पर आवेश तैरता हुआ साफ दिखाई दे रहा था। उनकी डैमेज कंट्रोल की ट्रेनिंग अनूठी थी वरना सामान्य आदमी तो कब का लड़ाई-झगड़े पर उतर आया होता। झंडेधारी ने सेवादार पर दांत बजाते हुए कहा- 'इतनी गर्मी है और तुमने अभी तक ए.सी. ऑन नहीं किया। पता नहीं इन लोगों को धर्म कब समझ में आएगा?'

मौक़ा पाकर रमली ने फिर एक सवाल उठा दिया 'अभी तो कह रहे थे हमारी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं खड़कता? तो क्या यह जो सब हो रहा है ये आप ही करवा रहे हैं?'

'देखो हमें काउंटर तो करना पड़ेगा ही, चाहे हमारा पक्ष कितना ही कमजोर क्यों न हो। कहने की बातें तो ठीक हैं लेकिन जिस तरह से वो अम्बेडकर सवाल पर सवाल उठा रहे हैं। वे संसद में खुलकर बोल रहे हैं और बाहर भी सभाएं कर रहे हैं। जनता को अपने हक़ों के लिए जगा रहे हैं। हमें डर है कहीं हमारे खेल की पोल खुल गयी तो? जनता हमें दौड़ा-दौड़ा कर मारेगी! और सदियों का हिसाब मांगेगी, क्या होगा तब मेरे राम!'

रमली संयासिन ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए उनके छुपे हुए डर को ताड़कर चारों तरफ मौजूद सुख-सुविधाओं की ओर एक नये अंदाज़ और समझ के साथ फिर से देखा। उसने यह भी देखा कि झंडेधारी अपने को सही न मानते हुए भी अपनी बातों पर यों ही दृढ़ था। रमली के मन में सवाल पर सवाल उठ रहे थे। गलत को सही सिद्ध करने का यह खेल आखिर कब तक चलेगा? रूढ़ियां का ज़हर जब खोपड़ी में बस जाता है तो वह विवेक पर बार-बार हमला करता है। व्यक्ति को पगलाकर उसकी समझ का दायरा बांधकर ऐसे माहौल की रचना करता है जिसमें शोषण भी उसे आनंद लगता है। ख़िलाफ़त को अनसुना करने और लोक को अंधभक्ति की राह पर धकेलने में यह जमात माहिर है। औरतों के मुद्दे तो इनके लिए जले पर नमक हैं।

सभा जारी थी...

जलसे में औरतें ही नहीं, मर्द भी बड़ी संख्या में मौजूद थे। सभी के कान मंच पर लगे थे। बीच-बीच में कुछ जन संवाद भी हो रहा था। मैंने बिल पेश करते हुए इसकी प्राथमिकताएं बताई थीं। लेकिन मुझे हैरानी उस वक्त हुई जब देखा कि मंत्रिमंडल के जिन सदस्यों ने इसे अप्रूव किया था वही या तो चुप हो गये या खिलाफ खड़े हो गये। मेरे लिए औरतों के हित प्रथम थे और रहेंगे। टूटे विश्वास के साथ ऐसे मंत्रिमंडल में काम करना संभव नहीं था। मैंने जो बिगुल बजाया है उसकी आवाज़ दूर-दूर तक सुनाई पड़ रही है। इस्तीफा देकर आपके बीच आया हूं। शोषण को हमने संस्कृति बना लिया है। बात यहां तक बढ़ चली है कि औरतों के पक्ष में खड़े होकर उनके हक़ों की पैरवी करने पर नारेबाज़ी होती है। आखिर सरकार ढकोसलेबाज़ों के आगे नतमस्तक क्यों है? इस देश को कानून से भी अधिक प्लानिंग की जरूरत है। जितनी ये सभाएं और मंच महिलाओं के खिलाफ हैं महिलाओं को इससे सबक लेना चाहिए। घर-घर में औरतें हैं, वे ही सबसे अधिक श्रम करती हैं, फिर भी इतनी खिलाफत? ऐसे प्रतिनिधि मत चुनो जो तुम्हारे ही खिलाफ काम करें।'

'बहनों! तुम्हारे हक़ों से धर्म को कोई खतरा नहीं है। संस्कृति इससे मजबूत होगी। पर देश में ये मुर्दनी क्यों छायी है? कोई मुझे बताए औरतों के बिना संस्कृति कहां है? यही तो इसका निर्माण करती हैं। औरतों के बलिदानों पर पाखंडियों ने कब्ज़ा कर लिया है। भक्ति की मोह-माया ने दिन रात गुलामी के किले को मजबूत किया है। इस कारा को तोड़े बिना मुक्ति का सुख नसीब नहीं... मैं अपने सुख के लिए तुम्हारे भविष्य से समझौता नहीं कर सकता था और ना होते हुए देख सकता था इसलिए सब कुछ ठुकराकर तुम्हारे बीच आ गया हूं...समय उनका हिसाब लेगा जो धर्म के गुलाम बनकर संसद में बैठे हैं। इन्हें रूढ़ियों को बचाना है या मनुष्यों को! चुनाव लड़ने से पहले सोच लेना चाहिए था। इस जंगे-मुक्ति को जीते बिना हम पीछे हटने वाले नहीं हैं।'

सरनेम का चक्कर

मनोरमा गौतम, नई दिल्ली

कविता का सिटी कॉलेज में इंटरव्यू था। सुबह से तैयार हो वो बार-बार बालकनी से बाहर की ओर झांके जा रही थी और बुदबुदाए जा रही थी कि किसी भी तरह थोड़ी सी बारिश थमे तो मैं निकलू घर से। वैसे तो इंटरव्यू 10.30 बजे था लेकिन रिपोर्टिंग टाइम 10 बजे का था। उसने घड़ी की तरफ देखा 8:30 बज चुके थे फिर बुदबुदाई अब और देर करना सही नहीं है, जाने में भी तो एक-डेढ़ घंटे लग जाएंगे उसने अपना पर्स कांधे पर टांगा और अपने सभी डाक्यूमेंट्स से भरा बैग हाँथ में पकड़ा और माँ को आवाज लगाई-मम्मी मैं जा रही हूँ आप दरवाजा बंद कर लो। अगस्त का महीना था, लगातार बारिश हो रही थी हालांकि बारिश बहुत तेज नहीं हो रही थी, किन्तु पांच दिन से लगातार रिमझिम-रिमझिम बूंदाबांदी के कारण चारों तरफ गली, मोहल्लों, सड़कों पर पानी भरा पड़ा था। रास्ते कीचड़ से लबालब थे। घर से निकलकर कविता किसी तरह कीचड़ से बचते-बचाते सड़क पर पहुंचती है। सड़क पर भी जगह-जगह गड्ढों में पानी भरा था तथा इधर-उधर बिखरे पड़े कूड़ों पर बारिश की वजह से सड़ांध आ रही थी। कविता ने दस रुपए बचाने के मकसद से रिक्शा न करके पैदल ही चलना सही समझा। उसके घर से लगभग एक किलोमीटर पर ही मेट्रो स्टेशन था। पैदल चलते हुए जब उसके बगल से गाड़ियाँ निकलती तो वह सिकुड़ जाती, किसी तरह अपने कपड़ों को कीचड़ की छीटों से बचाने की मशक्कत करती हुई वो मेट्रो स्टेशन पहुंच जाती है।

मेट्रों की सीढ़ियों पर चलते समय उसे पीछे से एक आवाज सुनाई देती है- हेलो कविता... अरे मैडम कहां भागी चली जा रही हो? जरा रुको तो सही हम भी आ रहे हैं। कविता मुड़कर देखती है तो सामने उसकी परिचित अंकिता खड़ी होती है। हालांकि वो दोनों दोस्त नही हैं एक ही यूनिवर्सिटी तथा एक ही विभाग से पीएच.डी. करने के नाते रिसर्च-फ्लोर पर कई बार मिलना-जुलना तथा बातचीत हो जाती थी। उसे देख कविता ने मुस्कुराते हुए कहा-अरे अंकिता तुम!... बड़े दिनों बाद दिख रही हो...और सुनाओ कैसी हो?... कहाँ जा रही हो? अंकिता ने तपाक से जवाब दिया वही जहाँ तुम जा रही हो।...जल्दी चलो यार कहीं लेट न हो जाएँ (दोनों एक साथ बोलती हैं) मेट्रो में दोनों स्लेबस डिसकसन करने लगती हैं...उसी बीच कविता के मुख से निकला अरे यार बड़ा डर लग रहा है पता नही यहाँ भी होगा कि नहीं, अभी तक बहुत इंटरव्यू दे चुकी हूँ किन्तु हर जगह से बस निराशा ही हाथ लगी है...अब तो उम्मीद भी टूटती जा रही है...इस पर अंकिता झटके से बोलती है-तुम्हें क्या टेंशन, तुम तो रिजर्व हो, कोटे से हो, आज नहीं तो कल तुम्हारा हो ही जाएगा...हमें देखो जनरल में कितनी भीड़ है, कितना भी मेहनत कर लो, कितने भी अंक ले आओ पर कोई फायदा नहीं...तुम लोगों का तो अच्छा है, ज्यादा मेहनत भी नहीं करनी पड़ती बस 50% ले आओ, काम हो जाता है। आरक्षण जो है (एक कुटिल मुस्कान के साथ अंकिता ने कहा)। कविता के चेहरे के भाव को देखकर उसे आभास हुआ कि उसकी बात कविता को बुरी लग रही है। दूसरे ही पल उसने कविता का हाथ पकड़ते हुए एक तेज किन्तु नकली हंसी हंसते हुए कहा- अरे यार मैं तुझे थोड़े ही कह रही हूँ, दुनिया में तेरे अलावा और भी हैं, मैं उन्हें कह रही हूँ। तू मेरी बात को बिल्कुल भी माइंड मत कर। मैं तो ऐसे ही सामान्य बातें कर रही थी।...मेट्रो अपनी गति से चली जा रही थी। सुबह का समय था सभी ऑफिस तथा स्कूल, कॉलेज जाने वाले लोग थे इसलिए मेट्रो लबालब भरी हुई थी। हालांकि वो दोनों महिला आरक्षित डिब्बे में थी, बैठने को सीट तो नहीं मिली थी किन्तु महिलाओं के बीच में खड़ी थी इसलिए सुरक्षित थी। कविता देखती है मेट्रो में जितने लोग उतनी तरह की बातें कुछ महिलाएं आपस में अपने खड़ूस बोस के बारे में बातें कर रही थी, कुछ पारिवारिक महिलाएं अपनी सास-ननद के व्यवहार से परेशान उनकी बातें कर अपना दिल हल्का कर रही थीं। कॉलेज जाने वाली छात्राएं पढ़ाई तथा एग्जाम की बातें कर रही थीं, और बहुत सी महिलाओं के लिए मेट्रो टाइम कुछ जरूरी काम निबटाने का हो जाता है, जैसे वही समय होता है जब वो कुछ पल के लिए फ्री होती हैं। ऐसे में वो अपने घर से ऑफिस तक के मेट्रो के सफर में अपने खास-खास दोस्तों तथा रिश्तेदारों से फोन पर बातचीत कर लेती हैं उनकी खैरियत पूछ लेती हैं...कविता देखती है कि इस भागदौड़ भरी जिन्दगी ने इन्सान को क्या से क्या बना दिया है... हर व्यक्ति दौड़ता-भागता परेशान... मेट्रो के झटके से उसका ध्यान भंग होता है। इंटरव्यू का डर कहीं न कहीं मन में समाया था जिसके कारण मन ही मन में वो बी.ए. का स्लेबस दोहराने लगती है...भीड़ में तो थी किन्तु मस्तिष्क इंटरव्यू की चिंताओं से ही घिरा हुआ था...कुछ देर चुप्पी के बाद अंकिता ने बोलना शुरू किया...देखो न कविता हम मेट्रो के लेडीज कोच में है...भीड़ में खड़े हैं किन्तु निश्चिंत और सुरक्षित हैं...सरकार ने कितना अच्छा किया न जो महिलाओं के लिए एक अलग डिब्बा आरक्षित कर दिया...इसमें कोई पुरुष नहीं आ सकता...सरकार ने सभी महिलाओं को बराबर सम्मान दिया फिर वो चाहे किसी भी वर्ण, वर्ग, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि से सम्बन्धित क्यों न हो...ऐसे ही आरक्षण के मामले में भी किया जाना चाहिए...आरक्षण यदि किया जाए तो सभी जाति-धर्म के लिए किया जाए न कि केवल दलितों तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए ही...कविता का कुछ जवाब न पाने पर...उसने कविता को झुंझलाते हुए कहा- कविता मेरा मतलब है कि आरक्षण को लेकर पक्षपात क्यों? भीड़ बहुत थी सब आपस में एक-दूसरे से सटे खड़े थे वो दोनों कितने भी धीरे से बोल रही थीं किन्तु आस-पास वालों को उनकी आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही रही थी...अंकिता की यह बात सुन पास ही खड़ी दो कॉलेज जाने वाली लडकियाँ जिनकी उम्र लगभग 18 से 20 वर्ष रही होगी उन्होंने भी अंकिता की बात पर जोर देते हुए कहा-हाँ मैम बिल्कुल सही कह रही हैं आप...आरक्षण ही खत्म कर देना चाहिए इस आरक्षण की वजह से ऐसे-ऐसे लोगों का एडमीशन कॉलेज में हो जाता है, जिनकी औकात भी नहीं होती कॉलेज जाने लायक...युवा लड़कियाँ थी उनके खून में गर्मी थी...उन दोनों लड़कियों की बात सुन आस-पास की और महिलाएं बोलने लगी...उनमें से एक लम्बी गोरी चिट्टी महिला ने अपना चश्मा उतारते हुए भौंहें ताने कुछ ऐसा बोला जिसको सुन कविता के पैर तले की जमीन ही खिसक गई...वो गुर्राए शेरनी की तरह बोली- इस आरक्षण ने तो हमारी नाक में दम कर दिया है...इनके कारण हमारे बच्चे सफर करते हैं...हर चीज में आरक्षण चाहिए इन दलितों को...अब क्या सरकारी अस्पतालों में आरक्षण के कारण कम्पाउंडर बनने वाले व्यक्ति को डॉक्टर बना दिया जाए...जब ऐसे ही आरक्षण से कम मैरिट वाले लोगों को डॉक्टर बना दिया जाएगा तो समझो कितने लोगों की जान के साथ खिलवाड़ हो जाएगा...और हमारे होनहार बच्चे जो सच में डॉक्टर बनने लायक हैं या होंगे वो तो ऐसे ही डिग्री लेकर भटकते रह जाएंगे...और यह सब होगा सिर्फ इस आरक्षण के कारण। इस समय कविता चक्रव्यूह में घिरे अभिमन्यु की तरह लग रही थी, जिससे निकल पाना मुश्किल था...एक ओर इंटरव्यू की टेंशन दूसरी ओर मेट्रो का यह माहौल...कुछ देर सोचकर कविता बोली...माफी चाहती हूँ, लेकिन मैं आप लोंगों की इस बात से बिल्कुल भी सहमत नहीं हूँ...मेट्रो, बस या रेल में स्त्रियों के लिए आरक्षित सीट या आरक्षित डिब्बा होना एक अलग बात है किन्तु शिक्षा तथा नौकरी पाने के स्तर पर यह एकदम अलग बात है। आप लोगों ने दलितों का इतिहास नहीं पढ़ा या सुना-जाना...आप लोग दलितों के जीवन से इतने भी अनभिज्ञ नहीं हो...कितना दूभर और नारकीय रहा है दलितों का जीवन, कितना अन्याय और अत्याचार सहा है इन लोगों ने....ये लोग तो अब लिखने-पढ़ने लगे हैं यदि शिक्षा ग्रहण करने के लिए तथा नौकरी पाने के लिए इन्हें आरक्षण के रूप में थोड़ा सहयोग मिल रहा है तो उसमें गलत ही क्या है...स्वर्ण तो पहले से ही सक्षम हैं, दलितों से सौ गुना अधिक अच्छी स्थिति है उनकी...कविता अपनी बात को पूरा कर

पाती उसी बीच एक और महिला ने प्रतिवार किया- वह तुनक कर बोली-एक तरफ तुम दलित बराबरी की बात करते हो और दूसरी तरफ आरक्षण की भीख भी मांगते हो...मिल तो गई है समाज में दलितों को बराबरी। अब कहाँ रहा भेदभाव, अब तो सब एक साथ में उठ-बैठ रहे हैं, खा-पी रहे हैं दफ्तर आदि में एक साथ नौकरी कर रहे हैं, अब कौन सी बराबरी रह गई है, रही शिक्षा ग्रहण करने और नौकरी पाने की बात जैसे स्वर्ण मेहनत कर रहे हैं वैसे ही दलित भी मेहनत करे कॉम्पिटीशन फाइट करे...फिर बनाए समाज में अपना स्थान उन्हें रोक ही कौन रहा है...आरक्षण के दम पर आगे बढ़ना ये कहाँ की बहादुरी है...फिर कुछ बड़बड़ाते हुए वह अपने गंतव्य स्थान पर उतर गई...उस पल कविता को सबने ऐसा एहसास कराया जैसे आरक्षण उनका कोई खजाना या बपौती सम्पत्ति हो, जिसको दलितों ने उनसे छीनकर उस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया हो...कविता उस समय अजीब सा घुटन महसूस कर रही थी। वह भीड़ में होकर

भी एकदम अकेली पड़ गई थी... एक-एक कर सभी यात्री अपने-अपने गंतव्य स्थान पर उतरते जा रहे थे। आखिरी स्टेशन सिटी कॉलेज का ही था...कविता गहरी चिंतन में खोई हुई जड़ बनी खड़ी थी...तभी अंकिता ने कविता के कंधे पर हाथ रखकर मेट्रो के दरवाजे की ओर इशारा करते हुए कहा, चले मैडम! अपना स्थान आ गया। कविता ने खुद को सम्भाला और अपने क्रोध पर नियंत्रण रखते हुए मेट्रो से बाहर निकली।

कॉलेज वहां से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर था इसलिए दोनों ने ऑटो किया और 10:15 बजे तक कॉलेज पहुंच गईं। पहले जनरल का इंटरव्यू था उसके बाद एस.सी. का और लास्ट में एस.टी. का था। एस.सी. में कविता का चौदहवां नम्बर था। लगभग दो बजे कविता की बारी आई। कविता ने इंटरव्यू रूम में प्रवेश किया...सामने चार लोग बैठे थे, कविता ने सभी को नमस्कार किया और उनके द्वारा किए गए इशारेनुसार कुर्सी पर बैठ गई। प्रिंसिपल साहेब ने कविता का रिज्यूम मांगा हालांकि रिज्यूम में कविता का नाम साफ-साफ लिखा था किन्तु फिर भी प्रिंसिपल साहेब ने उससे उसका नाम पूछा....अपना नाम बताईये...कविता ने सकुचाते हुए जवाब दिया- जी कविता गौतम... सुनते ही सामने सोफे पर बैठे प्रिंसिपल साहेब ने पहले ध्यान से कविता को देखा फिर दुबारा रिज्यूम को देखने लगे और अचम्भित भरे स्वर में कहा ....अरे तुम तो रिजर्व कोटे से हो, फिर गौतम सरनेम क्यूँ लिखती हो, गौतम तो ब्राह्मण होते हैं न....न जाने क्या सोंचकर फिर उन्होंने बात को घुमाते हुए कहा मेरा मतलब है कि मैंने तो अभी तक सिर्फ ब्राह्मणों को ही गौतम सरनेम लिखते देखा है...फिर उन्होंने अपनी सफाई में कहा मेरी बात का कुछ गलत मतलब मत निकालना मैं तो अभी तक यही जानता था कि गौतम जनरल होते हैं...खैर छोड़ों जब तुमने या तुम्हारे माता-पिता ने यह सरनेम लिखा है तो कुछ सोच-समझकर ही लिखा होगा...फिर भी उनसे रहा नहीं गया उन्होंने कविता से पूछा कि- ये सरनेम तुम ऐसे ही लिखती हो कि तुम्हारे सर्टीफिकेट पर भी ये सरनेम लिखा है? कविता ने अपने हाथ में ली हुई फाइल को खोलकर सर्टीफिकेट दिखाते हुए कहा कि- सर ऐसे ही नहीं लिखती, मेरे सर्टीफिकेट पर भी है... फिर कविता ने बताया कि सर मेरे पिता बौद्धिष्ट हैं, उन्होंने बौद्ध-धर्म अपनाया है, इसलिए हम अपने नाम के साथ गौतम लिखते हैं...शायद प्रिंसिपल साहेब को इस तरह कविता का जवाब देना पसंद नहीं आया...वो अपनी बात को सर्वोपरि रखते हुए कहते हैं कि वैसे भी आजकल लोग अपनी जाति को छुपाने के लिए कुछ भी सरनेम लिख लेते हैं... फिर अपने अगल-बगल बैठे हुए अन्य शिक्षकों की ओर देखते हुए उनसे भी अपने पक्ष में हुंकारी भरवा लेते हैं। ...थोड़ी देर सोचकर वह अपना दूसरा प्रश्न दागते हैं और कविता को व्यंग्य में सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि- अच्छा गौतम जी, ये बताइए आपको क्या लगता है कि दलित साहित्य क्या दलितों की वास्तविक व्यथा को व्यक्त करता है या फिर आधी हकीकत और आधा फसाना वाला हाल है...आपको क्या लगता है हमेशा विधवा-विलाप करना सही है...जो दलितों के साथ इतिहास में हुआ उसका मुझे भी खेद है, लेकिन इसका मतलब तो यह नहीं होता कि एक ही बात के लिए रोज-रोज रोया जाए...समय बीत रहा है जमाना कहाँ से कहाँ जा रहा है, लेकिन यहाँ है की दलितों का रोना ही नहीं खत्म होता...उस पल कविता को समझ नहीं आ रहा था कि ये उससे सवाल किया जा रहा है या फिर उस पर व्यंग-बाण छोड़ा जा रहा है। कविता की स्थिति ऐसी हो गई थी काटो तो खून नहीं...फिर भी खुद को सामान्य रखते हुए हिम्मत कर कविता ने जवाब दिया- सर आप तो विद्वान हैं, मुझसे भी बड़े ज्ञानी हैं, आपको तो इस विषय में मुझसे ज्यादा पता होगा। कविता का जवाब सुन प्रिंसिपल साहेब ने झेंपते हुए कहा...धन्यवाद गौतम जी, अब आप जा सकती हैं। रूम से बाहर निकलते समय ही कविता समझ चुकी थी कि यहाँ भी उसका सेलेक्शन नहीं होना है। अंदर की स्थिति के बारे में किसी को न पता चले इसलिए कविता न चाहते हुए भी एक बनावटी हंसी चेहरे पर बिखेरे हुए कमरे से बाहर आई। अंकिता जनरल थी, उसका इंटरव्यू पहले ही हो चुका था, इसलिए वो जा चुकी थी। कविता ने सोचा कि अब क्या रुकना? अब चला जाए। धीरे-धीरे चलकर वो कॉलेज के गेट तक आई। गेट के साईड में थोड़ी सी ही दूरी पर पत्थर का एक चबूतरा था कविता कुछ पल के लिए उस पर बैठ जाती है और कॉलेज की तरफ देखते हुए बोलती है- क्या दलित होना अपराध है? क्या गौतम सरनेम किसी जाति विशेष की बपौती सम्पत्ति है? इतने बड़े शैक्षिक स्तर पर आकर इस तरह का सवाल और इस तरह की मानसिकता। इससे पता चलता है कि जातिवाद की जड़े गहरी फैली हुई हैं, जिसको जाने में अभी सदियों लग जाएंगी।

नानी का खूंटा

निर्देश सिंह, (उ.प्र.)

कहानी हर घर में होती है और कहानी में कोई न कोई घर भी होता है। घर में कमरे, आंगन, खिड़की, दरवाजे, जीना और छत सभी होते हैं। इन सभी की भी कोई न कोई कहानी होती ही है। फिर घर चाहे किसी का हो। हां, छोटी जाति के लोगों के घर में कमरे कम होते हैं। किसी-किसी के घर में तो एक कमरा और कमरे में ही उनकी दुनिया होती है। लेकिन कहानी हर घर में होती है क्योंकि हर घर में महिलाएं रहती हैं। उनके लिए घर में एक कोना होता है। कभी वह उस कोने में बर्तन मांजती हैं, नहाती-धोती हैं। और हर घर में होता है एक अदृश्य खूंटा।

मेरी कहानी के केंद्र में भी खूंटा ही है और इस कहानी में भी एक नायिका है। अब तो वह सिमटती जा रही है। उसके मांस के हिस्से गलते जा रहे हैं। आंखें धंसती जा रही हैं। पहले जिन गालों पर किस करते समय जिस तंदरूस्त शरीर का अहसास होता था, अब नहीं होता। अब खोपड़ी का ऊपरी हिस्सा खुलकर दिखने लगा है। लेकिन मेरी नानी तो नायिका है। यह इसके बावजूद कि उसके ऊपर बढ़ती उम्र का असर है। अब भी मेरे साथ पकड़ा-पकड़ी या फिर कबड्डी खेलने सी नहीं हिचकती। इतना भी डर नहीं लगता कि बुढ़ापे में एकाध हड्डी इधर-उधर हो गई तो हाय दईया करके कराहना पड़ेगा।

खैर, कहानी तब से शुरू होती है जब मैं यानी उसकी बेटी की बेटी बहुत छोटी थी। नानी का एक खूंटा था। उस खूंटे में एक भैंस बंधी रहती थी। नानी सुबह से लेकर शाम तक उस खूंटे के इर्द-गिर्द रहती। कभी भैंस को सानी-पानी देती तो कभी उसका गोबर उठाकर किनारे में रख देती और जब काम चलने भर गोबर इकट्ठा हो जाता तो उपले थापती। उपले थापते समय उसके हाथों का जादू साफ-साफ दिखता था। ऐसा लगता कि नानी के हाथों का निशान एक पेंटिंग बन गया हो। मैं उससे सवाल करती।

नानी, तुम्हारे हाथ इतना ऊपर कैसे पहुंच जाते हैं?

तुम कहां आ गई मेरी लल्ली। जाओ यहां से।

नहीं नानी, मुझे भी थापनी है।

जाओ नहीं तो मारूंगी एक थप्पड़। नानी उपले पाथती जाती और मुझे डांटती जाती। लेकिन मैं भी उसका पीछा कहां छोड़ती। लगी रहती दिन भर उसके पीछे-पीछे। अक्सर गर्मी की छुट्टियों में मैं जाती थी नानी के यहां। तब एक महीना तो रहना होता ही था।

एक बार नानी बीमार पड़ गई। मां को जानकारी मिली तो हम सब भागकर गए। बगल के एक अस्पताल में भर्ती थी। मां तो देखते ही रोने लगी। तब नानी ने कहा कि मेरी दवा तो तुम अपने संग ले आई हो। फिर क्यों रोती हो। दो दिन में ठीक हो जाऊंगी। लल्ली को कुछ दिन मेरे पास रहने दो।

ठीक है मां, लेकिन पहले तुम चंगी हो जाओ। मां ने आंसू पोंछते हुए कहा।

नानी, तुम्हें हुआ क्या है? चलो न घर चलते हैं। मैंने कहा।

मेरी बात सुनकर सब हंस पड़े। नानी भी। एकदम वही हंसी जैसे वह हंसती है आज भी। मुंह पूरा खोलकर और तेज आवाज में। यदि दूसरा कोई बच्चा रात में सुन ले तो मारे डर के रोने लगे। मैंने तो एक दिन कह भी दिया कि नानी, तुम तो एकदम रावण की तरह हंसती हो।

नानी ने डांटा। रावण को जानती हो?

हां, एक राक्षस था जिसने सीता का अपहरण कर लिया था और राम ने मार गिराया था। मैंने कहा।

नहीं, मेरी लल्ली। राम और रावण सब ब्राह्मण सब का रचा-गढ़ा है। वे हमारा मजाक उड़ाते हैं। नानी ने कहा।

वह कैसे नानी?

बताऊंगी एक दिन पूरी कहानी। अभी सो जाओ।

नहीं, आज नहीं सोऊंगी। पहले कहानी सुनाओ।

नानी ने फिर कहानी सुनाई कि रावण एक छोटी जाति का आदमी था। उसकी बहन की नाक राम और लक्ष्मण ने काट ली और रावण के डर से जंगल में छिप गए। रावण जब उनकी तलाश में जंगल में उसकी कुटिया में गया तब राम वहां घर पर नहीं था। उसके घर में उसकी पत्नी थी। वह झूठ बोल रही थी।

फिर क्या हुआ नानी?

फिर क्या होना था। रावण ने सोचा कि राम-लक्ष्मण नहीं है तो क्या हुआ। राम की पत्नी है। उसको ही उठाकर ले जाता हूं। स्वयं उनकी तलाश में आएगा और तब मजा चखाऊंगा बच्चे को।

लेकिन नानी, किताब में तो कुछ और लिखा है। मैंने नानी से कहा।

किताब लिखता भी तो ब्राह्मण ही है। मुंआ यह कब लिखने लगे कि राम रावण से बहुत कमजोर था और डरपोक था।

नानी की कहानियां ऐसी ही होती थीं। एकदम अलग। जैसी नानी, वैसी कहानी।

एक दिन नानी बहुत गुस्से में थी। वह जोर-जोर से बोल रही थी- बड़े आए हैं महल-अटारी वाले और खेत-खलिहान वाले। हम क्या भिखमंगे हैं या फिर चोर कि किसी का फसल काटें। जब देखो तब धौंस दिखाती रहती है करमजली।

आवाज दूसरी तरफ से भी आ रही थी- हम सब जानते हैं कि तुम मकई के पौधे कहां से ला रही हो। हमने तो कई बार देखा है। चोरनी कहीं की।

नानी की बात सुनकर मैं भी दौड़ पड़ी। पूछा तो कहने लगी कि पड़ोस वाली ठाकुर की जोरू गालियां दे रही है।

लेकिन नानी, हुआ क्या? यह तो बताओ?

अरे होना क्या था। मैं भैंस के लिए चारा लेकर आ रही थी कि रास्ते में वह करमजली मिल गई। देखते ही बोली कि चारे में मक्के के पौधे हैं और मैंने उसके खेत से चुराए हैं। मैंने भी बोझा पटककर उसे जवाब दिया। मन में तो आया कि उसके माथे पर बोझा फेंक दूं और कहूं कि देख लो और जाकर अपने खेत देख लो। पांव से महावर तो उतरता नहीं और चली आई मुझे सुनाने कि मैंने उसके खेत से मक्के के पौधे काट लिए हैं।

लेकिन नानी, यह तो गलत है? ऐसा क्यों कहा उसने?

कुछ मेरी बन्नो रानी, यह सब जाति का फेरा है। उस करमजली को क्या पता कि मैंने अपनी भैंस के लिए चारा अपने खेत से काटा है। मेरे पास भी तो है दस कट्ठा जमीन।

नानी, क्या सचमुच यह सब इस कारण से है कि हम छोटी जाति के हैं? यदि हैं तो क्या कोई उपाय नहीं है? मैंने नानी से पूछा।

समय सबका ध्यान रखता है मेरी बच्ची। यह तो आज की बात है। ऐसा तो बहुत पहले से होता आया है। इसी गांव में पहले यह परंपरा थी कि हर छोटी जाति की दुल्हन अपने घर का चूल्हा फूंकने से पहले गांव के बाभन के घर में रोशनी बनाएगी।

मतलब?

मतलब यह कि शादी के चौथे दिन यह परंपरा होती थी। दुल्हन को जाकर बाभन के घर खाना बनाना पड़ता था और उस बाभन को खिलाना भी पड़ता था।

यह तो बहुत अपमानजनक था नानी। किसी ने विरोध नहीं किया?

हुआ न विरोध। तुम्हारी परनानी यानी की मेरी सास ने विरोध किया। उन्होंने बाभन के घर जाने से मना कर दिया। तब खूब बड़ी पंचायत हुई। गांव-समाज से बाहर निकाल दिया गया। लेकिन बाद में सब छोटी जात वालों ने अपनी दुल्हनों को भेजना बंद कर दिया। खून-खराबा भी हुआ।

अच्छा! तो इसका मतलब यह कि ये ठाकुर ऐसे ही धौंस दिखाते रहे हैं।

अब इनकी धौंस इनके चूल्हे में जाए। कौन परवाह करता है। हम तो अपनी कमाते हैं और खाते हैं। उनकी तरह थोड़े न हैं कि साज-श्रृंगार करके घर में बैठी रहें। वह भी कोई जीवन है। देह में न हवा लगती है न सूरज की भरपेट रोशनी। तुम छोड़ो यह सब। बड़ी होगी तो खुद समझ जाओगी।

नानी का अंदाज ही ऐसा है। वह बड़ी से बड़ी बात ऐसे कह जाती है मानों कुछ कहा ही नहीं। अब उसी दिन की बात है जब गांव में अम्बेडकर बाबा की प्रतिमा लगायी जा रही थी और गांव के ठाकुर के लौंडे हरवे-हथियार लेकर खड़े थे। मेरी नानी ने लाठी उठा ली और कहने लगी कि हमारे मर्दों से बाद में लड़ना मुंहझौंसो। पहले हमसे लड़कर दिखाओ।

उस दिन तो गजब ही हो गया। उस दिन तो नानी ने पूरा घर आसमान पर उठा रखा था। वह बार-बार

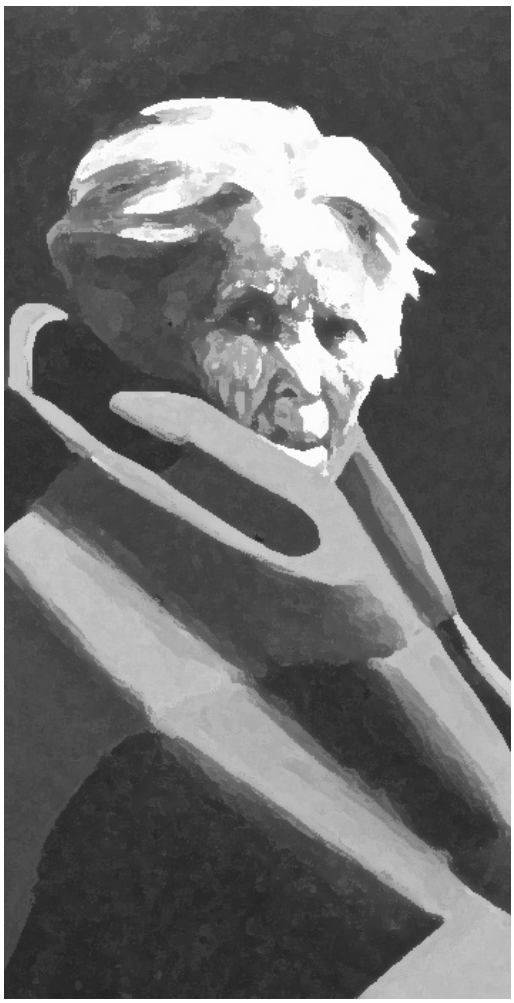

कह रही थी कि मैं केवल बेटों की मां नहीं हूं। मेरी पांच बेटियां भी हैं। जो भी होगा इंसाफ होगा। किसी के साथ बेईमानी नहीं।

नाना ने कहा, 'बेटियां तो परायी होती हैं। क्या तुम इतना भी नहीं समझती?'

अच्छा, बेटियां परायी हैं तो यह बताओ कि पिछले साल जब बीमार पड़े थे तब किस बेटे और बहू ने तुम्हारी सेवा की थी। आज बेटा-बेटा चिल्ला रहे हो। नानी ने उपले की नयी खेप को धूप में डालते हुए कहा।

तो क्या अब बेटियों को भी जायदाद में हिस्सा दोगी? बेटे कहां जाएंगे? और यदि बेटियों को हिस्सा दिया तो क्या इससे कुल खानदान की परंपरा न टूट जाएगी?

नानी फिर से बरस पड़ी। बेटे मेरी कोख से आए हैं तो क्या हमारी बेटियां आम के खोरड़ से आई हैं। एक तो तुमने किसी को पढ़ाया नहीं और जैसे-तैसे सभी का निर्वाह कर दिया। मैंने कुछ नहीं कहा। लेकिन अब यह न होने दूंगी। मेरी बेटियों को जायदाद में हिस्सा दो। मुझे कुछ नहीं सुनना।

अरी पागल, औरतों के नाम भी कोई संपत्ति होती है क्या। कलियुग में कौन सा अधर्म करवाने पर तुली हो और जानती हो बेटे लात मारकर घर से भगा देंगे। अब इस उमर में हम दोनों कहां जाएंगे? नाना की आंखों में मजबूरी साफ दिख रही थी।

कौन सा अधर्म हो जाएगा? जरा मैं भी तो जानूं? जमीन पर केवल बेटों का ही नाम हो, किस शास्त्र में लिखा है। अरे अब तो समझो। यह तुम्हारा टैम नहीं है। अब देखो तो बेटियां क्या नहीं कर रही हैं। स्कूल-कालिज जाती हैं। तरह-तरह के कपड़े पहनती हैं। हमारी तरह थोड़े न हैं कि चार कपड़ों से जवानी गुजार दी। अब सब बदला है तो तुम भी बदलो। नानी ने नाना को समझाया।

कुछ भी कहो तुम। मैं जीते जी यह अधर्म नहीं करने वाला। गांव-समाज क्या कहेगा कि बेटा होते हुए बेटी-दामाद को जमीन-जायदाद दी। कान खोलकर सुन लो। मैं यह अधर्म नहीं करने वाला। कहते हुए नाना घर से बाहर निकल गए।

यह सब मेरी आंखों के सामने हो रहा था। नानी बड़बड़ बोले जा रही थी। जाने वह किसको सुना रही थी। शायद वह दीवारों को सुना रही थी। गोया दीवारों के पास कान हो और वह एक दिन घर में रहने वालों को उसकी कही बातें सुनाएंगी।

नानी, तुम जिद क्यों कर रही हो। मां ने तो पहले ही मना कर दिया है कि उसे तुम्हारी संपत्ति में कोई लोभ नहीं है। फिर नाना से झगड़ा किस बात का? मैंने नानी को चाय का प्याला बढ़ाते हुए कहा।

बात यह नहीं है कि तुम्हारी मां को संपत्ति में हिस्सा चाहिए या नहीं चाहिए। मुझे तो इस संपत्ति में अब अपना हिस्सा चाहिए। मैं भी चाहती हूं कि इस धरती पर दो मुट्ठी जमीन ही सही, मेरे नाम से हो। मेरा जो मन करे वह मैं करूं। जो बोना चाहूं वह बोऊं।

तो क्या तुम इस उमर में खेती करोगी नानी?

हां, क्यों नहीं करूंगी? मैं चाहती हूं कि एक खेत में सब फल के पेड़ हो। आम हों, जामुन हों, अमरूद हों। मेरे बाद जब तुम सब आओगी तो तुम्हारे बच्चे उसके फल खाएंगे।

क्या नानी, तुम बात को कहां से कहां ले जाती हो। मुझे तो शादी ही नहीं करनी है।

शादी नहीं करोगी तो क्या अकेले जीवन गुजार दोगी?

और नहीं तो क्या? तुम हो, मां है। तुम सबको छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी।

अच्छा ठीक है। कहीं मत जाना। जरा बाहर देखकर आओ। तुम्हारे नाना का मुंह अब भी उतरा है क्या? जाकर कहो कि चाय ठंडी हो रही है।

अगले दिन सुबह-सुबह नानी का चेहरा लटका हुआ था। मुझे लगा कि नानी कल की बात से परेशान है। छोटे मामा मना रहे थे।

मां, दे दो सब दीदी को हिस्सा। मैंने थोड़े न रोका हुआ है।

ऐसे कैसे दे देंगी। हमारा क्या होगा? छोटी मामी ने रसोईघर से ही चिल्लाते हुए कहा।

मां और बेटे की बातचीत में तुम कहां से टपक पड़ी। मामा ने डांटते हुए कहा।

हां, मेरा कहां कुछ है इस घर में। जो है वह आपका ही तो है। नानी ने इस बार धीमी लेकिन चुटीले अंदाज में कहा।

ऐसा नहीं है बहू। यह घर जितना मेरा है उतना ही तुम्हारा भी है। तुम भी तो मेरी बेटी के जैसी ही हो। मैं तो चाहती हूं कि सारी जमीनें घर की महिलाओं के नाम हों।

तो क्या हम सारे मर्द बे-जमीन हो जाएं? नाना ने बगल वाले कमरे में खांसते हुए कहा। मामी ने अपना सिर पल्ला से ढंका और उन्हें चाय देने गईं। नाना ने कहना जारी रखा- बेटियों को जमीन देंगे तो हमारी बहुओं का क्या होगा?

दोनों खुश थे। उन्हें लग रहा था कि उन्हें एक-दूसरे का साथ मिल रहा है।

मैं भी तो यही कह रही हूं कि हमारी बहुओं का क्या होगा? बड़े को देखो तो कैसे रोज शराब पीकर घर का अनाज भट्ठी में झोंक आता है। उसको तो परवाह भी नहीं है किसी की। और इसको देखो, सुबह से जिद पर अड़ा है कि टैक्सी खरीदनी है। नानी बोल रही थी।

मां, मैं टैक्सी इसलिए तो खरीदना चाहता हूं ताकि कुछ पैसे कमा सकूं। छोटे मामा ने कहा।

सब पता है कि तुम्हें टैक्सी क्यों चाहिए। खेती तो होती नहीं। पढ़ाई करनी थी तब तो पढ़े नहीं। कुछ करना है तो अपने बूते करो। खबरदार जो एक इंच भी जमीन बेचने की बात कही। एक तो पहले से ही डेढ़ एकड़ जमीन है और ऊपर से हर दो साल पर कुछ न कुछ बेचते ही जा रहे हो सब मिलकर। ऐसे तो तुम सब बिना जमीन के हो जाओगे।

लेकिन मां, यदि जमीन दीदी सबके नाम हो जाएगी तब क्या होगा। हमारे हिस्से में कुछ नहीं आएगा।

क्यों तुम कमा नहीं सकते। मेहनत करो। आज जो जमीन है, वह तुम्हारे बाप को विरासत में नहीं मिली। हम दोनों ने मिलकर मेहनत किया और जमीन बनाई।

यह तो ठीक है। लेकिन अब क्या हो? इतना झगड़ा-कलह के किसकी बरकत होगी। छोटे तुम अपने काम पर जाओ। नाना ने युद्ध विराम की घोषणा कर दी।

ऐसी ही है नानी। एक पल आग तो दूसरे पल ठंडा पानी। उसके गुस्से में भी कुछ खास रहता है। इसके बावजूद नानी बहुत बुझी-बुझी रहती थी। एक दिन मैंने पूछा तो कहने लगी कि हम सबका जीवन इस भैंस के समान है। एक खूंटे से बंधे पड़े हैं। जब छोटी थी तब बाप-भाई के खूंटे पर थी और शादी के बाद पति के खूंटे पर। हम महिलाओं के जीवन में यह खूंटा ही है। कभी-कभी तो लगता है कि यह खूंटा हमारे सीने में छूरे की तरह घोंप दिया गया है और हम इसे निकाल भी नहीं पा रहे हैं।

अभी पिछले दिनों नानी से मिलकर आयी। उन्होंने खूंटे वाली बात फिर दुहरायी। मैंने नानी के खूंटे को अपने सीने में घोंपा हुआ पाया है। क्या सचमुच इतना मजबूत है नानी का खूंटा।

लड़की तो अच्छी है

ज्योति पासवान, प. बंगाल

कुर्सी पर अमृता सिर झुकाए चुपचाप बैठी जवाब का इंतजार कर रही है। सामने की कुर्सी पर रिटायर्ड एस.पी. एवं उनकी पत्नी तथा बगल की कुर्सी पर लड़के के मामा बैठे हैं। चौकी पर लड़के के चाचा, जिन्होंने अभी हाल ही में बी.डी.ओ. के पोस्ट से रिटायमेंट लिया है। आम दिनों से आज अमृता देखने में सुंदर लग रही है, लगे भी क्यों नहीं आज उसने थोड़ा शृंगार जो किया है, वरना उसने तो अपने हाथों से एक अदना सा कड़ा भी यह कहकर उतार फेंका था कि टाइपिंग करते समय इससे मुझे उलझन होती है। स्पीड भी कम हो जाती है। वह आज काले रंग के बोट नेक की कुर्ती और ब्राउन कलर के प्लाजो और साथ में बेबी पिंक कलर का दुपट्टे के साथ अटरेक्टिव के साथ-साथ एक कॉन्फीडेंट लड़की लग रही थी। हल्की रेड शेड में मैट लिप्स्टिक और गहरे काजल, साथ ही अमृता का हँसमुख होना चेहरे को खुबसूरत बना रहे थे। वह मुस्कुराहट के साथ प्रत्येक सवाल का जवाब बड़ी ही शालीनता एवं सावधानी के साथ दे रही थी। क्योंकि उसे यह पता था कि यह किसी प्रोफेसर की नौकरी का इंटरव्यू नहीं था, जहाँ उसके जवाब की त्रुटियों को दूर कर उसे माफी मिल जाएगी। यहाँ तो अमृता को लड़के के परिवार के झूठे स्वाभीमान एवं अपनी लड़की होने की सीमा का भी ध्यान रखना था। क्योंकि यहाँ बाबा साहब के द्वारा बनाये गए आर्टिकल-19 का पालन करना अमृता के लिए हानिकर ही नहीं, उसके भविष्य के लिए भी घातक था। यहाँ अमृता ने बाबा साहब के दिये गये संविधान के उस उपबंध को भी भुला दिया था कि उसे वाक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी प्राप्त हुई है। हालांकि उसकी यह सावधानी उसके लिए फायदेमंद भी प्रमाणित हुई। उसके जवाब जो इतने सधे हुए थे। वह जानती थी कि जवाब वैसे ही दिये जायें, जिनसे उठने वाले सवालों का जवाब भी वह दे पाये। उसने जवाब देने की यह कुशलता यू.पी.एस.सी. की तैयारी करते वक्त सीखा था। अमृता से नाम, भाई-बहन के बारे में सवाल करने के बाद, लड़के के चाचा ने कहा- अभी आप क्या कर रही हैं? जी! पीएच.डी. कर रही हूँ। एम.ए. कहाँ से किया था? दिल्ली युनिवर्सिटी से। नेट कब पास किया? एम.ए. पास करते ही।

किस साल? 2012 में। अच्छा! फिर कुछ सेकेंड बाद लड़के के पिता ने पूछा- दिल्ली में कितने दिनों तक रही? कुछ सोचते हुए अमृता ने जवाब दिया- जी! दो-तीन सालों के बाद ही मैं वापस आ गई थी। तूमने यू.पी.एस.सी. की तैयारी किस मिडियम से किया था?

जी, हिन्दी मीडियम से। क्या तुमने पूरी पढ़ाई भी हिन्दी मीडियम से ही किया है?

जी हाँ। मैंने स्कूलिंग हिन्दी मीडियम, ग्रेजुएशन हिन्दी ऑनर्स से, एम.ए. भी हिन्दी से ही किया है।

फिर, चाचा ने पूछा- तुम्हारे पापा ने कहा था कि तुमने पी.टी. भी क्लियर किया था?

हम्म! बी.पी.एस.सी. का मेंस कितने नम्बर से छूटा था?

जी, दो नम्बर से।

क्या उस समय तुम दिल्ली से वापस आ चुकी थी?

हाँ। वापस क्यों आ गई? जब लगातार सिविल सर्विसेस में रिजल्ट हो रहा था?

उसने कहना तो चाहा था कि उसके पिता ने इस ढोंगी समाज की दुहाई दे-देकर उस पर तरह-तरह के मानसिक दबाव बनाये थे। जिसे सुनकर उसने अपने पिता के मानसिक सुकून के लिए वह पार्ट टाइम प्रोफेसर की नौकरी करने का फैसला लिया था। भले ही उसे आइ.ए.एस. बनने में थोड़ी देर हो जाये। पर उसके लिये उसका परिवार महत्त्वपूर्ण है, ना कि उसके सपने। किन्तु उसने यह सब नहीं कहा। उसने केवल यह कहा कि 'तब तक यहाँ युनिवर्सिटी में जॉब लग चुकी थी।' इतना ही कहकर उसने चुप्पी साध ली। अच्छा! थोड़ी देर में ही अमृता के व्यवहार, शिक्षा आदि से प्रभावित होकर बी.डी.ओ साहब ने जवाब दिया-'लड़की तो अच्छी है।' जवाब सुनकर अमृता खुश नहीं थी। उसने यह जवाब आज पहली बार नहीं सुना था, कई बार उसने अपने बारे में ऐसा सुना था, कभी फोन पर कभी शादी का रिश्ता लेकर आने वाले रिश्तेदारों एवं अगुवा से। या दूसरे शब्दों में कहें तो इसी वाक्य की गरिमा को बचाना ही उसके जीवन का मूल मंत्र बन चुका था। क्योंकि उसने बचपन में ही इस शब्द की गरिमा को समझ लिया था। खैर, इस बारे में हम आगे जान लेंगे। किन्तु इस चार शब्द के वाक्य में 'लड़की तो अच्छी है' में जुड़े 'तो' शब्द केवल अमृता के लिए ही नहीं उसके परिवार के लिए भी समस्या की जड़ बनी हुई थी। इस 'तो' शब्द में अमृता के लिए एक सवाल छिपा था कि क्या वह अपने जीवन भर की पढ़ाई की तिलांजलि देकर एक सफल गृहणी बनने के लिये राजी है?

हालांकि बी.डी.ओ. साहब ने यह जवाब लड़के की माँ, मतलब अपनी भाभी को दिया था। जिनकी नजरें लड़की पर नहीं टी.वी. की तरफ ही थीं। जिन्हें देखकर यह साफ नजर आ रहा था कि उन्होंने पहले से ही तय किया हुआ था कि उन्हें अपने बेटे की शादी यहाँ करनी ही नहीं थी।

खैर, थोड़ी ही देर में सभी चले गये। अब घर में दो दिन की व्यस्तता से थके केवल अमृता और उसके माता-पिता बैठे थे।

अमृता ने थोड़े डरते हुए अपने पिता से कहा- 'पापा चलें खाना खा लें, तीन बज गए हैं। खाने के बाद आराम कर लें, थक गये होंगे।

पिता ने दुखी मन से कहा- 'मैं शरीर से नहीं, मन से थक गया हूँ। मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करें? साथ ही बैठी माँ ने कहा- 'आज चार-पाँच महीने से मैं तो खुश थी कि चलो, पहली बार हमारी बिरादरी में इतना अच्छा घर मिला है। जहाँ हमारी बेटी की पढ़ाई की कदर होगी।

तभी पिता ने टोकते हुए कहा- अरे, कदर होगी! जब मैं लड़के को देखने उनके घर गया था। उन्होंने तो मुझसे यहाँ तक कहा था कि आप उसे प्रोफेसर की पार्ट टाइम नौकरी करने से मना करें। साफ शब्दों में तो वे यह कहना चाह रहे थे कि जब आपकी लड़की हमारे यहाँ आयेगी। हम उसे सिविल सर्विसेस की तैयारी करायेंगे। उनकी तरफ से तो बात पक्की थी। पता नहीं क्या हुआ? खैर, भीतर कमरे में लड़के की माँ ने तुमसे क्या कहा था?

अमृता की माँ ने जवाब देते हुए कहा- 'उन्होंने कहा कि आपकी लड़की तो बहुत अच्छी है, अच्छा पढ़ रही है। हालांकि मुझे पढ़ी-लिखी बहू तो चाहिये, लेकिन घरेलू बहू चाहिये। सम्पत्ति की हमें कमी तो है नहीं। एक-दो सालों में मेरे बेटे की भी जॉब हो जायेगी। लेकिन आपकी बेटी घर में नहीं रहने वाली है। अगर उसने जॉब छोड़ दिया फिर हम शादी की बात आगे बढ़ा सकते हैं।'

'तो तुमने क्या जवाब दिया?' मैं क्या कहती- मैंने कहा, हमने इसलिए तो अपनी बेटी को इतना नहीं पढ़ाया कि कल जाकर उसे घर में बिठा दें। ऐसा नहीं है कि मेरी बेटी घर के कामकाज नहीं जानती है। आज आपके खाने का सारा इंतजाम उसी ने किया है। वो पढ़ाई के साथ-साथ सभी कुछ मैनेज कर सकती है।

खाना खाने के बाद दिनभर के थके तीनों सो गए थे। हालांकि अमृता के पिता नहीं सो पा रहे थे। किन्तु अमृता की एक आदत थी कि किसी भी घटना से मूव ऑन करने के लिए वह सोना पसंद करती थी। क्योंकि उसके बाद वह नई ताजगी के साथ उठकर अपने कामों में लग जाया करती थी। ताकि वह घटना उसे प्रभावित ना करे और उसके जीवन के लक्ष्य की पूर्णता में किसी तरह की बाधा उत्पन्न ना हो। वैसे भी उसे रिश्ते के ना होने का दुःख नहीं था। दुख था तो अपने रिसर्च कार्य में होने वाली बाधा का। क्योंकि वह इन लड़के वालों के कारण ही दिल्ली नहीं जा पा रही थी।

शाम को उठते ही उसने डॉ. जयंत, जो एक बहुत बड़े दलित लेखक थे, उन्हें फोन किया। जिन्होंने उसे उसकी क्षमता से परिचित कराया था कि वह एक अच्छी लेखिका बनने की काबिलियत रखती है। उन्होंने केवल उसे ही नहीं बल्कि अन्य लेखकों को भी उसकी इस काबिलियत से परिचित कराया था। इतने कम दिनों में ही अमृता ने अपने लेखनी से लेखकों को खुश कर दिया था। हाँ, चूंकि अभी उसने लिखना ही शुरु किया था। कुछ त्रुटियाँ भी हो रही थीं। वरिष्ठ लेखक जिसे बड़ी ही शालीनता के साथ सुधार दिया करते थे। इसी का परिणाम है कि आज अमृता कई पत्रिकाओं में लगातार लिख रही है और

कई पुस्तकों के प्रकाशित करने की योजना है।

एक बार उसने जयंत साहब से कहा भी था कि आप लोगों से मुझे काफी मदद मिलती है। वरना लेखकों के पास कहाँ इतना वक्त है कि वह किसी के आलेख को पढ़ें और उनकी गलतियों को सुधारें।

जयंत साहब ने उस समय बड़े ही गम्भीर शब्दों में कहा था-'दलित साहित्य में दलित लेखिकाओं का बहुत अभाव है, अमृता!'

हालांकि, उनकी यह चिंता केवल उनकी ही नहीं सभी दलित लेखकों की है।

अमृता उनके जवाब की गम्भीरता को अब धीरे-धीरे अपने जीवन के कड़वे अनुभवों से समझ पायी कि क्यों समाज में दलित लेखिकाओं का अभाव है?

जयंत साहब ने जैसे ही फोन उठाया था। अमृता ने उन्हें दिनभर की सारी घटना के बारे में बताया। हाँ, अमृता अब इन बातों को बताते हुए अब रो नहीं रही थी। क्योंकि वह अब अपनी स्थिति से कम दुखी थी। एक लेखिका होने के कारण उसने भी अब समाज की चिंता करनी आरम्भ कर दिया था।

जयंत ने जैसे ही पूछा-अब आप क्या करेंगी? दुखी मन से अमृता ने जवाब दिया-सर, अब मुझे अपनी चिंता नहीं होती है। मैं यह सोचकर परेशान हूँ कि अगर इस तरह चलता रहा तो क्या हमारे समाज का विकास हो पाएगा? दलित लड़कियाँ कैसे आगे बढ़ेंगी? मैं हैरान हूँ, अपने समाज की हालत देखकर, जहाँ कभी दहेज के नाम पर, तो कभी घर गृहस्थी के नाम पर एक लड़की को अस्वीकार कर दिया जाता है। हैरान होकर कर्मानंद ने पूछा कि क्या इनलोगों ने दहेज की माँग भी की थी?

नहीं सर। ये लोग दहेज कैसे माँगते? उनका लड़का तो बेरोजगार था। मैं तो केवल उस घर में इसलिए शादी करने के लिए तैयार थी कि वो लोग मुझे नौकरी करने दे रहे थे, मैं अपना करियर बनाने के लिए स्वतंत्र थी। दहेज तो इसके पहले वाले रिश्ते में प्रोफेसर के घर वालों ने माँगा था।

कितना माँगा था उन लोगों ने? तीस लाख। जयंत जी ने लगभग चीखते हुए यह शब्द कहा था। 'क्या...'?

जी सर! लेकिन मेरे पापा ने पंद्रह लाख तक देने की बात कही। उन्होंने उनसे इतना तक कहा था कि अभी हाल ही में मैंने कई लाख रुपये अपने भतीजे के इलाज में लगा दिया है। मेरे भतीजे को ब्लड कैंसर है और अभी लगभग तीन सालों तक मुझे उसका इलाज कराना है। ऐसी बात सुनकर भी उन्होंने किसी तरह की प्रतिक्रिया नहीं की थी। उल्टा उन्होंने पापा से ही कहा-' थोड़ा और हिम्मत करें, पंद्रह लाख से आगे बढ़ें।' पापा ने फिर भी कहा था- मैं दहेज के पैसे ही कर्ज लेकर पूरा करुँगा। मैं पंद्रह लाख से और आगे नहीं बढ़ सकता हूँ। शादी तक पता नहीं कितने खर्चे हैं। मैं कितना भी हाथ रोककर खर्च करुँगा तो सात-आठ लाख से भी अधिक खर्चे करने होंगे। हम समाज में भी तो रहते हैं उनके स्वागत की तैयारी भी तो करनी होगी। इतना सब कुछ कहाँ से पूरा करुँगा।

और फिर, भाई साहब यह तो सोचें मेरी बेटी की भी तो प्रोफेसर की नौकरी एक-दो सालों में लग जायेगी। उसकी कमाई भी तो आपके घर में ही आयेगी।

फिर, जैन साहब ने तो पूछा-क्या उनका दिल फिर भी नहीं पसीजा? क्या फिर भी वे नहीं माने?

नहीं सर, मेरी नौकरी वाली बात सुनकर तो लड़के ने यह शर्त रख दी कि अब मैं एक ही शर्त पर शादी करूंगा। जब आपकी बेटी नौकरी ना करे।

तो, तुम्हारे पापा ने क्या कहा था? उन्होंने कहा था कि 'ये अब आपके घर का मामला है। आप चाहें तो नौकरी करवायें या ना। मैं आपको पंद्रह लाख रुपये ही दे पाऊँगा। मेहरबानी करके रिश्ता ना तोड़ें।'

पापा के दोस्त पांडे अंकल ने तो यहाँ तक कहा था कि हो सकता है कि आपको अधिक पैसे देने वाले मिल जायें। पर ऐसी लड़की नहीं मिलेगी। अमृता को मैंने अपने आँखों के सामने बढ़ते देखा है। उन्होंने तो यह भी कहा था कि बुरा ना मानें तो अगर आपका बेटा प्रोफेसर नहीं बना होता तो शायद जितेंद्र जी अपनी बेटी का रिश्ता आपके घर में कभी भी नहीं लेकर आते। क्योंकि आज भी समाज में आप एक दारू बेचने वाले के नाम ही से जाने जाते हैं।

'फिर भी वे लोग सत्रह लाख पर ही टिके हुए थे...'

जयंत जी ने हैरान होकर कहा-क्या एक प्रोफेसर ऐसा कर सकता है? अमृता ने कहा-सर, मैं भी यही सोचकर हैरान हूँ कि हमारे दलित समाज के यही वकील, प्रोफेसर, डॉक्टर जैसे बुद्धिजीवी वर्ग का कहना है कि हम वंचित समाज के लोग हैं। हमें थोड़ी राहत दी जाए। किन्तु दहेज की माँग करते हुए यही राहत दलित समाज की लड़की के पिता को देना क्यों भूल जाते हैं? वो क्यों नहीं याद रखते हैं कि जिस पिता से वे इतने पैसे की माँग कर रहे हैं, वह भी तो वंचित वर्ग से संबंध रखता है। वह भी कई जगहों पर दबाया गया होगा। फिर इतनी सम्पत्ति वह कैसे जमा करता कि अपनी बेटी को नकद रुपये, सोने और महंगी कार देकर उसकी शादी करे। और एक दलित बेटी बनकर तो अपना दुःख बयान करना चाहूँ, तो क्या बाबा साहब ने इस उद्देश्य से हमारे लिये कुछ वंचितों को सुविधाएँ देने का प्रावधान किया था कि कल हमारे समाज के लोग प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के बाद अपने ही दलित समाज के लोगों का शोषण करें।

आपको पता है सर, मेरे पापा का बस एक ही सपना था कि हम तीनों भाई-बहन पढ़-लिखकर बस कुछ बन जायें। इसलिए वे आज भी अपने जीवनभर की कमाई बस हमें पढ़ाने में लगा रहे हैं। पर इस समाज के कारण वे आज एक बेटी को पढ़ाकर दुखी ही नहीं बल्कि उन्हें अपने इस फैसले पर पछतावा भी हो रहा है।

कर्मानंद जैन ने पूछा- 'क्या वे वाकई आपको पढ़ाकर पछता रहे हैं।' हाँ सर! एक बार ही नहीं वे बार-बार पछताते हैं। जब भी किसी रिश्ते के तय होते समय मेरे सामने एक हाउस वाइफ बनने की शर्त रखी जाती है। मेरे साफ शब्दों में इन्कार करने से, मेरे जवाब से तिलमिलाकर बार-बार उन्होंने मुझसे यही कहा है-'काश! मैंने भी औरों की तरह तुम्हें बाहर नहीं पढ़ने भेजा होता। बी.ए. की पढ़ाई करते-करते तुम्हारी शादी कर दी होती। तो, आज तुम मेरे सामने इस तरह खड़ी होकर जवाब नहीं दे रही होती। लोग ठीक ही कहते हैं कि बेटियों को ज्यादा नहीं पढ़ाना चाहिए।'

जब मैंने पहली बार इस बात को पापा के मुँह से सुना था। मैं अबाक रह गई थी। उस समय एक बहुत ही अच्छे परिवार का रिश्ता आया था। पता नहीं क्यों मेरे मम्मी-पापा शुरू से ही मेरी शादी इकलौते बेटे के घर में कराना चाहते थे। उन्होंने मुझे फोटो से ही पसंद कर लिया था। लड़के का मामा हमें बहुत पहले से जानते थे। उन्होंने लड़के के परिवार के जवाब को सुनाते हुए बताया था कि लड़के के परिवार वालों का कहना है - लड़की बहुत अच्छी है। हमें पसंद है। लेकिन उसे नौकरी के बारे में अभी नहीं सोचना होगा। पहले शादी कर लें। शादी के चार-पाँच सालों के बाद हम उस बारे में कुछ सोचेंगें? पर अभी नहीं। हम यह नहीं चाहते कि हमारा बेटा जब ऑफिस से आये तो उसे सारे काम खुद करना पड़े।' यह सुनकर मैंने रिश्ते से वहीं पर साफ मना कर दिया था। इसी बात से पापा को बहुत दुःख हुआ था और उन्होंने मुझसे पहली बार पछतावे की बात की थी। जबकि उन्होंने हमेशा मेरी पढ़ाई पर गर्व किया था। पापा बचपन से ही मुझसे कहा करते थे- 'बेटा तुम ट्रेन का इंजन हो। तुम जिधर-जिधर चलोगी। तुम्हारे ये दोनों छोटे भाई-बहन उधर-उधर ही जायेंगे। तुम अगर खेलोगी तो ये दोनों सोचेंगे कि मेरी बड़ी दीदी खेल रही है तो हम भी खेलेंगे। लेकिन अगर तुम पढ़ने लग जाती हो तो ये दोनों खेलना छोड़कर तुम्हारे साथ बैठकर पढ़ना शुरू कर देंगे। अब तुम्हारे हाथ में ही इन दोनों का भविष्य जुड़ा है।'

उन्होंने मेरा एडमिशन 25 किलो मीटर दूर एक अच्छे स्कूल में क्लास 2 में कराया था। लड़कियों का स्कूल था। या यह कहें कि वह उस क्षेत्र का लड़कियों के लिए सबसे अच्छा स्कूल था। आस-पास की और दो-तीन लड़कियाँ भी वहाँ पढ़ती थीं। किन्तु दलित समाज से जाने वाली मैं पहली लड़की थी। बाकी दो-तीन लड़कियों में एक मिश्रा, दो ठाकुर और एक बर्णवाल थी। मेरे क्लास 2 के फाइनल एग्जाम के रिजल्ट से पापा ही नहीं मेरे साथ पढ़ने वाली लड़कियों के गारजियन भी खुश थे। हिंदी, गणित और अंग्रेजी तीनों विषय में मैं नब्बे से भी अधिक नम्बर लेकर पास हुई थी।

मेरी सहेली के पापा ने रास्ते में रोककर मेरे पापा से कहा था- क्या आप अमृता के पापा हैं? आपकी लड़की मेरी बेटी पूजा सिंह के साथ एक ही क्लास में पढ़ती है। आपकी बेटी का रिजल्ट देखा, पढ़ने में बहुत तेज है।

मैं तो अबाक रह गया। क्या आप खुद उसे पढ़ाते हैं? आप कितना पढ़े हैं?

मेरे पापा ने जवाब दिया था- हाँ, मैं बी.ए. पास हूँ। मेरे पापा के कॉलेज का नाम सुनकर तो अंकल ने आश्चर्य से कहा- अच्छा...आप उस कॉलेज से पढ़े हैं! तभी तो! आपकी बच्ची...आपको पता है सर! उस वक्त उनकी कौन सी बात मेरे पापा के

दिल को छू गई थी। 'कौन सी?'

जब उन्होंने जाते-जाते पीछे मुड़कर मेरे पापा से कहा था - 'लड़की तो अच्छी है। उसे आगे जरूर पढाइएगा।' उसी दिन से मेरे पापा को मुझ पर गर्व होने लगा था सर। मेरे पापा ने उस दिन घर आते ही मम्मी को सारी बातें इतनी खुशी से बताईं थी कि मैं आज भी अपने पापा की खुशी से चहकती हुई आवाज नहीं भूल पायी हूँ। उन्होंने मम्मी से कहा था- 'तुम्हें पता है, एक माँ-बाप के लिए वह बहुत बड़ा दिन होता है कि जिस दिन उसके बच्चों का नाम लेकर कोई आकर उनसे कहे कि आप उनके पिता हैं?' लेकिन यह दिन किसी के नसीब में इतना जल्दी नहीं आता है। यह बात सुनने के लिए शायद बाप की एक उम्र गुजर जाती है। चलो, अगर किसी पिता ने यह सुना भी है तो मैं जहाँ तक जानता हूँ, वह अपने बेटे के नाम पर। पर, आज मुझे वह सम्मान मेरी बेटी ने दिलाया है। वह भी इतनी छोटी सी उम्र में।'

हालांकि यह घटना तो वहीं समाप्त हो गई थी सर, किन्तु उस दिन से आज तक मैंने पापा के उस सम्मान को बनाये रखना ही अपना फर्ज माना है।

सारी बातें सुनकर जयंत जी ने कहा- आप हिम्मत ना हारें। आपकी लेखनी में बहुत ताकत है। मैंने आपसे कहा भी है कि अगर आप लगातार इसी तरह से लिखती रहीं, फिर कोई दो राय नहीं है कि आप भविष्य में एक बहुत अच्छी लेखिका प्रमाणित होंगी। मैं आपके अंदर भविष्य की एक ताकतवर लेखिका की छवि देखता हूँ। कल ही तो आपका नाम विदेशी पत्रिका के लिए मैंने युवा दलित आलोचक के रुप में सुभाष जी को सुझाया था। उन्होंने भी जब आपके आलेख को पढ़ा था, आपके विचारों की तारीफ की थी। उन्होंने भी मुझसे यही कहा था- 'विचार स्पष्ट हैं, कॉन्सेप्ट भी क्लियर है। अगर इसी तरह लिखती रही तो आगे अच्छा लिख सकती हैं। लड़की अच्छी है। मैं इनका नाम विदेशी पत्रिका के लिए प्रस्तावित कर देता हूँ। इसलिए अभी जल्दबाजी ना करें। फिलहाल अभी तो अपने लेखन कार्य पर ध्यान दें। कोई अच्छा सा लड़का देखकर जो आपके विचारों से मेल खाता हो, उससे शादी करें।

अपने बारे में इतनी प्रोत्साहन भरी बातों को सुनकर भी अमृता ने उतने ही उदासीनता से जवाब दिया- सर मेरी भी तो यही इच्छा है। लेकिन उतने दिनों तक पापा इंतजार नहीं कर सकते हैं। क्यों? उनका कहना है कि उन्हें तब तक कोई लड़का नहीं मिलेगा। क्यों नहीं मिलेगा? कोई एक अच्छा सा लड़का देखकर आप शादी कर सकती हैं। सर! मुझे कोई भी नहीं मेरी ही विरादरी में शादी करना होगा। क्योंकि उनका सीधा कहना है कि अगर हमने ऐसा किया तो समाज उनसे यह कहेगा कि जितेंद्र जी ने अपने बच्चों को शिक्षा तो दी लेकिन संस्कार देने में असफल हो गये। इतना ही नहीं अगर मैंने अपनी जाति में शादी नहीं की, फिर मेरे पापा आत्महत्या तक कर सकते हैं। सर! मैं तो उनसे यह भी नहीं कह सकती हूँ कि मेरी शादी किसी छोटे पोस्ट के लड़के के साथ कर दें। कर्मानंद जैन ने कहा-क्यों? क्योंकि उनका कहना है- अगर मेरी ऐसी शादी उन्होंने की तो सभी उन्हें लोग ताना देंगे कि उन्होंने अपनी बेटी को डुबा दिया। साथ ही उनका मानना है कि मैं जितने गर्व के साथ यह कहता हूँ कि मेरा बेटा एक डॉक्टर है। उतने ही गर्व के साथ मैं अपने जमाई के बारे में भी लोगों को बताऊँ। सर देखें, आज भी हमारे समाज में एक व्यक्ति अपनी इज्जत अपने बेटे और दामाद में ढूँढता है। तभी तो लोग जितनी सिद्दत के साथ अपनी ग्रेजुएट बेटी के लिए जज, प्रोफेसर बने दामाद ढूँढते हैं। काश उतनी सिद्दत के साथ अपनी बेटी को वही बनने के लिए प्रोत्साहित करते, तो आज हमारा समाज कुछ और होता। आज मुझे वह दिन याद आता है तो समझ आता है सर कि बचपन में सिंह अंकल क्यों मेरे पापा से बार-बार एक ही बात दोहरा रहे थे कि अपनी बेटी को जरूर पढ़ाइयेगा। उन्हें हमारे समाज की सच्चाई के बारे में पता था कि हमारे समाज में लड़कियों को उतना नहीं पढ़ाया जाता है। किसी पिता ने अगर सोच भी लिया तो उसकी स्थिति हम दोनों बाप-बेटी की तरह ही होगी। जहाँ एक दोधारी तलवार से हम दोनों पर वार किया जा रहा है। उसकी एक तरफ से मैं घायल हो रही हूँ और दूसरी धार से मेरे पापा लहूलुहान हो रहे हैं। अगर ऐसी बात है तो, आप अपने पापा से कहें कि अब उनके लिये एक ही उपाय है कि वे आपके सैटेल होने का इंतजार करे। सर! पापा का कहना है कि उन्होंने अपने सामर्थ्य से बाहर जाकर इंतजार किया है। मैंने उनसे एक दिन कहा भी था- 'पापा! हम इंतजार कर लेते हैं, सैटेल होने के बाद शादी हो जायेगी।' पापा ने गुस्से में कहा था- 'मुझे जितना इंतजार करना था, मैंने कर लिया है। तुम्हें क्या पता है? लोगों के बीच में मैं उठता-बैठता हूँ। सभी मेरे मुंह पर बोलते हैं कि जितेंद्र जी आपने अभी तक अपनी बेटी की शादी क्यों नहीं किया है?' कई लोग तो पीठ पीछे इतनी बातें करने लगे हैं कि 'इनकी लड़की हो सकता है किसी लड़के को पसंद करके रखी होंगी।' वो तो अब बोलना बंद हुआ है जब से मैंने रिश्ते देखने शुरू कर दिये हैं। जिनकी बेटियाँ घर से भागकर शादी कर लेती हैं उन्हें भी इतनी जिल्लत ना सहनी पड़ती है। जितना कि मैं सहता हूँ। तो पापा! यही लोग उस प्रोफेसर को बोलने क्यों नहीं जा रहे हैं जिन्होंने हमसे इतने दहेज की माँग करके गलती की है। जबकि मेरी योग्यता भी उनके बेटे के बराबर है। उस पर्सनल मैनेजर के पास भी क्यों नहीं गये, जिसने मुझे अपने से बड़ा कहकर छाँट दिया था। लेकिन वास्तव में उसे भी यही गम था कि इतनी पढ़ी-लिखी कमाने वाली लड़की से ना ही मैं दहेज की माँग कर सकता हूँ और ना ही उसे घर में बैठने के लिए कह सकता हूँ। उन माँओं को यह क्यों नहीं समझाते हैं कि किस मुँह से वह मुझे अपनी जीवन भर के मेहनत की कमाई को गैस के चूल्हे में फूंकने के लिये कह रही हैं?

फिर पापा ने क्या कहा-क्या कहना था उनका।

उन्होंने यही कहा कि यह सब बातें किताबों में अच्छी लगती हैं। आम जिंदगी इससे अलग होती है, तुमने यह जितना जल्दी समझ लिया, तुम्हारा ही भला होगा। और उठकर गुस्से से कमरे में चले गये।

जैन साहब अमृता की बातों को सुनकर बस परामर्श ही दे सकते थे, उसके लिए किसी तरह का फैसला करना तो उनके हक में नहीं था। वे विवश थे, अमृता की स्थिति को जानकर भी और उसकी प्रतिभा जिनका अवसान होना एक तरफ अनिश्चित था या निश्चित भी, वे बस मूकदर्शक की भूमिका का ही निर्वहन कर सकते थे। उनका दिल भी कचोट कर रह गया था, जब पहली बार अमृता ने रो-रोकर कहा था। 'सर, अगर मुझे चलने का सुख नहीं पता होता, मैं बचपन से अपाहिज होती, तो मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन अगर आपके पैर काटकर आपको अपाहिज बना दिया गया, फिर भले ही बिस्तर पर ही आपको सारे ऐशो-आराम मिलें, किन्तु शेष जीवन आपके लिए निरर्थक है। आप जीवित होते हुए भी जीवित लाश बन जाते हैं। ठीक वैसे ही अगर आज मुझसे कलम छीन ली गई, तो मैं वही जीवित लाश बन जाऊंगी। आँख होते हुए भी अंधी बन जाऊँगी। क्योंकि इन आँखों में तब माँ का वह सपना अब नहीं रहेगा, जिसे दिल्ली भेजते वक्त मेरी माँ ने देखा था। पापा समाज के भय से अकेली लड़की को दिल्ली नहीं भेजना चाहते थे। लेकिन उस भय से मेरी माँ भयभीत नहीं हुई। जिसने जीवन के किसी फैसले में पापा का विरोध नहीं किया था। उसने पापा के विरुद्ध जाकर मुझे पढ़ने के लिये बाहर भेजा था। सिर्फ इस उद्देश्य से कि उसकी बेटी उसकी तरह ही बर्तन, चूल्हे और कपड़े में ना सनी रहे।' अमृता आज एक ऐसे चौराहे पर खड़ी है। जहाँ फिलहाल उसे कोई रास्ता नहीं दिख रहा है। बस वह फैसले की घड़ी को जब तक टाल सकती है, टाल रही है। किन्तु वह भी जानती है कि एक दिन उसे कठोर निर्णय लेना होगा। अब हमें यह देखना है कि उसका निर्णय किस लड़की के जीवन को अपनाने का लिया जाता है। वह उस समाज में अपने आप को विसर्जित कर देगी जहाँ उसकी मिट्टी भी उन्हीं घरेलू स्त्रियों के साथ सन जाएगी। जिनके जीवन का अस्तित्व उनसे नहीं बल्कि उनके पिता, भाई, पति और बेटे से स्थापित हो। जहाँ उनकी सुबह की शुरुआत सभी को उनके बिस्तर पर चाय देने से शुरु होकर रात में गिलास में दूध पकड़ने तक हो। जहाँ चेहरे पर मलीनता किचन के तेल की चिपचिपाहट से आये। या उस मार्ग को अपनाने का निर्णय लेगी जिस अच्छी लड़की के बारे में उसने बचपन से ही सुना था। पढ़ने-लिखने वाले समाज में हमेशा सम्मानित होते हैं। उस मार्ग को अपनाने का निर्णय लेगी, जिसकी मंजिल लेखकों ने तय किया है। जहाँ उन्हें अमृता से उम्मीद है कि यह भविष्य में दलित विषयों को बड़ी ही निर्भीकता और यथार्थता के साथ समाज के सामने लायेगी। दलित लेखिकाओं के उस रिक्त स्थान को भरने में अपना योगदान दे सकती है, जहाँ चेहरे पर मलीनता किचन के तेल से नहीं बल्कि आँखों के काले घेरे समाज के निरंतर विकास के बारे में सोचने से आयें।

आज़ादी का अमृत महोत्सव

उत्तर प्रदेश के विकास में एक और बड़ा कदम

भगवान बुद्ध की महापरिनिर्वाण स्थली में

कुशीनगर इंटरनेशनल एयरपोर्ट

पर्यटन विकास, निवेश एवं रोजगार

श्रीलंका, जापान, ताइवान, दक्षिण कोरिया, चीन, थाईलैंड, वियतनाम, सिंगापुर आदि
दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों से सीधे अंतर्राष्ट्रीय कनेक्टिविटी, पर्यटकों को कुशीनगर पहुंचने में होगी आसानी

बौद्ध सर्किट के लुम्बनी, बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर, श्रावस्ती, राजगीर, संकिशा
एवं वैशाली की यात्रा पर्यटक पहले से कम समय में कर सकेंगे पूरी

अंतर्राष्ट्रीय पर्यटकों की संख्या में 20 प्रतिशत तक की होगी वृद्धि

पूर्वांचल में पर्यटन विकास के साथ रोजगार के बढ़ेंगे अवसर
स्थानीय उद्योगों एवं उत्पादों को मिलेगी वैश्विक पहचान

इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास से बढ़ेंगे निवेश के अवसर

प्रदेश का सबसे बड़ा रनवे, लंबाई 3,200 मीटर व चौड़ाई 45 मीटर

सोच ईमानदार, काम दमदार

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

"उत्तर प्रदेश हमेशा से ही साहसी और प्रेरणादायक महिलाओं की मातृभूमि रही है। विभिन्न क्षेत्रों में उन्हें सशक्त बनाने की दिशा में काम करने का अवसर मिलना हमारे लिए गौरव की बात है। नारी के मार्ग से विघ्नों को दूर कर उनके हर कदम में उनका साथ देना- यही नारी शक्ति के लिए हमारा मंत्र है।"

- नरेंद्र मोदी, प्रधानमंत्री

बढ़ता उत्तर प्रदेश समृद्ध होता देश

की महिलाओं को मिला सुरक्षा, संरक्षण, सशक्तिकरण और अधिकार

मिशन शक्ति
नारी सुरक्षा
नारी सम्मान
नारी स्वावलंबन

हर कदम पर महिलाओं का दिया साथ, उनके सपने पूरा करने के लिए बढ़ाया हाथ

महिलाएं ले रहीं राहत की सांस

- **गुंडाराज के बीते दिन!** अब गुंडे डर में जीते हैं और महिलाएं निडर चलती हैं, सिर उठाकर
- **न्याय की पहुँच अब तेज़ और व्यापक!** 218 नई फास्ट-ट्रैक कोर्ट, 81 मजिस्ट्रेट अदालतें और 81 अपर सत्र अदालतों की स्थापना
- **महिलाओं के लिए हेल्पडेस्क,** उत्तर प्रदेश के सभी 1,535 थानों में

शिक्षा, उद्यमिता, सशक्तिकरण

- **बालिकाओं के लिए मुफ्त शिक्षा** ग्रेजुएशन तक, रखी आत्मनिर्भरता की मजबूत बुनियाद
- **'बेटी बचाओ - बेटी पढ़ाओ'** योजना में 51 लाख 25 हजार बेटियां लाभान्वित
- **1 लाख 50 हजार महिलाओं** को मिली सरकारी नौकरी
- **7 लाख 85 हजार महिलाओं को आर्थिक सहायता** मुख्यमंत्री कन्या सुमंगला योजना के माध्यम से
- **गारंटी-मुक्त बैंक लोन** 1.20 करोड़ से अधिक महिला लघु उद्यमियों को, मुद्रा योजना से
- **महिलाओं के सपनों को पूरा करने में उनकी मदद,** स्टैंड अप इंडिया के माध्यम से ₹2,300 करोड़ से अधिक के उद्यमिता ऋण
- **2 लाख से अधिक महिला रेहड़ी-पटरी विक्रेताओं** की सहायता पीएम स्वनिधि योजना के अंतर्गत
- **10 लाख स्वयं सहायता समूहों** के माध्यम से 1 करोड़ महिलाओं को स्वरोजगार
- **58,758 महिलाओं** की बैंकिंग सखी के रूप में नियुक्ति
- **28 लाख महिलाओं** को प्रधानमंत्री आवास योजना एवं मुख्यमंत्री आवास योजना के अन्तर्गत आवास
- **29 लाख 68 हजार निराश्रित महिलाओं** को प्रतिमाह रु. 500 पेंशन

गरिमामयी जीवन, गुणवत्तापूर्ण जीवन

- **महिलाओं की गरिमा सुनिश्चित,** स्वच्छ भारत मिशन के अंतर्गत 2.61 करोड़ से अधिक शौचालयों के निर्माण से
- **4,450 पिंक टॉयलेट** का निर्माण
- **पानी ढोने से मिली मुक्ति,** जल जीवन मिशन के अंतर्गत 26 लाख परिवारों की महिलाओं को नल से पानी का कनेक्शन मिला
- **महिलाओं का जीवन हुआ धुआं मुक्त** उज्ज्वला योजना 1.0 के तहत 1.47 करोड़ से अधिक महिलाओं को मिला मुफ्त एलपीजी कनेक्शन
- **ज्यादा से ज्यादा** गरीब परिवारों को मुफ्त एलपीजी कनेक्शन प्रदान करने के लिए उज्ज्वला योजना 2.0 शुरू की गई

स्वास्थ्य भी, सौभाग्य भी

- **1.60 लाख महिलाओं को घर का मालिकाना अधिकार हुआ सुनिश्चित** ऑनलाइन घरौनी वितरण के माध्यम से
- **40 लाख से अधिक गर्भवती महिलाओं को मिला पोषाहार का अधिकार** प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना के अंतर्गत
- **मुख्यमंत्री सामूहिक विवाह योजना** के अंतर्गत 1.52 लाख से अधिक कन्याओं ने विवाह कर नए सुखद जीवन की शुरुआत की

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश